राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक
जे. के. बंसल R.A.S.
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक 196

राजस्थान का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा
ब्रजेशकुमारसिंह

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1999

मूल्य - 90.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक
जे. के. बंसल R.A.S.
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक 196

राजस्थान का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा
ब्रजेशकुमारसिंह

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1999

मूल्य - 90.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित
सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्टग्रन्थावली

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा
ब्रजेशकुमारसिंह

ग्रन्थाङ्क 196

राजस्थान का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

© प्रकाशक

प्रथमावृत्ति—500

मूल्य - 90.00

प्रधान सम्पादकीय

मध्यकालीन इतिहास के स्रोतरूप में तत्कालीन शासकों के समाश्रय में 40–50 के करीब ऐतिहासिक संस्कृत काव्यों का प्रणयन हुआ है। इनमें 15–20 काव्यों को छोड़कर शेष सभी अप्रकाशित हैं। इन काव्यों में इतिहास के सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पक्ष को उद्घाटित करने हेतु विभाग द्वारा मार्च 95 में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें प्रचुर संख्या में विद्वानों ने भाग लिया व आलेख प्रस्तुत किये।

यद्यपि इस संगोष्ठी में काफी ऐतिहासिक सामग्री चर्चा का विषय नहीं बन सकी तो भी जो कुछ आलेखों के माध्यम से सामने आया है वह भी विद्वज्जगत् के लिये बहुमूल्य व अत्यन्त उपयोगी है।

हर्ष का विषय है कि संगोष्ठी के आलेख अब मुद्रित होकर पुस्तकाकाररूप में आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। मुझे आशा है कि इस साहित्यिक सामग्री के समुचित अध्ययन से इतिहास की कई विलुप्त कड़ियों को जोड़ा जा सकेगा।

जे॰ के॰ बंसल R.A.S.
निदेशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रधान सम्पादकीय : जे. के. बंसल

भूमिका: ओ३म् प्रकाश शर्मा ....I-XVII

प्राक्कथन : डॉ. गोपीनाथ शर्मा ....XVIII-XXVI

प्रथम खण्ड पृष्ठ संख्या

1. ऐतिहासिक धरोहर : सूँधा शिलालेख–डॉ॰ श्री कृष्ण सोनी 3–13
2. सूरसिंहवंशप्रशस्ति : इतिहास के संदर्भ में – डॉ. उषा गोस्वामी 14–22
3. अजीतचरित्रमहाकाव्य : ऐतिहासिक अध्ययन – डॉ. गोविन्दराम चरौरा 23–30
4. अजितोदयमहाकाव्यम् – डॉ. भगवतीलाल व्यास 31–33
5. भीमप्रबन्ध–महाकाव्य के नायक कवि : काव्य और उसके ऐतिहासिक संदर्भ :
   – पं. द्वारिकादत्त भट्ट 34–39
6. यशवन्त यशोभूषण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन
   – डॉ. सोहनकृष्ण पुरोहित 40–46
7. गंगोदय का व्यापक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन – डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा 47–50

द्वितीय खण्ड

8. मेवाड़ की अनुत्कीर्ण संस्कृत प्रशस्तियाँ – डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी 53–56
9. राजस्थानीय संस्कृत रूपकों में महाराणा प्रताप का स्वरूप निरूपण
   – डॉ. हरमल रेबारी 57–62
10. राजप्रशस्तिमहाकाव्य में वर्णित मेवाड़ शासकों के धार्मिक अनुष्ठान
   – डॉ. वसुमती शर्मा 63–69
11. जयसिंहप्रशस्ति में जयसमुद्र निर्माण का विवरण
   – डॉ. शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त' 70–75
12. अमरसार : एक ऐतिहासिक काव्य – डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित 76–92
13. फतहप्रकाशप्रशस्ति : एक दुर्लभ ऐतिहासिक महाकाव्य – डॉ. देवीदत्त शर्मा 93–100

तृतीय खण्ड

पृष्ठ संख्या

14. कूर्मवंशावतंस श्रीमुंहणसिंहवंश चूड़ामणि – डॉ. ब्रजमोहन जावलिया 103–117

15. जयनगरपंचरंगमनुशीलनम् – डॉ. दामोदर शास्त्री 118–137

16. कर्णकुतूहल का राजनीतिक एवं सामाजिक पर्यालोचन
– डॉ. ठाकुरदत्त जोशी 138–146

17. राजस्थान के ऐतिह्य के आलोक में भट्ट मथुरानाथशास्त्री प्रणीत 'जयपुरवैभवम्': एक ऐतिहासिक दृष्टि–पं. गंगाधर भट्ट 147–153

चतुर्थ खण्ड

18. हर्ष शिलालेख के ऐतिहासिक विवरण और संकेत
– डॉ. रतनलाल मिश्र 157–163

19. पृथ्वीराजमहाकाव्यम् का संदेश – डॉ. (श्रीमती) मंजुला गहलोत 164–166

20. हम्मीरमहाकाव्य : ऐतिहासिक दृष्टि से – डॉ पुष्करदत्त शर्मा 167–179

21. सुर्जनचरितमहाकाव्य का ऐतिहासिक अनुशीलन
– डॉ. ओंकारनारायण सिंह 180–185

परिशिष्ट

22. संस्कृत शिलालेखों एवं संस्कृत साहित्य में विवक्षित अलवर क्षेत्र
– डॉ. देवकुमार 189–194

भूमिका

पाश्चात्य विद्वानों का आरोपण है कि भारतीय जन व इतिहासकार ऐतिहासिक भावना से परिचित नहीं हैं। उनके अनुसार समग्र संस्कृत साहित्य में एक भी ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें तिथि एवं घटनाओं का प्रामाणिक विवरण हो। पाश्चात्य साहित्यकार कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्रतिपादित किया कि किसी भी देश में राष्ट्रीयता की भावना ही इतिहास लेखन की अभिरुचि बढ़ाती है। भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना ही नहीं थी। अतः ऐतिहासिक भावनाओं का प्रादुर्भाव ही नहीं हो सका। डॉ॰ कीथ एवं अन्य पाश्चात्य विपश्चितों का यह आरोपण पूर्वाग्रह से ग्रसित तो है ही, साथ ही दुराग्रह एवं एकांगी दृष्टि का द्योतक भी। ऐसे विद्वानों ने न तो यहां के अभिलेख देखे और न ही पुराणों, बौद्ध–जैन ग्रन्थों व प्रशस्तियों का अवलोकन किया। वस्तुतः भारतीयों ने ऐहिक लिप्साओं के प्रति निरपेक्षता, पुराण एवम् दर्शनों के प्रति गहरी आस्था, अवतारवाद के प्रति निष्ठा, कर्मवाद एवं पुनर्जन्म के प्रति विश्वास आदि कारणों से इतिहास लेखन में तिथियों का उल्लेख नहीं किया। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हमारे साहित्य में ऐतिहासिकता का अभाव है। छान्दोग्योपनिषद् के एक पुरावृत्तानुसार नारदमुनि ने सनत्कुमार से विद्या सीखते समय अपने अधीत शास्त्रों का उल्लेख किया है। 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि सामवेदमथर्वणम् इतिहासपुराणं' कहकर इतिहास विद्या के अस्तित्व की ओर संकेत किया है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार वेदार्थप्रतिपादकों में एक वर्ग इतिहासकारों का भी था जिन्हें स्थान–स्थान पर 'इति ऐतिहासिकाः' कहकर निरूपित किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इतिहास को वेद के समकक्ष मान्यता दी गई है। अपने काव्यमीमांसा ग्रन्थ में राजशेखर 'परिक्रिया पुराकल्पः इतिहासगतिर्द्विधा' कहकर इतिहास के दो भाग करता है। भगवान् वेदव्यास ने इतिहास पुराण द्वारा वेद का उपबृंहण बताते हुए कहा है कि इतिहास पुराण से शून्य आदमी से वेद भी भयभीत रहता है।

संस्कृत साहित्य का वर्ण्य भले ही राजनैतिक इतिहास नहीं है फिर भी इसमें प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य विविध पहलुओं के हमें दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ पुराणों को ही लीजिये जिनका भारत के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक जीवन से गहरा रिश्ता है। वेद हमारे जीवन के आधारभूत ग्रन्थ हैं किन्तु उनके दुर्बोध अर्थ को ग्रहण कराने में पुराणों की भी उपादेयता है। किसी समाज का इतिहास पूरा तभी समझाया जा सकता है जब उसकी पूरी कहानी सृष्टि के आरम्भ से वर्तमान काल

तक लिखी जावे। पुराण आरम्भ होता है सृष्टि से तथा सम्पन्न होता है प्रलय से। इस प्रकार पुराण निश्चित रूप से भारतीय इतिहास का सधा रूप है किन्तु आधुनिक इतिहास लेखको ने इस पद्धति की चिर काल से उपेक्षा कर रखी है। प्रसन्नता की बात है कि सुप्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार एच॰जी वेल्स॰ ने अपने इतिहास ग्रन्थ Outline of History में पौराणिक पद्धति को समाश्रय दिया।

विगत 50 वर्षों से आधुनिक इतिहासकारों में एक नवीन इतिहास बोध की उद्भावना देखी जा सकती है। आज का इतिहासकार केवल राजनैतिक घटनाक्रम को ही नहीं बल्कि भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से भी इतिहास की विवेचना करने लगा है। इस दृष्टि से पौराणिक आख्यानों को गहराई में जाकर उनका तत्त्वार्थ समझने की आवश्यकता है। पुराणों में भूगोल एवं खगोल शास्त्र का विस्तृत वर्णन है। आज के युग में परिज्ञात व वर्णित समस्त भूमिखण्ड पुराणरचनाकारों को पहले से ही मालूम थे। कुशद्वीप, शकद्वीप, एशिया की नदियां आदि कई भौगोलिक स्थान पुराणों के आधार पर पहिचाने गये हैं।

पुराणों में जो वंशवृत्त दर्शित हैं उनकी जांच शिलालेखों एवं मुद्राओं से करने पर सत्यता पाई गई है। काशीप्रसाद जायसवाल आदि विद्वानों ने कई पौराणिक अनुश्रुतियों को सही पाया है। डॉ॰ मिराशी द्वारा पठित अनेक मुद्रालेखों से पुराणगत अनेक राजनयिकों की सत्यता प्रमाणित होती है। वाकाटकों के विषय में वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण में प्रचुर सामग्री है जिनकी सत्यता ताम्रपत्रों से सिद्ध हो चुकी है। पुराणों में प्रलोमा वाशिष्ठी पुत्र नामक आन्ध्र राजा का उल्लेख है जिसकी पुष्टि कन्हेरी शिलालेख से होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराण हमारे इतिहास कोष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित नामक वर्ण्य–विषयों में हमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, धर्म, दर्शन, सृष्टितत्त्व, प्रलय आदि बातें मिलती हैं जिनका आज वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन कर नीरक्षीरविवेक से सत् का ग्रहण एवं असत् का परित्याग किया जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत हमारे प्राचीन आर्ष ग्रन्थ माने जाते हैं। ये आदिकालीन ऐतिहासिक काव्य भी माने जाते हैं। हालांकि इन काव्यों के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं तथापि एक बहुत बड़ा वर्ग महाभारत का 1432 ई॰ पूर्व अस्तित्व स्वीकार करता है।

रामायण एक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ के रूप में भी मान्य है। उपनिषदों ने वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम को आदर्श रूप में स्थापित किया जबकि रामायण ने गृहस्थ धर्म को इन आश्रमों से श्रेष्ठतर बताकर उसकी उपादेयता प्रस्थापित की । इस काव्य से तत्कालीन राज्य–व्यवस्था, भोजन, वेशभूषा, मनोरञ्जन के साधन, विवाहविधि, राजाप्रजा के संबंध, स्त्रियों की दशा आदि विषयों की प्रचुर जानकारी मिलती है।

महाभारत एक विकसनशील काव्य है जो अनेक व्यक्तियों की रचना है। जय–भारत एवं महाभारत के रूप में इसका विकास अलग–अलग चरणों में हुआ है। महाकाव्य के साथ इसे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ भी कहते हैं। इसमें वर्णाश्रम, आश्रम व्यवस्था तथा प्राचीन भारत की ऐतिहासिक धार्मिक एवं दार्शनिक आदि सभी सामग्री सन्निहित है। संक्षेप में महाभारत एक विश्वकोष है जिसमें मानव जीवन के सभी पक्षों का सुन्दर समन्वय है।

रामायण एवं महाभारत का परवर्ती रचनाकारों पर काफी प्रभाव पड़ा और इन्हीं से प्रेरित होकर अवान्तरकालीन कवियों ने अपनी कृतियों को सुसज्जित किया। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के 9–16 सर्ग का आधार रामायण की कथा से ग्रहण किया है। कुमारसंमव के कथानक की रूपरेखा रामायण से ग्रहण की। मेघदूत की सन्देश कल्पना भी हनुमान् सन्देश पर आधारित है। इसी तरह से महाभारत की कथा के आधार पर भारवि का किरात, माघ का शिशुपाल एवं श्रीहर्ष का नैषधीयचरित्र महाकाव्य रचे गये। इसके अतिरिक्त कृष्णानन्द का सहृदयानन्द, व्यन्धारूभट्ट का उत्तरनैषध, राघवपाण्डवीय, राघवनैषधीय, पाण्डवाभ्युदय, बालभारत एवं युधिष्ठिरविजय काव्य महाभारत की कथा के आधार पर लिखे गये हैं।

विभिन्न पुराणों के कथानक के आधार पर कई काव्य लिखे गये है, मंख कवि का श्रीकण्ठचरित्र, लिंग, मत्स्य एवं शिवपुराण पर आधारित है। वेंकटाध्वरिन् का यादवराघवीय भागवत व रामायण पर आधारित है। हरविजय, लिंग, स्कन्ध एवं पद्मपुराण पर आधारित है।

इसी तरह से धार्मिक चरित्र को आधार बनाकर कई काव्यों की रचना हुई है। अश्वघोष (1श.ई.) के बुद्धचरित, सौन्दरानन्द एवं ललितविस्तर काव्य धार्मिक कथा पर आधारित हैं। वाग्भट का नेमिनिर्माण काव्य तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन को चित्रित करता है एवं इसी तरह से हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित भी एक धार्मिक काव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्ष काव्यों की रचना के एक हजार वर्ष तक कोई स्वतन्त्र विदग्ध काव्य उपलब्ध नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि इस दीर्घावधि में कोई काव्य सृजन नहीं हुआ। वैसे तो वैदिक काल से स्वतन्त्र रूप से काव्यशैली का निरन्तर विकास होता रहा है। ईसवी सन् के प्रारम्भ से हमें अश्वघोष की रचनायें उपलब्ध होती हैं। अश्वघोष कनिष्ककालीन बौद्ध दार्शनिक थे जिन्होंने कनिष्क के समय में आयोजित चतुर्थ बौद्ध संगीति की अध्यक्षता की थी। कालिदास का रचनाकाल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (380–413 ई.) का काल माना जाता है।

कालिदास के बाद काव्यधारा अविराम गति से चलती रही किन्तु काव्यशैली में स्वाभाविकता की जगह कृत्रिमता एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ी। इसी परम्परा में भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की रचनाओं को लिया जा सकता है। कालिदासोत्तर कवियों में

भट्टि कवि विरचित (600 ई॰) रावणवध काव्य प्राप्त होता है जिसकी रचना काव्यमनोरञ्जन के साथ–साथ व्याकरण ज्ञान करवाने की दृष्टि से की गई थी। इसी शताब्दी में कुमारदास नामक कवि मिलते हैं जिन्होंने जानकीहरण नामक काव्य की रचना की। इसी परम्परा में प्रवरसेन का सेतुबन्ध महाकाव्य, अभिनन्द का रामचरित, वासुदेव का युधिष्ठिरविजय, शिवस्वामी का कल्याणाभ्युदय, क्षेमेन्द्र का दशावतार, रामायणमञ्जरी एवं महाभारतमञ्जरी, हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय, मंखक का श्रीकण्ठचरित, वेंकटनाथ का यादवाभ्युदय काव्य, धनञ्जय का राघवपाण्डवीय, कविराज का द्विसन्धान काव्य आते हैं जिनकी अधिक चर्चा विस्तारभय से नहीं की जा रही है।

इस प्रकार हमने आर्ष एवं उपजीव्य काव्यों की परम्परा का संक्षिप्त अवलोकन किया है। आर्षकाव्य के स्रष्टाओं ने सौन्दर्यबोध की अपेक्षा नीतिबोध एवं तत्त्वबोध पर अधिक ध्यान दिया। हालांकि सौन्दर्यबोध का निरूपण काव्यस्रष्टा हेतु आवश्यक है। इसके विपरीत परवर्ती काव्यों में नायक–नायिका का संयोग–वियोग, प्रकृति में सौन्दर्य सृष्टि, ऋतुओं, एवं जलकेलि का वर्णन किया है। कालिदास के बाद भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष के काव्यों में पाण्डित्यप्रदर्शन की होड़ सी नजर आती है। इन विदग्ध काव्यों की श्रेणी में ऐसे भी कतिपय काव्य हैं जिनका सृजन किसी राजा महाराजा के आश्रयत्व में होने से तत्कालीन शासक के जीवनवृत्त एवं युद्धादि का चित्रण हैं। ऐसे काव्यों में बाणभट्ट का हर्षचरित, पद्मगुप्त का नवसाहसांकचरित एवं कल्हण की राजतरंगिणी मुख्य हैं जो सम्प्रति प्रासंगिक होने से विवेच्य हैं।

संस्कृत साहित्य के अधिकांश इतिहासकारों ने बाणभट्टरचित हर्षचरित को प्रथम ऐतिहासिक काव्य कहा है। इस ग्रन्थ में राजधानी थानेश्वर, वंशसंस्थापक पुष्यभूति, हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन तथा महारानी यशोवती, हर्ष की बहिन राज्यश्री और हर्षकालीन अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। हालांकि बाण ने किसी तिथिक्रम का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी चीनीयात्री ह्वानसांग ने उन घटनाओं का वर्णन कर तद् तद् वृत्तान्त की सम्पुष्टि की है। सातवीं शताब्दी के इतिहास की जानकारी हेतु हर्षचरित एक अपरिहार्य ग्रन्थ है।

धारापति मुञ्ज के सभा पण्डित पद्मगुप्त परिमल ने 1005 ई॰ में नवसाहसांक काव्य की रचना की जिसमें सिन्धुराज की कीर्त्ति का बखान है। इस काव्य में कई ऐतिहासिक बातें हैं जिनकी पुष्टि शिलालेखों के आधार पर हो चुकी है। इसमें सिन्धुराज से पूर्ववर्ती समस्त परमार राजाओं का वर्णन है।

महाकवि बिल्हण ने 1085 ई॰ में विक्रमांकदेवचरित की रचना की थी। इसमें चालुक्य वंश के राजा विक्रमादित्य का जीवन चित्रित है। बिल्हण लिखित घटनाक्रम की पुष्टि चालुक्यवंशी राजाओं के शिलालेखों से की जा चुकी है। इस काव्य में तिथिक्रम का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

कल्हण की राजतरंगिणी ऐतिहासिक काव्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। अगर सत्य कहा जावे तो संस्कृत में ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध चित्रणार्थ इस ग्रन्थ की भारी उपादेयता है।

काश्मीर का राजनैतिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं साहित्यिक इतिहास जानने हेतु इस ग्रन्थ का अत्यधिक महत्व है।

इन ऐतिहासिक काव्यों के अलावा समय–समय पर विभिन्न राजा–महाराजाओं के आश्रय में प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक काव्यों का प्रणयन हुआ है किन्तु दुःख है कि ऐसे काव्यों की घोर उपेक्षा करते हुये उन्हें संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्थान तक नहीं दिया गया है। आचार्य हेमचन्द्राचार्य का कुमारपाल चरित 11 वीं शताब्दी की रचना है जो गुजरात के राजाओं का जीवन चित्रित करता है। 1225 ई॰ में अरिसिंह ने 'सुकृत संकीर्तन' नामक ऐतिहासिक काव्य का सृजन किया जिसमें गुजरात के प्रसिद्ध, वास्तुविद् व अमात्य वास्तुपाल के धार्मिक कृत्य व स्थापत्य निर्माण का ऐतिहासिक वर्णन है। कीर्त्तिकौमुदी में सोमेश्वरदेव ने अमात्य वास्तुपाल का जीवनचरित लिखा है। सर्वानन्द ने 1256 ई॰ में जगडूचरित की रचना की जिसमें 13 वीं शती के गुजरात में पड़े दुर्भिक्ष का वर्णन है।

राजस्थान में लिखे गये इस प्रकार के साहित्य के साथ–साथ पुरातत्त्व एवं अन्य साहित्यिक सामग्री का भी भारी महत्व है। पुरातत्त्व की सामग्री के अन्तर्गत प्राचीन स्मारक, मूर्तियां, सिक्के और साहित्यिक सामग्री के अन्तर्गत संस्कृत व हिन्दी राजस्थानी के ऐतिहासिक काव्य, जैन पट्टावली, मुस्लिम तवारीखें एवं इतिहास विषयक ग्रन्थ आते हैं। राजस्थान में तत्कालीन शासकों के समाश्रय में समय–समय पर ऐतिहासिक काव्यों का सृजन हुआ जो अद्यावधि ऐतिहासिक स्रोत के रूप में परमोपयोगी हैं। राजस्थान में 50 के करीब संस्कृत भाषानिबद्ध महाकाव्य, खण्ड काव्य, नाटक, चम्पू तथा शिलालेखों पर उत्कीर्ण काव्य उपलब्ध हैं जिनमें 10–15 के अलावा सभी ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित हैं। क्या इन संस्कृत काव्यों का ऐतिहासिक स्रोत के रूप में उपयोग किया जा सकता है और इतिहास के पुनर्लेखन में क्या इन काव्यों की वास्तव में कोई उपादेयता है, इन्हीं मूलभूत प्रश्नों के समाधानार्थ निदेशालय, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा मार्च 95 में विद्वान् वक्ताओं की एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें विद्वानों ने अपने आलेखों का पठन किया।

संस्कृत, प्राकृत एव स्थानीय भाषा में लिखित विभिन्न प्रकार के अभिलेख मन्दिरों, मठों, जलाशयों व मूर्तियों पर खुदे हुये मिलते हैं जिनमें तत्कालीन राजाओं के आख्यान के अलावा सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक चित्रण के साथ तत्कालीन धर्म व नैतिक बोध का भी चित्रण होता है। राजा भोज विरचित कूर्मशतक नामक दो प्राकृत भाषा काव्य एक पाठशाला में पत्थरों पर उत्कीर्ण प्राप्त हुये हैं। अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज

का लिखा हरकेलिनाटक भी शिलाओं पर खुदा मिला है। 260 ई॰ पूर्व वैराठ का शिलालेख मिलता है, जिसमें बौद्ध धर्म की प्रगति व प्रचार का वर्णन है। चित्तौड़ के निकट खंडित अवस्था में नगरी का शिलालेख मिलता है, जिसका प्रतिपाद्य सम्भवतः जैन बौद्धों से संबंधित है। इस लेख का काल 200–150 ई॰ पू॰ के लगभग है। द्वितीय शताब्दी ई॰पू॰ घोसुण्डी का शिलालेख मिलता है जिसमें गजवंश के सर्वतात द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का वर्णन है। नादसा यूप स्तम्भ 225 ई॰ का भीलवाड़ा के पास है जिसमें षष्टिरात्रि –यज्ञ एवं क्षत्रियों के राज्य विस्तार का वर्णन है। बड़वा पाषाण यूप लेख (238 ई॰) कोटा जिला की मांगरोल तहसील में स्थित है, इसमें मौखरि सेनापति बल के पुत्रों द्वारा त्रिरात्र–यज्ञ करने तथा 1000 गायें दान देने का वर्णन है। इसी प्रकार 300 ई॰ का विजयगढ का यौधेय अभिलेख, विजयगढ़ स्तम्भ लेख 428 ई॰, विश्ववर्मा का गंगधार अभिलेख 480 ई॰, 500 का चारचौमा शिवमन्दिर अभिलेख, 646 ई॰, का सामोली अभिलेख, 661 ई॰, का कुण्डलेश्वर मन्दिर का अभिलेख, मण्डोर बावडी का अभिलेख, 685 ई॰, झालरापाटण का शिवमन्दिर अभिलेख 689 ई॰, चित्तौड़ के मानमोरी का शिलालेख 713 ई॰, शेरगढ़ का कोशवर्द्धन अभिलेख 790 ई॰, खंडेला अभिलेख 807 ई॰, बुचकला अभिलेख 816 ई॰, वाडक का जोधपुर अभिलेख 837 ई॰, डबोक का शिलोख 900–1000 वि॰स॰ आहड़ अभिलेख 944 ई॰, प्रतापगढ़ अभिलेख 940 ई॰, ओसियां का महावीर मन्दिर अभिलेख 956 ई॰, थांवला का अभिलेख 956 ई॰,, ऊनावास का अभिलेख 959 ई॰, एकलिंगजी नाथप्रशस्ति 971 ई॰ आदि अभिलेखों के नाम महत्वपूर्ण हैं। ये अभिलेख वि॰सं॰ से 500 वर्ष पूर्व तक के मिलते हैं। इनमें से अधिकांश शिलालेख आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, एवम् रिपोर्ट्स राजपूताना, इन्सक्रिप्शंस आफ नॉर्थ इण्डिया, जैन इन्स्क्रिप्शंस, प्राचीन जैन लेख संग्रह, एपिग्राफिका इण्डिका आदि पुस्तकों में प्रकाशित भी चुके हैं।

सीकर नगर से 8 मील दक्षिण पूर्व में हर्षगिरि नामक पर्वत पर एक प्राचीन शिवमन्दिर के अवशेष हैं। इन्हीं भग्नावशेषों के मध्य हर्ष शिलालेख की खोज पाश्चात्य विद्वान् जी॰ई॰ रैकिन, और सरजेण्ट ई॰डीन ने 1834 ई॰ में की थी। 973 ई॰ में उत्कीर्ण इस शिलालेख में हर्षनगरी और हर्षनाथ का विवरण है। इसके पश्चात् चौहान राजाओं की वंशावली तथा उनके द्वारा ग्रामदान का उल्लेख है। इसमें चौहान शासक गूवक से लेकर दुर्लभराज द्वितीय तक की वंशावली प्राप्त है। चौहान राजपूतों के राजनैतिक अध्ययन हेतु इस अभिलेख का महत्व घोषित करते हुए आलेख प्रस्तोता डा॰ रतनलाल मिश्र ने प्रतिपादित किया है कि यद्यपि पृथ्वीराजविजय चौहान शासकों की उपलब्धियां द्योतित करता है फिर भी उसमें अनेक तथ्य तिरोहित हैं, उन टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने का काम हर्ष–शिलालेख करता है। हर्ष–शिलालेख न केवल चौहानों बल्कि प्रतिहार एवं तंवर शासकों पर भी प्रकाश डालता है। आज इस बात की महती आवश्यकता है कि उक्त शिलालेख का सांगोपांग अध्ययन कर सम्पादन किया जावे ताकि इस शिलालेख के अवदान की पूरी जानकारी सुलभ हो सके।

ऐतिहासिक धरोहर सूंधा अभिलेख संस्कृत साहित्य की एक सरस रचना है जिसकी ऐतिहासिक महत्ता मुंशी देवीप्रसाद, पूर्णचन्द्र नाहर, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, बुद्धिराज, डा॰ कीलहॉर्न एवम् डा॰ दशरथ शर्मा ने स्वीकार की है। यह शिलालेख सूंधा नामक स्थान पर पाया गया है जो जालोर जिले के जसवन्तपुरा व भिन्नमाल क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। सूंधा पहाड़ी पर चामुण्डा मन्दिर के पास कई खण्डित शिलालेख उपलब्ध हैं जो अपूर्ण होने से अनुपयोगी हैं। यह शिलालेख जालोर के शासक चाचिगदेव से संबंधित है तथा इसका काल 1319 ई॰ है। इस शिलालेख से हमें बहुआयामी जानकारी मिलती है। नाडोल एवं जालोर के 19 चौहान शासकों के वृत्तान्त इसमें उपलब्ध हैं। उन शासकों की वीरता, उपलब्धियां, उदार दानादि प्रवृत्तियां, तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवम् राजनैतिक प्रवृत्तियों का वर्णन इस शिलालेख में हैं। आलेख का पठन डॉ॰ श्रीकृष्ण सोनी ने किया था।

जैसा कि चर्चा की जा चुकी है कि राजस्थान में दो प्रकार के शिलालेख प्रमुख रूप में पाये जाते हैं। प्रथम प्रतिष्ठा लेख जो मन्दिर बावड़ियों एवं कूपों के निर्माण एवम् जीर्णोद्धार के समय उत्कीर्ण करवाये गये तथा द्वितीय प्रकार के अभिलेख ऐतिहासिक काव्यों के रूप में हमारे सामने हैं जिन्हें शिलांकित कर लगवाया गया था।

इस प्रकार के अभिलेखों में राजप्रशस्ति 1676 ई॰ की चर्चा पूर्णतः प्रासंगिक है। यह प्रशस्ति राजनगर की नौचौकी के बंद की ताकों में 25 श्यामवर्णीय पाषाणों पर उत्कीर्ण है। इसमे मेवाड़पति बाप्पा से लेकर राजसिंह तक के शासकों का वर्णन है। तत्कालीन विवाह, खेलकूद, शिक्षा, निर्माणकार्य, सैनिक संगठन, दान, पुण्य भोजन आदि विविध विषयों पर प्रशस्तिकार ने प्रकाश डाला है। राजप्रशस्ति में वर्णित मेवाड़ शासकों के धार्मिक अनुष्ठान शीर्षकान्तर्गत प्रस्तुत आलेख में डॉ॰ वसुमति शर्मा ने मेवाड़ शासकों द्वारा धार्मिक अनुष्ठान के अवसरों पर दिये गये विविध प्रकार के दानादि का वर्णन किया है। राजा बनने के बाद जगत्सिंह ने प्रति वर्ष चांदी का तुलादान किया। वि॰सं॰ 1704 में जगत्सिंह ने सूर्यग्रहण के अवसर पर ओंकारेश्वर की पूजा कर स्वर्ण का तुलादान किया। इसी तरह से जन्मदिन, मूर्त्ति प्रतिष्ठा, अश्वमेध के अवसर पर तडाग, वापी एवम् जलाशयप्रतिष्ठा पर भी स्वर्ण एवं चांदीदान के अनेक निदर्शन हैं। इसके अलावा स्थान–स्थान पर अश्वदान, गजदान, ग्रामदान एवं पृथ्वीदान के कई उदाहरण हैं। संक्षेप में राजप्रशस्ति के आर्थिक एवं सामाजिक सन्दर्भ मेवाड़ के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से अध्ययन एवं मनन योग्य हैं।

अलवर क्षेत्र के संस्कृत शिलालेखों एवं संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर डॉ॰ देवकुमार ने अलवर क्षेत्र के इतिहास की प्रस्तुति अपने आलेख के माध्यम से की है। राजा मथनदेव का दानपत्र ई॰ सन् 922 ई॰ में लिखा गया था जिसमें कुलदेवी लच्छुका हेतु तेल, घी, फल आदि खाद्य सामग्री दानरूप में दिये जाने का वर्णन है। इसके

अतिरिक्त सन् 802 का तसई स्थान का शिलालेख, भानुगढ़ का शिलालेख एवं हरिश्चन्द्र का शिलालेख आदि माध्यमों से तत्कालीन राजनैतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी मिलती है।

इस प्रकार प्राप्त होने वाले अनेक अभिलेखों के अलावा राजस्थान के पूर्व शासकों के आश्रय में संस्कृत के जो काव्य लिखे गये हैं वे भी अपने समय के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक वैभव के साक्षी हैं, ऐसे काव्यों पर पढ़े गये शोध आलेखों की चर्चा करना अब श्रेयस्कर होगा।

जैसा के पूर्व में ही प्रतिपादित किया जा चुका है कि इतिहास के ज्ञानार्थ साहित्यिक सामग्री का भी अन्वेषण एवं अध्ययन आवश्यक है ऋवेद हमारे देश का ही नहीं अपितु विश्व का प्राचीनतम ऐतिहासिक ग्रन्थ है। पाणिनि एवं पतंजलि के व्याकरण ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि तत्कालीन अलवर, भरतपुर, करौली आदि भाग जनपद कहलाते थे। सम्राट् अशोक के पौत्र सम्प्रति का राजस्थान से विशेष लगाव था। इसी तरह से वाल्मीकि रामायण में वर्णित चित्रकूट चित्तौड़गढ़ के पास स्थित है। विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों में भी राजस्थान से संबंधित कई बातों का उल्लेख है। कुषाण वंश के ऐतिहासिक ग्रन्थ दिव्यावदान से पता चलता है कि तत्कालीन महायान शाखा का प्रचार वैराठ के आस पास था। नयचन्द्र सूरि, सिद्धेश्वरी एवं हेमचन्द्रसूरि के जैन ग्रन्थों से हमें तत्कालीन राजस्थान के विषय में काफी जानकारी मिलती है। इसके अलावा चारण–भाटों का साहित्य, ख्यातें एवं फारसी रचनाओं से भी राजस्थान के इतिहास की कई कड़ियां जुड़ती हैं। राजस्थान के पश्चिमांचल में स्थित मारवाड़ प्रदेश के राष्ट्रकूट नरेशों के विद्याप्रेम के बारे में प्रशस्तियों एवं समकालीन रचनाकारों ने काफी लिखा है। वि॰सं॰ 1561 के महाराणा रायमल्ल के घोसूंडी शिलालेख में जोधा को वीर एवं विद्वानों को सुवर्ण देकर तृप्त करने वाला बताया है। प्राचीन ख्यातों से ज्ञात होता है कि राजा गजसिंह के समय 14 कवियों को लाख पसाव दिया गया था। महाराजा गजसिंह के पिता सवाई शूरसिंह के काल का एक ऐतिहासिक काव्य 'सूरसिंहवंशप्रशस्ति' प्राप्त हुआ है जो इतिहास एवं काव्य का सुन्दर समन्वय होते हुये भी तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करता है। पूर्णतः इतिहाससम्मत होते हुये भी यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री का कोष है। चार सर्गात्मक इस काव्य में राष्ट्रकूट नरेशों की वंशावली के साथ ही मूल पुरुष सीहा से राजा सूरसिंह तक की घटनाओं का वर्णन है। सूरसिंह की सोजत, मेडता, गुजरात के शाहि बहादुर, दक्षिण के शाहि निजामुलमुल्क एवम् हब्शियों पर विजय पूर्णतः इतिहाससम्मत है। मारवाड़ का प्राचीनतम ऐतिहासिक काव्य होने से ग्रन्थ का महत्व स्वतः सिद्ध है। आलेख प्रस्तुति डॉ॰ उषा गोस्वामी की है।

सवाई शूरसिंह के पश्चात् महाराजा गजसिंह प्रथम सिहासनारूढ़ हुये किन्तु उनके काल का संस्कृत भाषा में लिखित कोई ऐतिहासिक काव्य नहीं मिलता। हां, इनके

समाश्रयत्व में हेम कवि ने गुणभाषाचरित्र तथा गाडण शाखा के कवि केशवदास ने गुणरूपक नामक डिंगल काव्यों की रचना की थी। राजा गजसिंह के उत्तराधिकारी जसवन्तसिंह प्रथम स्वयं बड़े विद्यानुरागी थे और इन्होंने अलंकारशास्त्र एवं वेदान्त विषय के अलावा नायिका भेद पर भी काव्य रचना की थी। महाराजा जसवन्तसिंह की भाषा एवं संस्कृत रचनाओं की कुल संख्या 10 है। अपने पिता की ही तरह महाराजा अजीतसिंह भी विद्यानुरागी होने के साथ–साथ विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। गुणसागर एवं भाव विरही नामक भाषा ग्रंथो की इन्होंने रचना की थी। मिश्रबन्धु विनोद ने इनके और भी ग्रंथ गिनाये हैं यथा–दुर्गापाठभाषा, राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुरों के दोहे, भवानी सहस्र नाम और फुटकर दोहे आदि। इन्हीं के काल में पण्डित श्यामराम ने ब्राह्मण–वर्णन नामक काव्य लिखा था। अजितसिंहचरित्र नामक भाषा ग्रन्थ भी इन्हीं के काल में हरिदास ने रचा था। इन्हीं महाराजा के काल मे दीक्षित बालकृष्ण ने संस्कृत काव्य अजितचरित्र की रचना की और भट्ट जगजीवन ने अजितोदय नामक संस्कृत काव्य की रचना की । अजितोदय महाकाव्य एवं अजितचरित्र पर क्रमशः डॉ० भगवतीलाल व्यास एवम् डॉ० गोविन्दराम चरौरा ने अपने–अपने आलेखों का पठन किया।

अजितोदय महाकाव्य 32 सर्गों में निबद्ध एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें ई० सन् 1674 से 1724 तक का काल वर्णित है। मारवाड़ के इतिहास में इस काव्य का विशेष महत्व है। जसवन्तसिंह के निधन के बाद मारवाड़ हड़पने हेतु औरंगजेब के विभिन्न कुचक्र, राजपूत वीरों की वीरता एवं दूरदर्शिता जैसी तमाम स्थितियों का लेखक ने विवेचन किया है। इस ग्रन्थ में जसवन्तसिंह से लेकर अभयसिंह के विवाह तक का वर्णन है। अजितोदय यद्यपि एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है तथापि कई मुद्दों पर इसमें तत्कालीन इतिहासग्रन्थों से मतभेद है। जसवन्तसिंह के निधनोपरान्त जोधपुर पर कब्जा करने हेतु बादशाह ने खांजहांबहादुर को भेजा था (मआसिरे आलमगीरी) किन्तु अजितोदय में इसका नाम बहादुरखाँ दिया है। अजितोदय में लिखा है कि चांदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी दूधपीती कन्या अजीतसिंहजी की धाय को सौंप दी थी और खुद बालक अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ की तरफ रवाना हो गई थी किन्तु सर यदुनाथ सरकार इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि दुर्गादास लड़ाई के बीच से ही शिशु अजीतसिंह को उठाकर ले गया था। कर्नल टॉड के अनुसार शिशु को मिठाई के टोकरे में छिपाकर ले जाया गया था। भाषाग्रन्थ राजरूपक में मोहकमसिंह की स्त्री का उल्लेख नहीं हैं। इसी प्रकार अजीतसिंह की अपने पुत्र बखतसिंह द्वारा जघन्य हत्या के विषय में अजितोदय मौन है किन्तु मआसिरउल उमरा में तारीखे मुजफ्फरी के हवाले से कहा गया है कि महाराजा अजीतसिंह बादशाह की परवाह नहीं करते थे। अतः बादशाह व उसके वज़ीर ऐतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ ने उसके बेटे बखतसिंह को बाप का उत्तराधिकारी बनाने का प्रलोभन देकर अजीतसिंह की हत्या करवाई। रेउ अपने मारवाड़ के इतिहास में लिखते हैं कि बादशाह ने किसी तरह से अभयसिंह के जाली हस्ताक्षरयुक्त पत्र तैयार करवाया जिसमें राज्यहित में बखतसिंह को अपने पिता को मारने का आदेश दिया गया था।

बालकृष्ण ने भी अजीतचरित्र काव्य महाराजा अजीतसिंह के काल में उनकी आज्ञा से लिखा था। इसके दश सर्गों में से प्रारम्भ के 6 सर्गों में अजीतसिंह के पूर्ववर्ती राजाओं का वर्णन तथा अन्तिम चार सर्गों में अजीतसिंह के जीवन एवं अन्य इतिवृत्त के विषय में लिखा है। काव्य ऐतिहासिक के साथ–साथ प्रशंसात्मक भी है। और मुख्य रूप से उन्हीं घटनाओं का चित्रण करता है जिनसे अजीतसिंह एवं पूर्ववर्त्तियों का पराक्रम चित्रित हो।

अजीतसिंह के पुत्र महाराजा अभयसिंह के कई भाषा काव्य मिलते हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक प्रामाणिक हैं। करणीदान का सूरजप्रकाश एवं रतनू शाखा के चारण वीरभांण का राजरूपक डिंगल भाषा के ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। दोनों ही काव्यप्रणेता महाराजा अभयसिंह के साथ अहमदाबाद युद्ध में गये थे और घटनाओं का आँखों देखा प्रामाणिक विवरण दिया है। इसी काल में भट्ट जगजीवन ! ने संस्कृत भाषा में अभयोदय महाकाव्य का सृजन किया जिसकी गणना महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्यों में की जाती है। यह महाकाव्य अप्रकाशित है। इन्हीं के काल में सांदू शाखा के चारण कवि पृथ्वीराज ने अभयविलास नामक भाषा काव्य की रचना की थी।

महाराजा भीमसिंहकालीन भीमप्रबन्ध नामक ऐतिहासिक महाकाव्य पर पं द्वारकादत्त भट्ट ने अपने पठित आलेख में इसे एक अप्रकाशित एवं महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य अभिहित किया है। इसमें तत्कालीन बीकानेर, ज़यपुर, उदयपुर, रतलाम, सीतामऊ एवं किशनगढ़ के अधिपतियों एवं घटनाओं का वर्णन है। जयपुर महाराजा जयसिंह के अश्वमेधयज्ञ एवं ब्राह्मणों को दी गई दक्षिणा का भी इसमें वर्णन है। प्रकारान्तर से इसमें महाराजा की सेना, हाथी, अश्व, ऊँट सवार, बैलगाड़ियां तथा विभिन्न धर्मावलम्बियों की पदाति सेना का भी विस्तृत वर्णन है। राजाओं का प्रजा के साथ फाग खेलना एवं अन्त पुर की गुप्तचर व्यवस्था आदि सैकड़ों सन्दर्भ इस काव्य को ऐतिहासिक के साथ–साथ सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाते हैं।

भीमसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा मानसिंह विद्यानुरागी के साथ स्वयं भी विशिष्ट कोटि के विद्वान थे जिनकी सैकड़ों की संख्या में विभिन्न विषयक रचनायें उपलब्ध हैं। इन्हीं के काल में श्रीकृष्ण शर्मा ने मुण्डकोपनिषद् की टीका लिखी। कवि शिरोमणि बांकीदास इन्हीं महाराजा के राजकवि थे जिन्होंने अपनी ओजस्वी कवित्तों के माध्यम से अंग्रेजों के समक्ष नतमस्तक होने वाले देशी राजाओं को फटकार लगाते हुए लोगों में स्वातन्त्र्य की लौ जागृत की।

महाराजा तखतसिंह के काल में भक्तिरस की कई कृतियों का सृजन हुआ। जोधपुर की रानी प्रतापकुंवरी ने हरिपदावली एवं रामपदावली नामक भक्ति साहित्य के दो ग्रन्थ लिखे थे। महाराजा तखतसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के काल में कविराजा मुरारिदान ने यशवन्तयशोभूषण नामक काव्य हिन्दी मे लिखा एवं

संस्कृत भाषा में बाद में उसका संस्कृत में अनुवाद कराया गया था। यशवन्तयशोभूषण पर डॉ॰ सोहनकृष्ण पुरोहित ने अपने आलेख की प्रस्तुति की थी। इसमें मण्डोर पर विभिन्न शासकों के राज्यकाल का चित्रण है। नागवंशीय शासकों के कारण यहाँ का पर्वत नागाद्रि नाम से प्रसिद्ध हुआ। परमारों में धरणीवराह बड़ा प्रसिद्ध शासक हुआ जिसने अर्बुद आदि नवकोटों को अपने भाइयों में बांट दिया। तब से यह नवकोटि मारवाड़ कहलाया। 1053 ई.' के हस्तिकुण्डि शिलालेख से विदित होता है कि धरणीवराह इतना शक्तिशाली नहीं था क्योंकि वह सोलंकी मूलराज के भय से राष्ट्रकूट धवल की शरण में चला गया था। परमार वंश में नाहड़राव परिहार ने पुष्कर का जीर्णोद्धार करवाया। इसके पश्चात् मुरारिदान ने जयचन्द्र से लेकर जसवन्त सिंह (द्वितीय) तक के शासकों के जीवन व उपलब्धियों का वर्णन किया है। संक्षेप में मारवाड़ के इतिहास पर शोध करने वालों के लिए यशवन्तयशोभूषण की भारी उपादेयता है। मारवाड़ के संस्कृत ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में वर्तमान सदी में पं॰ रामकर्ण आसोपा ने राष्ट्रौढमहाकाव्य लिखा है जिसका प्रकाशन व समीक्षा अभी बाकी है।

तत्कालीन बीकानेर राज्य में संस्कृत भाषा की ऐतिहासिक रचनायें देखने में आती हैं। सदाशिव भट्ट ने महाराजा कल्याणमल्ल की आज्ञा से (ई. 1542) राजविनोद नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें तत्कालीन लोगों का रहन–सहन, भोजन, पेय पदार्थ, उत्सव के अलावा राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों का भी चित्रण है। किले के निर्माण एवं आयुधों की बनावट पर प्रभूत जानकारी इस ग्रन्थ के माध्यम से मिलती है।

कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनककाव्यम् नामक ग्रन्थ की रचना जयसोम ने मन्त्री कर्मचन्द की आज्ञा से की थी। बीकानेर के बाजार, राज–प्रासाद, पुस्तक मन्दिर, पाठशालाएँ, शिशुगृह एवम् भोजन सत्र आदि की जानकारी हेतु उपयोगी है। 16 वीं शताब्दी के बीकानेर के चित्रण हेतु यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है।

यह सुविख्यात है कि अपने भू–भाग को हरा–भरा बनाने हेतु सन् 1927 में बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी सतलुज नदी से गंगानहर लाए थे। इससे पूर्व बीकानेर में सन् 1899 में एक दुर्भिक्ष पड़ा था जिसके प्रत्यक्षदर्शी एवं भुक्तभोगी महाराजा गंगासिंहजी भी थे। गंगोदय काव्य द्व्यर्थक है– गंगा नहर का उदय तथा महाराजा गंगासिंह का उदय। अतः गंगोदय काव्य जहां पतितपावनी गंगा के उदय का वर्णन करता है वहीं महाराजा गंगासिंह के उत्थान एवं समुन्नति का भी द्योतक है। इस काव्य की ऐतिहासिक विवेचना में डॉ॰ ब्रह्मानन्द शर्मा ने इतिहास का अर्थ स्पष्ट करते हुये कहा है कि इसमें न केवल काव्य विशेष से संबंधित घटनायें ही आती हैं अपितु काल विशेष से संबंधित प्रदेश का प्राकृतिक एवं सामाजिक स्वरूप भी आते हैं। यदि हम घटनाओं, तिथियों को इतिहास का सीमित अर्थ कहें तो, प्राकृतिक एवं सामाजिक अवस्थितियों को उसका व्यापक अर्थ कह सकते हैं। अतः गंगोदय को प्राकृतिक इतिहास का काव्य कहें

तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी–एक प्राकृतिक अवस्था गंगा के आगमन से पूर्व की है तथा उत्तरवर्ती स्थिति गंगोदय के बाद की है। अतः गंगोदय काव्य में इतिहास एवं भूगोल का अनूठा समन्वय है।

मेवाड़ में उपलब्ध अधिकांश काव्य ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित है। रणछोड़ भट्ट की राजप्रशस्ति का रचनाकाल 1718–1732 वि॰सं॰ है और इसकी परिगणना महाकाव्यान्तर्गत की जाती है। शिलालेखान्तर्गत इसकी चर्चा की जा चुकी है। दूसरा महाकाव्य सदाशिव नागर विरचित राजरत्नाकर महाकाव्य है जो महाराणा राजसिंह के जीवन व राज्यकाल की घटनाओं से संबंधित है। यह महाकाव्य राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की पुरातन ग्रन्थमाला में प्रकाशनाधीन है। राजप्रशस्ति महाकाव्य पूर्व से ही प्रकाशित है।

महाराणा जयसिंह ने भूमि को शस्य–सम्पन्न बनाने की नीति से छप्पनप्रदेश स्थित गोदा नदी को बांधकर जयसमुद्र का निर्माण करवाया था। तत्पश्चात् इस तड़ाग पर शिलालेख लगाने की दृष्टि से जयसिंहप्रशस्ति की रचना रणछोड़भट्ट ने महाराणा अमरसिंह द्वितीय की प्रेरणा से की थी, किन्तु अन्यान्य कारणों से इस प्रशस्ति को शिलांकित नहीं करवाया जा सका। इस काव्य में 18 सर्ग हैं। 1–12 सर्ग तक मेवाड़ वंश के विभिन्न राजाओं एवं उनके जीवन का वर्णन है, 13–17 सर्ग तक जयसमन्द निर्माण का वर्णन है तथा अवशिष्ट सर्गों में तड़ागोत्सर्ग के समय दिये गये दानों तथा अतिथियों की विदाई का वर्णन हैं। ढेबर नामक गाँव का नाम बदलकर जयनगर रखना तथा जयसमंद महल का नाम जयप्रासाद रखने का उल्लेख मात्र इसी ग्रन्थ में मिलता है। महाराणा जयसिंह के निधन की तिथि इस काव्यानुसार वि॰ सं॰ 1756 है, किन्तु ओझाजी ने इसे वि॰सं॰ 1755 बताया है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन सभी युद्धों का वर्णन है किन्तु अमरसिंह एवं जयसिंह के संघर्ष का किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं है जो इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं है।

मेवाड़ की अनुत्कीर्ण संस्कृत प्रशस्तियों पर डॉ॰ जगदीशचन्द्र जोशी ने अपने पठित आलेख में कहा है कि इनका प्रचलन 10 वीं शताब्दी से रहा है और ऐसी प्रशस्तियाँ यहाँ के शासकों से सम्बन्धित रही हैं। यहाँ के इतिहास सम्बन्धी ज्ञातव्य के लिये इन प्रशस्तियों का विशेष महत्व रहा है। इस सम्बन्ध में कीर्त्तिस्तम्भप्रशस्ति, कुंभलगढ़प्रशस्ति तथा महाराणा कुंभा की पुत्री रमाबाई द्वारा निर्मित जावर की रमानाथ मन्दिर की प्रशस्ति उल्लेखनीय है। इसके अलावा जयसमुद्रप्रशस्ति एवं फतहप्रकाशप्रशस्ति को भी अनुत्कीर्ण प्रशस्तियों में परिगणित किया जा सकता है। देबारी की राजराजेश्वरप्रशस्ति की रचना महाराणा अरिसिंह के (1817–28 वि॰सं॰) राज्यकाल में की गई थी। इसका प्रकाशन आर॰सी॰ अग्रवाल जयपुर करवा चुके हैं।

अमरसार काव्य की रचना महाराणा अमरसिंह प्रथम के मन्त्री डूंगरसिंह की प्रेरणा से जीवंधर पण्डित ने की थी। यह काव्य अमरसिंह के पौत्र राजा जगत्सिंह के शासनकाल में पूरा हुआ था। काव्य के यशखण्ड, नीतिखण्ड एवं धर्मखण्ड में क्रमशः अमरसिंह का वैभव एवं दिनचर्या, नीतिचर्या एवं धर्मविषयक वृत्तान्तों का वर्णन है। आलेख प्रस्तुति डॉ॰ चन्द्रशेखर पुरोहित ने की है।

इसके अतिरिक्त राणा कर्णसिंह के आत्मज जगत्सिंह की अनुशंसा में कवि रघुनाथ ने जगत्सिंहकाव्यम् की रचना की थी। इसमें जगत्सिंह की यशोगाथा एवं पराक्रम का वर्णन है।

मोहनभट्ट का जगत्सिंहाष्टक, मुकुन्द श्रोत्रिय का राजसिंहाष्टक, ध्रुवपाणिमिश्र की राज्याभिषेकपद्धति, राज्यपट्टाभिषेकपद्धति, राजसिंहप्रभोर्वर्णनम् रणछोड़भट्ट, का अमरकाव्य, वैकुण्ठ व्यास का अमरसिंहाभिषेककाव्य, संग्रामसिंह महोदयकाव्य तथा वीरतरंगरंग आदि कई ऐतिहासिक ग्रन्थों की गणना की जा सकती है, जिनमें इतस्ततः ऐतिहासिक सामग्री बिखरी पड़ी है।

महाराणा भूपालसिंहजी (ई॰ 1930–56) के काल में फतहप्रकाशप्रशस्ति नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना चारण कवि करणीदान ने की थी। षोडश सर्गों में निबद्ध इस काव्य में मेवाड़ के विभिन्न महाराणाओं के विवाह, नवनिर्माण, शिक्षा, साहित्य, स्थापत्य कला, राज्याभिषेक, शासन व्यवस्था,कृषि, रहन–सहन खान–पान, रीतिरिवाज एवं अतिथि सत्कार आदि विविध विधाओं का विस्तृत वर्णन है। आलेख–प्रस्तोता डॉ॰ देवीदत्त शर्मा के अनुसार यह काव्य मेदपाट के लिये ही नहीं बल्कि भारतीय एवं अभारतीय इतिहासकारों का मार्गदर्शन कर इतिहास के क्षेत्र में गुह्य तत्वों को समुद्घाटित करने में सक्षम है।

राजस्थान के संस्कृत रूपकों में महाराणा प्रताप का स्वरूप निरूपण विषयक आलेख की प्रस्तुति करते हुये डॉ॰ हरमल रेबारी ने बताया है कि राजस्थान में रूपक की विधा का शुभारम्भ ललितविग्रहराज तथा हरकेलि नामक रूपकद्वय से माना जा सकता है। महाराणा प्रतापविषयक रूपकों का निरूपणं ही प्रस्तुत आलेख का प्रतिपाद्य है।

एक सुविख्यात उक्ति 'वाराणसीं' वा जयपत्तनम् वा के' अनुसार जयपुर नगर किसी समय में विद्वता में वाराणसी के तुल्य था। राजस्थान के इतिहास में जयपुर नगर का विद्याप्रेम प्रशंसनीय है। औरंगजेब जब इस देश के बहुमूल्य ग्रन्थों को अपने हमाम में जलवाया करता था तब तत्कालीन जयपुर के शासकों ने इन ग्रन्थों की रक्षा करते हुये इन्हें आमेर व 'जयपुर' के पोथीखानों में रखकर सुरक्षित किया था। मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम ने सारे भारत में घूम–घूम कर नष्ट होती ग्रन्थसम्पदा एकत्रित की तथा स्थानीय विद्वानों से भी ग्रन्थ रचना करवाई।

महात्मा अग्रदास 1575 ई, नाभादास 16 वीं, दादूदयाल 1544 ई॰, रज्जब 1567 ई॰, सुन्दरदास 1596 ई॰ एवं गरीबदास 1603 ई॰, को जयपुर राजघराने द्वारा साहित्य सृजन हेतु प्रोत्साहित किया गया। इसके अलावा कविवर बिहारी जयसिंह प्रथम के समाश्रय में रहते थे। पद्माकरभट्ट, कुलपतिमिश्र, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट, कवि मण्डन आदि अनेक कवियों ने जयपुर राज्य का आश्रय पाकर साहित्य सेवा की।

जयपुर के ऐतिहासिक संस्कृत काव्यों में महाराजा पृथ्वीराज (1559–1584 सं॰) के समय का एक खण्डित महाकाव्य उपलब्ध है। इसमें दूलहराय से लेकर महाराणा पृथ्वीराज के पुत्र भीम तक का वर्णन है। काव्य अतिरञ्जनापूर्ण होने से इतिहास इतस्ततः बिखर गया है। महाराजा मानसिंह एवं मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम तक अर्थात् 1667 ई॰ तक कोई ऐतिहासिक काव्य प्राप्त नहीं है, हाँ इस काल में पुण्डरीक विट्ठल, दलपतराज, श्री सुन्दरमिश्र, श्री नित्यानन्दाश्रय के अलावा कई अज्ञात कवियों की बीसों रचनायें मिलती हैं जो सभी इतिहास विषय की हैं। महाराजा विष्णुसिंह के पश्चात् सवाई जयसिंह द्वितीय का शासन कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। फारसी एवं संस्कृत भाषा के ज्ञान के अलावा महाराजा स्वयम् ज्योतिषशास्त्र के बहुत बड़े विद्वान् थे और उन्होंने अपने जीवनकाल में दिल्ली, मथुरा, उज्जैन, जयपुर तथा काशी में पाँच ज्योतिष यन्त्रालयों का निर्माण करवाया। इनके काव्य में तन्त्र–मन्त्र, काव्य, दर्शन, ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र आदि विविध विषयक ग्रन्थ प्रचुर मात्रा में लिखे गये। ईश्वरीसिंह (1743–50 ई॰) के समय का ईश्वरविलास महाकाव्य सुविख्यात है जिसमें ईश्वरीसिंह द्वारा किये गये राजसूय याग का वर्णन है। इसके अतिरिक्त ईश्वरीसिंह के काल में गंगाराम पौण्डरीक, श्री रामचन्द्रभट्ट पर्वणीकर, श्री दीनानाथ सम्राट् एवं श्री सदाशिव शर्मा आदि संस्कृत, आयुर्वेद, व्याकरण एवं धर्मशास्त्र के विद्वान् थे। इसके पश्चात्वर्ती सवाई माधवसिंह, सवाई पृथ्वीसिंह के काल में भी संस्कृत साहित्य की काफी अभिवृद्धि हुई किन्तु, ऐतिहासिक काव्य उपलब्ध नहीं हैं। सवाई प्रतापसिंह (1778–1803 ई॰) के काल में श्री भोलानाथ शुक्ल ने कर्णकुतूहलम् नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा जो पुरातन ग्रन्थमाला से प्रकाशित है। कर्णकुतूहल के राजनैतिक एवं सामाजिक पर्यालोचन आलेख में डा॰ ठाकुरदत्त जोशी ने इसके तीन कुतूहलों में विभक्त सामग्री का विस्तृत विवचेन किया है। प्रथम कुतूहल में निजाश्रयदाता महाराजा प्रतापसिंह तथा उनके पिता व पितामह पर्यन्त यशोगान एवं वीरता का वर्णन है। दूसरे कुतूहल में संयोग शृंगार का वर्णन तथा तृतीय कुतूहल में राजकुमार का भ्रमण व जनता द्वारा किये गये स्वागत का विस्तार से वर्णन है।

कूर्मवंशावतंस श्री मुहणसिंहवंश चूडामणि शीर्षकान्तर्गत आलेख के प्रस्तोता हैं–डॉ॰ ब्रजमोहन जावलिया, जिन्होंने इस काव्य की विषयवस्तु का विस्तार से वर्णन किया है। कवि ने निजाश्रयदाता राजा प्रतापसिंह की राजधानी ईसरदा तथा वहां के पूर्व राजाओं का गुणगान बखान करते हुए कच्छवाहा वंश की ईसरदा शाखा के उद्भव और

इस वंश में समुत्पन्न मोहनसिंह के पुत्र कोजूराम व प्रतिपक्षी अभयमल्ल के शौर्यादि गुणों के अलावा चौहान एवं कच्छवाहा वंश के अनेक वीरों के शौर्यादि गुणों का वर्णन किया है।

सवाई जगत्सिंह के काल से लेकर अद्यावधि संस्कृत काव्यों की रचना का क्रम अनवरत जारी है। वि॰सं॰ 1923 में जन्में हरिवल्लभभट्ट 'कविमल्ल' ने जयनगरपंचरंगमनुशीलनम् में कच्छपवंशीय राजाओं की वंशावली के साथ प्रकारान्तर से जयपुर की सरगाशूली, त्रिपोलिया, राजप्रासाद, चौपड़, तालकटोरा तालाब, नाहरगढ़ रामनिवास उद्यान, म्यूजियम, पुराना घाट, मानसागर तथा अन्यान्य सुरम्य स्थानों का मनोहारी व चित्रात्मक वर्णन किया है। अतः ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रन्थ की उपादेयता असंदिग्ध है। ग्रन्थ निर्णय सागर प्रेस बम्बई से 1894 ई॰ में प्रकाशित है। कविमल्ल की मुक्तक, खण्ड एवं स्तोत्रादि को मिलाकर १० रचनायें हैं। आलेख प्रस्तुति डॉ॰ दामोदर शास्त्री की है।

कविशिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री इस काल के राजस्थान के संस्कृत भाषा के उद्भट् विद्वान् माने जाते हैं। आपके प्रकाशित अप्रकाशित 27 ग्रन्थ, 40 कहानियाँ एवम् ३६ निम्बन्ध हैं, व अधिकांश निबन्ध संस्कृत रत्नाकर में मुद्रित हो चुके हैं। साहित्यवैभवम्, गोविन्दवैभवम् के अलावा इन्होंने ईश्वरविलासमहाकाव्य पर भी संस्कृत टीका लिखी थी। 'जयपुरवैभवम्' की ऐतिहासिक दृष्टि पर डॉ॰ गंगाधरभट्ट ने आलेख प्रस्तुत करते हुये श्रीशास्त्री की भौगोलिक एवम् ऐतिहासिक दृष्टि को प्रतिपादित किया है। इसमें जयपुर के महाराजा माधवसिंह का विस्तृत वर्णन है , उनके राज्यकाल में जयपुर के मेले, हाट, बाजार, जन्मोत्सव आदि वर्णनों से जयपुर की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का परिज्ञान होता है, साथ ही कवि ने तत्कालीन राजनैतिक उतार–चढ़ावों का स्पष्ट उल्लेख करते हुये स्थान–स्थान पर स्वतन्त्रता हेतु आन्दोलनों का उल्लेख किया है।

चौहानों के इतिहास पर भी संस्कृत व राजस्थानी भाषाओं में काफी साहित्य रचा गया है। चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो काफी प्राचीन ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अत्यधिक विवादग्रस्त है और इसके सही समय का इतिहासकार अभी तक पता नहीं लगा सके हैं। पद्मनाभ का कान्हड़दे प्रबन्ध भी एक बहुचर्चित काव्य है जिसमें जालोर के चौहानों का इतिहास है। शार्ङ्गराज व जोधराज का हमीररासो, ग्वाल कवि एवं चन्द्रशेखर का हमीरहठ सूर्यमल मीसण का वंशभास्कर आदि ग्रन्थ मुख्य रूप सें चौहान वंश का ही प्रतिपादन करते हैं। अभी पुरातन ग्रन्थमाला जोधपुर से खेम कवि का हमीरायण मुद्रित हो रहा है।

संस्कृत भाषा में भी चौहान वंश पर जयानक कवि का पृथ्वीराजविजय, नयचन्द्र सूरि का हमीरमहाकाव्य, चन्द्रशेखर का सुर्जनचरित महाक़ाव्य, विश्वनाथ का शत्रुशल्य चरित महाकाव्य उपलब्ध हैं। चौहान वंश पर रामविलासमहाकाव्य भी बूंदी से प्राप्त हुआ है जिसे पुरातन ग्रन्थमाला जोधपुर हेतु सम्पादित करवाये जाने की कार्यवाही चल रही हैं।

पृथ्वीराजमहाकाव्यम् का संदेश शीर्षकान्तर्गत आलेख का पठन डॉ॰ मंजुला गहलोत ने किया था। महाराजा पृथ्वीराज के समकालीन कवि जयानक की इस रचना में 12 खण्ड हैं जो पृथ्वीराज की विजय एवम् वैभव को चित्रित करते हैं। इस अपूर्ण कृति को सन् 1941 में इतिहासकार ओझा एवं चन्द्रधर शर्मा ने सम्पादित कर प्रकाशित करवाया था। चौहान इतिहास की जानकारी हेतु इस काव्य की भारी उपादेयता है।

नयचन्द्र सूरि ने हमीर के निधनोपरान्त कम से कम 150 वर्ष पश्चात् हमीर महाकाव्य की रचना की थी। काव्य का रचनाकाल वि॰सं॰ 1440 के पश्चात् माना जाता है। डॉ॰ पुष्करदत्त शर्मा ने हमीरकाव्य पर प्रस्तुत आलेख में निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

(१) महाकवि ने प्रत्यक्ष रूप से दुर्ग को बिना देखे ही काव्य रचना की है।

(२) पृथ्वीराज चौहान ने गोरी के साथ प्रथम युद्ध तक्षशिला में किया था।

(३) गोविन्दराज पृथ्वीराज का पुत्र था, न कि पौत्र।

(४) रणथम्भौर दुर्ग के निमार्णकर्त्ता के रूप में गोविन्दराज को रखना ठीक नहीं है।

(५) यवन सैनिकों द्वारा खाई को पाटना कपोलकल्पित है क्योंकि किले के भीतर या बाहर कोई खाई नहीं है।

(६) पृथ्वीराज की प्रेयसी संयोगिता एवं जयचन्द्र का काव्यकार ने नामोल्लेख भी नहीं किया है, जो आश्चर्यजनक है।

(७) देवल्लदेवी का समर्पणात्मक प्रस्ताव कपोलकल्पित लगता है।

सुर्जनचरित महाकाव्य की रचना कवि चन्द्रशेखर द्वारा 1578 ई॰ के लगभग की गई थी। बीस सर्गात्मक इस काव्य में चौहानवंशीय राजाओं के इतिहासक्रम में बूंदी के राव सुर्जन तथा उनके युवराज भोज का वर्णन है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का यह आरोपण कि इस देश का इतिहासकार इतिहासबोध से अपरिचित है, समीचीन नहीं है। संक्षिप्त रूप से विगत पृष्ठों में रामायण, महाभारत एवं पुराणों की चर्चा में यह पाया गया है कि इन ग्रन्थों का हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक जीवन से गहरा रिश्ता है। वस्तुतः पुराण तो सही अर्थ में हमारे इतिहास ग्रन्थ ही हैं किन्तु पाश्चात्य दृष्टि के अनुयायी इतिहासकारों ने इन्हें कपोलकल्पितं कहकर उपेक्षित एवं निष्कासित कर दिया है। महाकवि कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ एवम् श्रीहर्ष के काव्यग्रन्थों में भी जगह–जगह राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक इतिहास बिखरा पड़ा है। हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्ये के अनुसार मात्र इतिहास प्रत्यभिज्ञान की शोधदृष्टि आवश्यक है।

वैसे संस्कृत साहित्य में बाणभट्ट के हर्षचरित से संस्कृत ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा मानी जाती है। राजस्थान के ऐतिहासिक काव्यों में शिलालेखांकित कृतियाँ तो निश्चित रूप से विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। यहां के अधिकांश काव्य राज्याश्रित कवियों द्वारा प्रणीत हैं अतः आश्रयदातानृप के अवास्तविक गुणों के अतिरञ्जनापूर्ण वर्णन के साथ साथ उन के पराभवादि प्रतिकूल पक्ष को न द्योतित करना ही अधिकांश कवियों को अभीष्ट रहा है। मारवाड़ का अजितोदयमहाकाव्य इतिहास का अकूत खजाना है किन्तु शासक अजीतसिंह की जघन्य हत्या का इसमें वर्णन नहीं है। अजीतचरित्र भी इस घटना के बारे में मौन है। भीमप्रबन्ध में भीमसिंह का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण है लेकिन भीमसिंह के विलासी व दुराचारी व्यक्तित्व को नहीं दर्शाया गया है। चौहानवंशीय राजा पृथ्वीराज की कीर्त्ति एवं वैभव का वर्णन तो पृथ्वीराजविजय काव्य में हैं किन्तु पराभव की गाथा लिखना शायद प्रणेता को ठीक न लगा। अतः काव्य को अपूर्ण ही छोड़ दिया। हम्मीर महाकाव्य के विषय में निष्कर्ष निकाले गये हैं कि यह रचना पहले तो हमीर के निधन के 150 वर्ष के पश्चात् की है और कवि ने संबंधित महल के भूगोल एवं स्थापत्य को बिना देखे ही रचना धर्मिता का निर्वहन किया है।

यहाँ पर हमें इस बात का विचार करना चाहिये के राज्याश्रित कवियों के अधिकांश काव्य राजस्थानी कवियों की तरह युद्धादि के प्रत्यक्ष दर्शन के अनुभवी नहीं रहे हैं और इसीलिये राजनैतिक घटनाचक्र का यथार्थ चित्रण करने में उनकी कलम उतनी प्रवाहित नहीं हो पाई। जाहिर है, इन ग्रन्थों को इतिहास के मूल स्रोत सामग्री के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया वरन् वह सहायक सामग्री है और कवि के कल्पना विलास एवम् अतिरंजना के बीच ज्ञात अज्ञात इतिहास के सूत्रों को ढूंढने का कार्य अन्वेषक का ही है। दूसरे, इतिहास केवल राजनैतिक इतिहास है भी नहीं, विशेषकर वर्तमान सदी में इतिहास के बदले आयामों में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का आकलन करने के लिये ये ही एकमात्र साधन हैं क्योंकि दस्तावेज एवं ऐतिहासिक स्रोत सामग्री जनसामान्य के जीवन के प्रति उदासीन देखे गये हैं। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो इस प्रकार के साहित्य की उपादेयता स्वयम् सिद्ध है।

इस दृष्टि से जैन महाकाव्यों का भी अलग से अध्ययन किया जाना चाहिये जो विरक्तिपरक होते हुये भी सामाजिक प्रवृत्तियों का चित्रण करते हैं।

ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्राक्कथन

–डॉ. गोपीनाथ शर्मा

संस्कृत, ईसवी पूर्व शताब्दियों में भारत की बोल–चाल की भाषा थी और राजस्थान भी इससे वंचित नहीं था। यह इतनी लोकप्रिय थी कि ईसवी की दूसरी या तीसरी शताब्दी में इन्डोचीन में संस्कृत पहुंच गई। वहाँ से मलय, इन्डोनीशिया, जावा, सुमात्रा, बाली में फैल गई। इस प्रकार इसकी सर्व–स्वीकृति तथा लोकप्रियता ने इसकी संज्ञा 'देवभाषा' में संस्थापित कर दी। इस देववाणी तथा आर्य भाषाओं के बीच प्राकृत तथा अपभ्रंश जोड़ने वाली कड़ियाँ हैं। सदियों से राजस्थान में संस्कृत और प्राकृत साथ–साथ चलती रही हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान् अबुरिहा अलबेरूनी ने, जो ग्यारहवीं शताब्दी में कई वर्षों तक भारत वर्ष में रहा, संस्कृत भाषा और उसमें रचित ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वह अपनी पुस्तक 'तहकीके हिन्द' में लिखता है कि – "दुर्भाग्य है कि हिन्दू लोग घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम की ओर ध्यान नहीं देते। वंशानुक्रम से अपने राजाओं की वंशावलियाँ रखने में भी वे बड़े असावधान हैं और जब उनसे इस विषय में पूछा जाता है तो ठीक उत्तर न देकर वे इधर–उधर की बातें बनाने लगते हैं।"

अलबेरूनी के उपर्युक्त कथन से यदि कोई यह आशय समझते हों कि भारतवासियों को इतिहास लिखने की रुचि न थी या भारतवर्ष में लिखित इतिहास के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, तो यह धारणा असत्य है क्योंकि वेद, पुराण, काव्य, नाटक, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, कोष आदि अनेक विषयों में अपनी–अपनी विधा का संस्कृत में प्रतिपादन मिलता है, परन्तु साथ ही उनके अध्ययन से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक बिन्दुओं के स्रोत उपलब्ध होतें हैं जिनकी सहायता से एक सर्वांगपूर्ण इतिहास का कलेवर खड़ा किया जाता है। ऐसा इतिहास आलोचनात्मक, वैज्ञानिक और विश्वस्त होता है। यह तो निर्विवाद है कि प्राचीन काल में भारतवाषी इतिहास प्रेमी रहे हैं और उन्होंने समय–समय पर ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं। हम जानते हैं कि वेद, पुराण आदि से भारतीय प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक अंग पर प्रभूतं प्रकाश पड़ता है, जिसका विस्तार से वर्णन करना यहाँ अपेक्षित नहीं है।

जो धारणा भारत के इतिहास के संबंध में है वह राजस्थान के लिए भी है। यह बात निर्विवाद है कि यहाँ भिन्न–भिन्न समय में राजाओं की वंशावलियाँ तथा ऐतिहासिक घटनाओं का ब्यौरा लिखा जाता था। साथ ही यहाँ के समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधि भी प्रसंगवश लिखी जाती थी। युद्ध, संधियाँ, पुरुषों व स्त्रियों के जीवन–संबंधी जानकारी भी ऐसे लेखन द्वारा उपलब्ध कराई जाती थी।

जहाँ तक संस्कृत–साहित्य, राजस्थान के संदर्भ में, ऐतिहासिक वर्णन से संबंधित है, वह तत्कालीन शासकों व लोगों के धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक तथा रस्म–रिवाज, युद्ध–सन्धि, दरबारी व लोक–जीवन के परिप्रेक्ष्य में बड़ा समृद्ध है।

यह साहित्य मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1– शिलालेख व ताम्रपत्र

2– संस्कृत–साहित्य में इतिहास

1– शिलालेख

राजस्थान के इतिहास की जानकारी के लिए सबसे महत्वपूर्ण, प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण इतिहास पर प्रकाश डालने वाले शिलालेख और दानपत्र हैं। शिलालेख मन्दिरों, स्तंभों, मठों, तालाबों, खेतों, जलाशयों, मूर्त्तियों के आसनों पर खुदे मिलते हैं, जिनमें राजाओं और अन्य व्यक्तियों के संबंध में वर्णन अंकित रहता है। इनसे समय तथा घटनाओं का बोध होता है। ये लेख काव्य की संज्ञा में आते हैं जिनके द्वारा केवल ऐतिहासिक ज्ञान ही नहीं बल्कि उनसे काव्य–सौरभ, शिल्प, वीर पुरुषों के आख्यान आदि का भी हमें बोध होता है। इन सभी का विस्तार भय से वर्णन करना आवश्यक नहीं है। अतएव कुछेक पर प्रकाश डालना ही समीचीन होगा।

मेवाड़ से संबंधित लेख

1– नगरी का लेख (200–150 ई॰ पू॰)

यह एक खंड़ लेख चित्तौड़गढ़ के निकट गाँव में है जिसकी पक्तियाँ खंडित हैं। इसमें वर्णित विषय पर पूरा प्रकाश डालना कठिन है। परन्तु "सर्वभूतानां दयार्थ" से अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवों की रक्षार्थ यहाँ किसी स्थान का निर्माण कराया हो। संभवत : यह लेख जैन बौद्धों से संबंधि ात हो।

2– घोसुन्डी–शिलालेख (द्वितीय शताब्दी ई. पू.)

यह भी खंडित लेख है जो चित्तौड़ के निंकट घोसुन्डी ग्राम से प्राप्त था और जिसे उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। प्रस्तुत लेख की तीन पंक्तियों में वासुदेव पूजागृह के चारों ओर पत्थर की चहारदीवारी बनाने और गजवंश के सर्वतात द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख है। इससे सर्वतात के पराशरी वंश में होना तथा भागवत धर्म के तत्कालीन प्रचलन का बोध होता है।

3– नादसा–यूप–स्तम्भ (225 ई.)

यह स्तम्भ नादसा में (भीलवाड़ा) में विद्यमान है जिसमें षष्टिरात्रि यज्ञ और क्षत्रियों के राज्य विस्तार का वर्णन है।

4– सांभोली–शिलालेख (646 ई.)

भोमट जिले का लेख गुहिलों के समय– निर्धारण, शिलादित्य की विजय, अरण्यवासिनी देवी के मन्दिर, भीलों पर शिलादित्य की विजय और जावर की खनिज सम्पदा, यहाँ व्यापारियों का संक्रमण आदि बिन्दुओं द्वारा मेवाड़ के इतिहास के लिए उपयोगी है। अरण्यवासिनी देवी का

शाक्त–सम्प्रदाय में सम्मिलित करना एक प्रकार से लोकदेवी का जन–आस्था में संस्थापित करने का अच्छा उदाहरण है।

5– शंकर घट्टा का लेख (713 ई.)

इसमें चित्तौड़ के मानभंग का प्रसंग है, जिसने वहाँ गगनचुंबी प्रासाद, वापी आदि का निर्माण कराया। इस लेख से मिलता–जुलता मानमोरी का लेख है जिसमें महेश्वर, भीम, भोज और मान का वर्णन है। बाप्पा द्वारा चित्तौड़ लेने के विवाद को सुलझाने का यह अच्छा स्रोत है। इस लेख का अनुवाद टॉड कृत राजस्थान में उपलब्ध है।

6– सारणेश्वर (आहड़) प्रशस्ति (953 ई.)

प्रारंभ में यह प्रशस्ति वराह मन्दिर में लगी होगी जिसे सारणेश्वर मन्दिर के सभा–मण्डप के छपने में लगा दी गई है। दसवीं शताब्दी के मेवाड़–शासन– व्यवस्था की जानकारी के लिए यह प्रशस्ति बड़ी उपयोगी है। इसमें अमात्य, संधिविग्रहिक, अक्षपटलिक, वन्दिपति, भिषगाधिराज, गोष्ठिक आदि का अल्लट के समय से शासकीय कर्मचारियों की जानकारी मिलती है। लेख से यहाँ मन्दिर के लिए घोड़े, हाथी आदि से कर लेने की भी सूचना प्राप्त होती है।

7– बिजौलिया का लेख (1170 ई.)

इस लेख से ऊपरमाल क्षेत्र के उपजाऊ होने और व्यापारिक केन्द्र होने की सूचना मिलती है। इसमे जाबालिपुर, नड्डुल, शाकम्भरी, श्रीमाल, मंडलकर, नागहुद, विन्ध्यावलि आदि समृद्ध नगरों की नामावलि प्राप्त होती है। वास्तव में बारहवीं शताब्दी के जन–जीवन, धार्मिक–व्यवस्था तथा भौगोलिक और मेवाड़ की राजनीतिक स्थिति जानने के लिए इस लेख का बड़ा महत्व है।

8– कीर्त्तिस्तम्भ प्रशस्ति (1460 ई.) व कुंभलगढ़प्रशस्ति (1460 ई.)

ये दोनों लेख महाराणा कुंभा की विजयों तथा उस समय की शैक्षणिक गतिविधियों पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। साथ ही महाराणा कुंभा की उपलब्धियों, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी के लिए ये प्रशस्तियाँ बड़े काम की हैं। इनमें कुछ सामाजिक संस्थाओं के उल्लेख हैं जैसे–दास–प्रथा, आश्रम–व्यवस्था, वैदिक–प्रक्रिया, धर्मशाला, पाठशाला आदि।

9– राजप्रशस्ति (1676 ई.)

यह प्रशस्ति राजनगर की नौचौकी के बंद की ताकों में 25 श्याम रंग के पाषाणों में उत्कीर्ण हैं। इसमें बाप्पा से लेकर राजसिंह तक की मेवाड़ के शासकों का वर्णन है। इसमें औरंगजेब के साथ के युद्ध और संधि तथा अन्य राज्यों से राजसिंह के संबंध आदि का भी अच्छा विवरण है। उस समय के विवाह, खेल, शिक्षा, निर्माण कार्य, मुद्रा, सैनिक–संगठन, धर्म, दान–पुण्य, व्यवसाय, भोजन व वस्त्रों के प्रकार आदि विविध विषयों पर प्रशस्तिकार ने प्रकाश डाला है। इसमें राजसमुद्र तालाब के निर्माण में 10507908 रुपये खर्च होने का उल्लेख है।

मारवाड़ की प्रशस्तियाँ

बुचकुला का लेख (815 ई.) में सामन्त प्रथा व कर, मण्डोर के लेख से (837 ई.) प्रतिहारों के संबंध में नगर निर्माण का, घटियाला लेख (861 ई.) से समाज के विभिन्न वर्गों का, किनसरिया के लेख से (999 ई.) वाक्पतिराज, सिंहराज और दुर्लभराज का, नाडोल लेख (1441 ई.) से स्थानीय शासन व्यवस्था का, सिंहराज और दुर्लभराज का, नाडोल लेख (1141 ई.) से स्थानीय शासन व्यवस्था का, भीनमाल के लेख (1271 ई.) से पंचकुल व्यवस्था का, हीरावाड़ी लेख से (1540 ई.) मारवाड़ की समृद्धि का बोध होता है।

अन्य राज्यों के लेख –

बर्नाला यूप–स्तम्भ लेख (227 ई.)

जयपुर राज्य के अन्तर्गत बर्नाला नामक स्थान पर एक यूप–स्तम्भ प्राप्त हुआ था जिसे आमेर संग्रहालय में सुरक्षित कर दिया गया है। इसमें वर्णित है कि वर्धन नामक व्यक्ति ने सात यूप–स्तंभों की प्रतिष्ठा का पुण्य अर्जित किया।

बडवा–स्तम्भ लेख (238–39 ई.)

बडवा नामक ग्राम से (कोटा) तीन यूप–स्तम्भ उपलब्ध हुए हैं। इनमें त्रिरात्र, अप्तोयाम तथा अतिरात्र यज्ञों का उल्लेख है। यह लेख वैष्णव–धर्म तथा यज्ञ–महिमा का द्योतक है।

गंगाधर का लेख (423 ई.)

यह लेख झालावाड़ का अन्तरंग है जिससे उस समय की सामन्त–प्रथा पर प्रकाश पड़ता है।

कणसवा का लेख (738 ई.)

कोटा के निकट कणसवा गाँव में एक लेख शिवालय में लगा है जिसमें धवल नामक राजा का नाम है। इस उल्लेख के बाद अन्य किसी मौर्यवंशी राजाओं का राजस्थान में वर्णन नहीं मिलता, जिससे इस शिलालेख का महत्व अधिक बढ़ जाता है।

काजोगढ़ (अलवर) (660 ई.) –इसमें गुर्जर वंश का वर्णन है।

अर्थूण (बांसवाड़ा की प्रशस्ति 1079 ई.)

इस लेख में प्रमुख व्यापारिक वस्तुओं, करों, नाप–तोल, मुद्राओं आदि का अच्छा वर्णन है।

इस प्रकार जयपुर, झालावाड़, डूँगरपूर, बांसवाड़ा, कोटा आदि भागों में सैकड़ों लेख हैं जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक–व्यवस्था पर प्रकाश डालते हैं।

जैन शिलालेख, जो मूर्त्तियों और मन्दिरों में पाये जाते हैं उनमें अन्य सूचनाओं के साथ कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। मन्दिर की या मूर्त्ति की प्रतिष्ठा के समय लेख में श्रावकों

के कुटुम्ब की नामावली का अंकन होता है जो संयुक्त परिवार प्रणाली और एक से अधिक भार्याओं के होने का संकेत उत्कीर्ण करता है। इसी प्रकार इनमें कई आचार्यों के तथा गच्छों के नाम भी रहते हैं। ऐसे लेखों से वणिक् जाति के कई वर्गों का भी नाम रहता है जिनमें समाज व्यवस्था तथा धार्मिक गुरुओं के वर्ग का बोध होता है। जयपुर, आमेर, चुरू, नागौर, रत्नुपर, नगर नाकोड़ा, बाड़मेर, घाणेराव, उदयपुर, गुड़ा (सिरोही) रोहड़ा, जयसलमेर, वागड़ आदि के लेखों से अंचल गच्छ, उपदेश गच्छ, कोरंट गच्छ, खरतर गच्छ, तपागच्छ आदि के जिनचन्द्र सूरि, जिनकीर्ति सूरि, जिन माणक्य सूरि, पुण्य विजयगणि, हेमरत्न सूरि आदि आचार्यों के नामों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार इनमें श्रावकों की जाति व गोत्र–जैसे – अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, तथा उनके गोत्र काकरेचा, कावड़िया, चोपड़ा, चिप्पड़, धाड़ीवाल, बंभ, बापणा, बाबेल, जसवाल आदि अंकन सम्मिलित हैं। इन शाखाओं–प्रशाखाओं के सदस्यों के ऐतिहासिक क्रम का अध्ययन अपने आप में एक शोध का विषय है। ये गोत्र कभी तो मुख्य पुरुष के नाम से होते हैं या स्थान या गुण या व्यवसाय विशेष से भी इनकी पहचान आंकी जाती है। इनका एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर बसना भी अपने आप में महत्त्व का है जो एक अध्ययन का विषय है। इन जैन लेखों में इन प्रश्नों के संबंध में कई सूत्र मिलते हैं।

ताम्रपत्र

जहाँ तक दानपत्रों की संख्या का प्रश्न है, वे लाखों की तादाद में हैं जिनका परिचय थोड़े में देना भी संभव नहीं है। अतएव कुछ चुने हुए संस्कृत–भाषा के दानपत्रों की प्रमुख बातों पर यहाँ हम संकेत करेंगे।

धुलेव का दान पत्र (679 ई.) में दूतक, महामात्र शब्दों का प्रयोग सातवीं शताब्दी की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। मंथनदेव के दान पत्र में (959 ई.) भूमिदान के समय गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षी ली जाती थी। देवालय से प्रति दुकान और घाणी से अनुदान और तेल लेने की प्रथा का वर्णन है। आबू के धारावर्ष के ताम्रपत्र (1180 ई.) में भूमि की किस्म, ग्राम तथा हल आदि का वर्णन हे। वीरपुर का दानपत्र (1185 ई.) गाँव के सयानों तथा साक्षी का भूमिदान से संबंधित पड़ोसियों, नदी, वृक्षावलि का उल्लेख करता है। आहड़ के ताम्रपत्र से विदित होता है कि (1206 ई.) गुजरात के भीमदेव का मेवाड़ में अधिकार स्थापित हो गया था। इसमें मंडल शब्द का प्रयोग एक शासकीय इकाई के लिए किया गया है। वीरसिंह देव के ताम्रपत्र में (1287 ई.) वागड़ के देवपाल द्वारा भूमिदान का उल्लेख है। इससे प्रमाणित होता है कि उस समय वागड़ की शासकीय व्यवस्था में राजमाता, मंत्री, राजगुरु, पंडित तथा स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों, का वर्चस्व रहता था। इन ताम्रपत्रों में "हल" शब्द का प्रयोग बहुत किया गया जो भूमि का नाम था। जो आगे जाकर 50 बीघा भूमि के लिए प्रयुक्त किया गया है। भूमिदान के साथ ब्राह्मणों के रहने के लिए मकान भी दिये जाते थे। देवालय की सेवा–पूजा की व्यवस्था के लिए तेल, पुष्प और अनुदान का भी प्रावधान रहता था और इन मन्दिरों के प्रबंध के लिए गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति होते थे जिनको "गोष्ठिक" कहते थे।

ऐतिहासिक साहित्य

राजस्थान में संस्कृत भाषा में काव्य–रचना का बड़ा दौर रहा है क्योंकि कई लेखक व कवि राज्याश्रित थे जिन्हें राजदरबार में सम्मानपूर्वक रखा जाता था। इनमें कुछ कृतियाँ स्तुतिपरक थीं, फिर भी उनमें यत्र–तत्र राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का अच्छा उल्लेख रहता था। इसके अतिरिक्त संस्कृत में ज्योतिष, कर्मकाण्ड, नाटक, वैद्यक, गणित आदि अनेक विधाओं की रचना होती थी जिनके द्वारा उस समय की प्रगति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ऐसा साहित्य इतिहास के लेखन में बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। दुर्भाग्यवश इस स्रोत का जितना उपयोग होना चाहिये, नहीं हुआ ह। इस साधन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

इतिहासपरक साहित्य

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम उन ग्रन्थों की ओर संकेत करेंगे जिनमें इतिहास के मूल तत्त्व छिपे पड़े हैं। अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज द्वारा रचित 'हरकेलि नाटक' उक्त राजा के राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक और विग्रहराज या किसी दूसरे राजा के समय के बने हुए चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की शिलाओं में से पहली शिला–ये सब अजमेर के 'ढाई दिन के झोंपड़े' से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त काव्य रचना में जयानक का 'पृथ्वीराजविजय' अपने ढंग का एक अनुपम ग्रन्थ है। यह मूलतः काव्यपरक है। इसमें स्वभावतः अलंकारों तथा उपमाओं का अधिकाधिक समावेश है, फिर भी सपादलक्ष के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है। इससे चौहानों के वंश–क्रम पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि अजमेर का विकास प्रारंभिक शासकों के काल से लेकर 12 वीं शताब्दी तक होता रहा, जिससे यह एक समृद्ध नगर बन गया। इस काव्य से पृथ्वीराज तृतीय के गुणों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। लेखक सम्राट् के अन्य गुणों के साथ–साथ यह भी लिखता है कि उसकी कलाओं में बड़ी रुचि थी जिससे उसके समय में कला और साहित्य विकासोन्मुख बने रहे। आनुषंगिक रूप से इस काव्य से उस समय के धार्मिक और सामाजिक स्थिति का भी बोध होता है। नयचन्द्र सूरि के "हम्मीर महाकाव्य" और चन्द्रशेखर के "सुर्जनचरितमहाकाव्य" से भी चौहानों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। ये अलाउद्दीन के रणथंभोर आक्रमण की कई घटनाओं को समझने के अच्छे साधन हैं।

जैन–साहित्य जिसका प्रमुख उद्देश्य धार्मिक है वह भी यत्र–तत्र कई ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करता है और राजस्थान की तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है। बाण के हर्षचरित्र में गुर्जरों का वर्णन मिलता है जो राजस्थान में थे। इस प्रकार राजशेखर, क्षेमेश्वर और पम्पा की कृतियाँ प्रतिहारों के इतिहास और उनकी संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। सेठ लोलाक ने "उत्तम शिखर पुराण" नामक जैन ग्रन्थ बीजोल्या के पास एक चट्टान पर वि.सं. 1226 में खुदवाया था।

मेरुतुंग ने "प्रबंधचिन्तामणि" में (1304 ई.) राजस्थान के इतिहास से संबंध रखने वाली उपादेय सामग्री को भी संकलित किया है जिसका प्रयोग रासमाला में भी है। राजेश्वर के "प्रबंधकोष" में (1349 ई.) कई जैन साधुओं, कवियों, राजाओं और अन्य व्यक्तियों का जीवन–वृत्त है।

इन ग्रन्थों की भाँति जैन पट्टावलियों से जैन–गुरु–परम्परा एवं धार्मिक स्थिति का ही वर्णन नहीं मिलता वरन् उनसे कई राजाओं के नाम, नगरों के वर्णन, व्यापारिक स्थिति आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ – खरतरगच्छ वृहत्गुर्वावली में अर्णोराज, पृथ्वीराज, समरसिंह, जैसलमेर के कर्णदेव आदि का वर्णन मिलता है। अन्य पट्टावलियों में 11वीं से 14 वीं शताब्दी तक के ऐतिहासिक विषयों की प्रसंगवश चर्चा की गई है। 1331 ई. की "उपदेशगच्छ पट्टावलि" श्रीधर की "पार्श्वनाथ–चरित्र" आदि भी जैन–साहित्य के अन्तर्गत उपयोगी ग्रन्थ हैं जिनसे धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन का बोध होता है।

इसके अतिरिक्त हरिभद्रसूरि की "समराइच्चकहा", जो प्राकृत गद्य में है, उद्योतनसूरी की "कुवलयमाला", हरिसेन का "वृहत्कथा–कोष" आदि ऐसे प्रबन्ध हैं जिनसे उस समय के धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनमें राजस्थान में 8वीं शताब्दी में विवाह, जन–जीवन, त्यौहार, दण्ड, भेदनीति, भीली–जीवन आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है। पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास को समृद्ध बनाने के लिए इन प्रबन्धों का उपयोग अत्यन्त वांछनीय है।

काव्य–साहित्य की भांति कथा–साहित्य का भी ऐतिहासिक महत्व है। इनमें ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर कथानक और काल्पनिक बातों को ऐसा संजोया गया है कि कई अज्ञात साधु–संत, जनसाधारण व्यक्तियों आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

हम पन्द्रहवीं सदी में राजस्थान के एक ऐसे युग में प्रवेश करते हैं जो कुंभा जैसे विद्वान् महाराणा का काल था जो स्वयं विद्वान् थे और विद्वानों के पारिखया थे। मंडन रचित प्रासाद–मण्डन का रचयिता चित्तौड़ के राणा कुंभा (1433–1468 ई.) के राज्य काल में हुआ। उसने निम्नलिखित शिल्प–ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की – प्रासाद मण्डन, वास्तु मण्डन, राजवल्लभ, देवता मूर्त्ति प्रकरण, रूपावतार, वास्तुसार आदि। इनके भाई नाथ ने "वास्तुमंजरी" नामक ग्रन्थ की रचना की। सूत्रधार गोविन्द ने तीन ग्रन्थों की रचना की–उद्धार धोरणि, कलानिधि और द्वारदीपिका। ये ग्रन्थ शिल्पी वर्ग में अधिक प्रशस्त हैं, इनके आधार पर आधुनिक सोमपुरा ब्राह्मण भवन बनाने का कार्य अपनी वंश–परम्परा से करते आये हैं। ये ग्रन्थ इतिहास लेखन में बड़े सहायक हैं।

इसी प्रकार मंडन के राजवल्लभ से नगर, गाँव, राजप्रासाद, मन्दिर, बाजार आदि के निर्माण पद्धति पर पूरा प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक नगर, गाँव, दुर्ग आदि में बस्तियों का क्रम कैसे रहे, इसकी विवेचना भी इसमें है। राजसभा, सिंहासन, मुख्यद्वार, बाग, अधिकारियों के विभाग,

उनके आवास आदि की भी विवेचना "राजवल्लभ" में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ से हम 15वीं शताब्दी की वास्तुकला के स्तर का अनुमान कर सकते हैं और समझ सकते हैं। उस काल में शिल्पी किस अनुपात से परम्परागत शिल्पशास्त्र के सिद्धान्तों को मान्यता देते थे और किस सीमा तक नई गतिविधि को निर्माण कार्य में समावेशित करते थे।

इसी प्रकार राणा कुंभा ने संगीत की उन्नति के लिए एक समृद्ध ग्रन्थ 'संगीतराज' का प्रणयन किया। स्वयं उसने कवि जयदेव के गीतगोविन्द पर एक उत्तम टीका लिखी।

इसी प्रकार भट्टिकाव्य से जैसलमेर की राजनीति तथा सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ के शासक भीम की मथुरा और वृन्दावन यात्रा का इसमें अच्छा वर्णन मिलता है। महाराजा अक्षयसिंह के राज प्रासादों का तथा तुलादान आदि का भी इसमें रोचक वर्णन है। यह ग्रन्थ पाण्डुलिपि रूप में उपलब्ध है। जो संभवतः 15वीं शताब्दी में रचा गया था।

राजविनोद नामक ग्रन्थ की रचना भट्ट सदाशिव ने बीकानेर के महाराज कल्याणमल (1542–1574 ई.) की आज्ञा से की थी। इसमें विविध विषयों जैसे–सामाजिक, आर्थिक, सैनिक आदि का वर्णन है। इसमें उस समय के समाज के रहन–सहन, आमोद–प्रमोद, भोजन, पेय–पदार्थ, उत्सव आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। लेखक ने किलों के निर्माण तथा सैनिक उपकरणों संबंधी विषयों पर प्रकाश डालकर हमारी प्रभूत जानकारी बढ़ाई है।

वैसे तो एकलिंग माहात्म्य की संज्ञा पुराणों में की गई है, परन्तु इसका राज–वर्णन का अध्याय इतिहास की दृष्टि से बड़े काम का है। इसमें दी गई गुहिलों की वंशावली भाटों की पुस्तकों के आधार पर है जो अधिक विश्वसनीय नहीं है। परन्तु जहाँ तक 15वीं शताब्दी के समाज संगठन का प्रश्न है यह ग्रन्थ उपयोगी है, इसमें वर्णाश्रम और वर्णव्यवस्था, चित्तौड़, कैलाशपुरी आदि का वर्णन रोचक है।

बीकानेर संबंधी "कर्मचन्दवंशोत्कीर्तनकं काव्यं" जिसे जयसोम ने वहाँ के मंत्री कर्मचन्द के आश्रय में लिखा था। नगर, बाजार, राजप्रासाद, पुस्तकालय, मन्दिर, पाठशालाएं, शिशुगृह, भोजन–सत्र आदि के वर्णन के लिए उपयोगी है। 16 वीं शताब्दी के बीकानेर के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

"अमरसार" की रचना पं. जीवन्धर ने की थी जिसमें महाराणा प्रताप और अमरसिंह के जीवन पर तथा उस समय के शासन का अच्छा वर्णन है। लेखक ने उस समय के रहन–सहन, आमोद–प्रमोद और जन–जीवन की अच्छी झाँकी प्रस्तुत की है।

महाराणा राजसिंह के आश्रित पं. रणछोड़ भट्ट ने अमरकाव्य की रचना की थी। लेखक जिन मुद्दों का वर्णन राज–प्रशस्ति में नहीं दे सका, उनका समावेश इस कृति में किया है। मेवाड़ के शासकों की राजनीतिक उपलब्धियों के उपरान्त लेखक ने धार्मिक और सामाजिक विषयों को भी अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है। इसमें तीर्थ–यात्राएँ, तुलादान, दीपावली, जौहर, सैनिकों की वेश–भूषा तथा युद्धोपयोगी साधनों का भी अच्छा वर्णन किया है।

महाराणा राजसिंह के समय का वर्णन सदाशिव नामक पंडित ने अपनी कृति "राजरत्नाकर" में किया है। इसमें वैसे वंशवर्णन भाटों से उद्धृत है, परन्तु उस युग के समाज का वर्णन, दरबारी जीवन, पठन–पाठन की गतिविधि, युद्ध, संधियों आदि के प्रसंग इतिहास के लिए बड़े उपयोगी हैं।

अजितोदय महाकाव्य की रचना भट्ट जगजीवन ने महाराजा अजीतसिंह के दरबारी कवि की हैसियत से की थी। मारवाड़ की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन के लिए इस ग्रन्थ का बड़ा उपयोग है। विशेष रूप से लेखक ने महाराजा जसवन्तसिंह तथा अजीतसिंह के मुगल–मारवाड़ संबंध की रोचक कहानी देकर ग्रन्थ के महत्व को खूब बढ़ा दिया है। उस युग की परम्परा, विचारधारा तथा सामाजिक संगठन को समझने के लिए अजितोदय महाकाव्य बड़े महत्व का है। लेखक ने विविध संस्कारों जिनमें जन्म, विवाह और मृत्यु आदि मुख्य हैं, काफी प्रकाश डाला है। जोधपुर के नगर का वर्णन और मण्डोर के बागों का चित्रण कवि ने सजीव रूप से किया है।

इस प्रकार राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ हुई हैं जिनमें बहुत सी ऐसी रचनाएँ हैं जो हस्तलिखित ग्रन्थ रूप में ग्रन्थालयों आदि में बन्द पड़ी हैं। आज आवश्यकता है उन्हें प्रकाश में लाने की, जिसमें छिपे ऐतिहासिक संदर्भों को ढूँढा जा सकता हैं, तथा नये तथ्य उद्घाटित होने की पूर्ण सभावनाएँ हैं।

खण्ड - प्रथम

ऐतिहासिक धरोहर : सूँधा–शिलालेख

श्रीकृष्ण सोनी

इतिहास अतीत का संरक्षक, वर्तमान का नियामक तथा भविष्य का सर्जक समझा जाता है, चूंकि उसकी उदरदरी में अतीत सर्वदा सुरक्षित रहता हुआ दीपकवत् वर्तमान का पथ–प्रदर्शन करता है, हानि–लाभ से सावधानी जगाता है, अनुभूत एवं युक्तियुक्त जीवन–पद्धति अपनाने में सहायक बनता है, इतना ही नहीं इतिहास का अध्ययन व्यक्ति को अध्यवसायी तथा विवेकी बना देता है। इतिहास मानव–सभ्यता एवं संस्कृति का समग्र अभिलेख रखता है, नाना राजवंशों एवं उनके शासकों का क्रमबद्ध निरूपण करता है, इसलिए इतिहास को ज्ञान का ज्ञापक, दोषों का दर्शक, आदर्शों का उपस्थापक, व्यवस्थाओं का बोधक, तथ्यों का संधारक तथा मानव–इतिवृत्त का उद्‌भासक माना जा सकता है।

इतिहास–लेखन के विविध स्रोतों में पुरातत्त्व संबंधी सामग्री सबसे अधिक विश्वस्त है। मूक होते हुए इसमें ऐसे सच्चे ऐतिहासिक तत्त्व निहित हैं जो प्रामाणिक हैं।[1] पुरातत्त्व शीर्षक के अन्तर्गत शिलालेखों, मुद्राओं तथा स्मारकों द्वारा प्राप्त जानकारी का वर्णन किया जा सकता है।[2] डॉ॰ गोपीनाथ शर्मा का भी मत है कि, "अभिलेख– संबंधी प्रमाण भी पुरातत्त्व के अन्तर्गत हैं जो पाषाण की पट्टियों, स्तम्भों, शिलाओं, ताम्रपत्रों, दीवारों, मूर्त्तियों एवं प्रतिमाओं पर खुदे हुए मिलते है।[3] इन शिलालेखों की उपादेयता एवं महत्त्व के विषय में कतिपय इतिहासविदों के विचार उल्लेखनीय हैं, जैसे :–

प्रो.ई.जे. रैप्सन :– 'शिलालेखों से अपने देश और काल की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के बारे में विश्वसनीय प्रमाण मिलते हैं।'[4]

प्रो.वी.डी. महाजन :– 'शिलालेख ऐतिहासिक खोज में बड़े महत्त्व की वस्तु हैं। वे धातुओं और पत्थरों पर अंकित हैं। शिलालेखों की प्रामाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता। इन पर अंकित जानकारी को बिना हिचकिचाहट के प्रयोग में लाया जा सकता है।'[5]

डॉ॰ गोपीनाथ शर्मा :– 'इन अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे दान या विजय के स्मारक हैं, अथवा प्रशस्ति या मृत्यु–घटना के द्योतक हैं। तिथियाँ स्थापित करने एवं ऐतिहासिक घटनाओं तथा साहित्यिक स्थिति को समझने में इनकी सहायता असामान्य है।'[6]

इन शिलालेखों को विषय के आधार पर अनेक शीर्षकों में बाँटा जा सकता है, जैसे–व्यापारिक, मायावी, धार्मिक, उपदेशात्मक, प्रशासनिक एवं प्रशंसात्मक आदि।[7]

प्रशंसात्मक शिलालेख को प्रशस्ति भी कहते हैं। प्रशस्ति का अर्थ गुण–कीर्त्तन होता है। संस्कृत–साहित्य की यह एक अत्यन्त रोचक शैली है। आलंकारिक शैली के काव्य रूप में

लिखे जाने पर भी प्रशस्तियों के विषय इतिहास–प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं और इनसे अतीत के इतिहास के संयोजन में बहुत सी सामग्री मिल जाती है।[8]

प्रशंसात्मक शिलालेखों की वर्ण्य–वस्तु की विविधता एवं व्यापकता का निरूपण करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ॰ विद्याधर महाजन लिखते हैं, "प्रशंसात्मक शिलालेख राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें प्रायः निम्नलिखित बातें हैं–राजा की वंशावली, उनका नाम, राजा का पूर्व–चरित्र, तत्कालीन राज्य जिनसे उनका युद्ध हुआ, अन्तर्राज्यीय संबंध, राज्य–प्रणाली, राजनीतिक आदर्श, राजा की व्यक्तिगत योग्यता, उसकी संरक्षकता, उसकी दानशीलता, उदारता और उपमा–संबंधी पौराणिक संकेत।[9]

सूँधा–शिलालेख इतिहास की अनर्घ्य धरोहर है, राजस्थान का गौरव है तथा संस्कृत साहित्य की सरस एवं सफल रचना है। ऐतिहासिक महत्त्व एवं उपयोगिता के कारण ही मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, पूर्णचन्द्र नाहर, डॉ॰ मांगीलाल व्यास,'मयंक', डॉ॰ गोपीनाथ शर्मा, बुद्धिराज (गुजराती विद्वान्), डॉ॰ दशरथ शर्मा तथा कील हॉर्न जैसे इतिहासविदों ने इस शिलालेख का उल्लेख यत्र–तत्र अपने ग्रन्थों में किया है।

'सूँधा' नामक स्थान राजस्थान के जालोर जिले के अन्तर्गत जसवन्तपुरा एवं भीनमाल क्षेत्र में आता है। सूँधा–पहाड़ी पर चाहमानों की कुलदेवी चामुण्डा का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर के परिसर में छोटे–मोटे कई शिलालेख हैं जो अस्पष्ट तथा खण्डित अवस्था में होने के कारण अनुपयोगी हैं परन्तु जो प्रमुख शिलालेख हैं, वह सूँधा–माता मन्दिर के बाहर मण्डप के गर्भगृह के निकट दाँयी ओर दीवार पर लगा हुआ है, जो जालोर के चाहमान शासक चाचिगदेव से सम्बद्ध आठ शिलालेखों में से प्रथम शिलालेख है, जैसा कि डॉ॰ दशरथ शर्मा का मत है:–"We have eight inscriptions for Chachigadeva, the son and successor of Udayasimha. These range from V. 1319 to 1333. The earliest is the Sùndhà inscription of V.1319 edited by Dr. Kielhorn in El. IX.pp74 ff.[10]

यह प्रमुख शिलालेख ही इस आलेख का विषय है अतः इसका परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक है:–

1. यह शिलालेख दो श्यामवर्णी पाषाणों पर उत्कीर्ण है। पहला प्रस्तर–खण्ड 3x 6.1x2" x 1'9x1/2" माप का है दूसरा 2'11x1/2" x 1'10" माप का है।
2. पहले प्रस्तर–खण्ड में 26 तथा दूसरे में 24 पंक्तियाँ हैं।
3. अक्षरों की मोटाई पहले प्रस्तर–खण्ड में 1/2" तथा दूसरे में 3/8" से 7/16" है।
4. अक्षर अत्यन्त सुन्दर तथा स्पष्ट हैं।
5. शिलालेख की भाषा पद्य–बद्ध संस्कृत है तथा लिपि देवनागरी है परन्तु कहीं–कहीं पर पृष्ठ मात्राओं का प्रयोग किया गया है।
6. दोनों प्रस्तर–खण्डों में तीन स्थानों पर गद्यांश भी हैं। पहले प्रस्तर–खण्ड के अन्त में गद्यमयी पुष्पिका है। इस पर श्लोक संख्या नहीं दी गयी है। यही पुष्पिका द्वितीय प्रस्तर–खंड के

अन्त में भी है उस पर 60 की संख्या अंकित है। श्लोक–संख्या 42 के बाद भी गद्यांश है जिस पर संख्या 43 उत्कीर्ण है।

7. प्रथम प्रस्तर–खण्ड में 1.30 श्लोक हैं और अन्त में संख्या–रहित गद्यमयी पुष्पिका द्वितीय प्रस्तर–खण्ड 31 से 60 तक समाप्त होता है जिसमें दो गद्यांश हैं उन पर 43 व 60 की संख्या उत्कीर्ण है।

8. 30 वें श्लोक के बाद के गद्यांश पर संख्या के अभाव का कारण यही है कि 30 वें व 60 वें गद्यांशों की विषय–वस्तु एक ही है, अतः 60 वें श्लोक पर भी संख्या दी गयी है।

9. छंद–संख्या 57 के अनुसार शिलालेख का रचना–काल वि॰सं॰ 1319 वैशाख–शुक्ला तृतीया अर्थात् अक्षय–तृतीया है।[11]

10. श्लोक संख्या 59 के अनुसार इस प्रशस्ति के रचनाकार बृहद्गच्छ के जैन साधु जयमंगल सूरि हैं जिसे चाचिगदेव ने अपने वंश की प्रशस्ति लिखने हेतु नियुक्त किया था, जो धार्मिक समन्वय एवं उदारतावादी दृष्टिकोण है। जयमंगल श्री रामचन्द्र के शिष्य तथा वादिदेवाचार्य के प्रशिष्य हैं।[12] वादिदेवाचार्य के बृहद्गच्छीय होने की पुष्टि डॉ॰ गुलाबचन्द्र चौधरी भी अपने इतिहास–ग्रन्थ के पृष्ठ सं॰ 88 पर करते हैं। जयमंगलसूरि का उल्लेख भी उन्होंने पृष्ठ सं॰ 19,467 व 469 पर किया है।[13]

11. 'स्थापत्य–प्रशस्ति' के नियमानुसार ही प्रशस्ति की पुष्पिका से सूचना मिलती है कि दोनों प्रस्तर–खण्ड़ों पर लेखनी से वर्णों को लिखने वाले का नाम श्री नाम्बसिंह (भिषग्वर श्री विजयपाल का पुत्र) है।[14] इस प्रशस्ति से उत्कीर्णन–विद्या की उन्नत अवस्था की सूचना, उपयोगी है।

12. यह शिलालेख प्रशंसात्मक कोटि का अर्थात् प्रशस्ति है।

13. सूँधा–शिलालेख से प्राचीन शिवमन्दिर भूर भूवेश्वर की अवस्थिति का पता चलता है जिसका उल्लेख स्कन्दपुराण एवं श्रीमाल माहात्म्य में मिलता है।

14. सूँधा–पर्वत पर चौहानों की कुलदेवी–चामुण्डा (सूँधा–माता) का मन्दिर पूर्व में विद्यमान था। चाचिगदेव ने उसमें मण्डप का निर्माण करवाया तथा मूर्त्ति स्थापित करवायी। यह ऐतिहासिक जानकारी इस प्रशस्ति से मिलती है। इसी आशय का एक उल्लेख 'मुँहता नैणसी री ख्यात' में भी इस प्रकार आया है:– "चाचगदे सूँधा रे भाखरे देहुरो चावंडाजी रो करायो। संवत् 1312।यह उल्लेख देवालय–निर्माण की ओर संकेत करता है, जब कि शिलालेख मंडप–निर्माण की ओर।

15. इस प्रशस्ति से हमें चामुण्डा के पौराणिक नाम अघटेश्वरी[15] एवं वर्तमान नाम सूँधा (सुगन्धा) का परिचय मिलता है। ये नाम इतिहास की परतों में से झाँकने वाले हैं। अघटेश्वरी से अभिप्राय वह घट (धड़) रहित देवी जिसका केवल सिर ही पूजा जाता है– से है। सूँधा–माता का केवल 'सिर' ही यहाँ पूजा जाता है। इस क्षेत्र में प्रचलित यह दोहा भी उक्त अभिप्राय की पुष्टि करता है–

सर सूँधै, धड़ कोरटै, पग सुन्दरलापाल।
आप चामंडा ईसरी, गळे फूलों री माल ।।[16]

16. श्रीमाल माहात्म्य में इसी देवी के लिए 'अवटेश्वरी' नाम उपलब्ध होता है जो अघटेश्वरी का ही रूप प्रतीत होता है।[17] सुगन्धा' शब्द भी पौराणिक कथा की ओर संकेत करता हुआ लगता है।[18]

17. सूँधा–शिलालेख नाडोल एवं जालोर के चौहान शासकों के कर्त्तृत्व एवं व्यक्तित्व तथा गुण–संतति पर बृहत् प्रकाश डालता है। इस प्रशस्ति से निम्नलिखित चौहान शासकों के नामों व चारित्रिक विशेषताओं का प्रामाणिक परिचय प्राप्त होता है –[19]

1. चाहमान (श्री वत्सगोत्रीय, शाकंभरीन्द्र), 2. लक्ष्मण(संस्थापक नाडोल–शाखा), 3. शोभित 4. बलिराज (देव), 5. महीन्दु, 6. अश्वपाल, 7. अहिल, 8. अणहिल्ल, 9. बालप्रसाद, 10. जिन्दुराज, 11. पृथ्वीपाल, 12. योजक, 13. आशाराज, 14. आह्लादन, 15. केल्हण, 16. कीर्त्तिपाल (कीतू, संस्थापक जालोर–शाखा), 17. समरसिंह देव, 18. उदयसिंह तथा 19. चाचिगदेव।इस सूचना से पता चलता है कि चौहान–शासक 'शिव एवं शक्ति' के उपासक थे जो उनके धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रकाशक हैं।

18. प्रशस्ति के प्रथम तीन श्लोकों में मंगलाचरण की भारतीय एवं शास्त्रीय परंपरा के निर्वहन का ज्ञान प्राप्त होता है जिसमें क्रमशः शिव, पार्वती एवं चामुण्डा से रक्षण– संबंधी शिव–कामना की गयी है।[19]

19. चौहनों के मूल–निवास के संबंध में यद्यपि बहुत से मत हैं परन्तु अधिक विश्वस्त मान्यता जो चौहानों के मूल निवास के संबंध में है वह यह है कि वे सपादलक्ष झील अर्थात् शाकंभरी (साँभर) के आस–पास रहते थे।[20] डॉ॰ दशरथ शर्मा भी इस प्रदेश को 'जाँगल–देश' की परिधि में मानते हुए शाकंभरी के ही पक्षधर हैं।[21] सूँधा–शिलालेख से भी 'चाहमानों के मूलनिवास 'शाकंभरी' होने की पुष्टि होती है। चूँकि प्रशस्ति के श्लोक सं 5 में 'लक्ष्मण' को 'शाकंभरीन्द्र' कहा गया है। यह 'लक्ष्मण' शाकंमरी के चौहानों में वाक्पतिराज[22] प्रथम (वि॰सं॰ 975–1000) का तृतीय पुत्र जिसे डॉ॰ दशरथ शर्मा 'लक्ष्मण–वत्सराज' लिखते हैं। अन्य दो पुत्रों के नाम विंध्यराज व सिंहराज थे। यही लक्ष्मण 'शाकंभरी' अर्थात् मूलनिवास से चला और नाडोल का अधिपति बना तथा नाडोल–शाखा का संस्थापक कहलाया। प्रशस्ति की यह ऐतिहासिक जानकारी इतिहास–संयोजन में बहुत सहायक है।

20. डॉ॰ दशरथ शर्मा चाहमानों को बिजोलिया के लेख के आधार पर ब्राह्मणवंश की सन्तान मानते हैं। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए 'कायम खां[23] रासो तथा चन्द्रावती के" लेख भी उद्धृत करते हैं। सूँधा–शिलालेख भी चौहानों के ब्राह्मणवंशीय होने की पुष्टि प्रशस्ति के श्लोक–संख्या 4 से करता है जो ऐतिहासिक उलझन को सुलझाने में अत्यन्त उपयोगी है। साथ ही चौहानों का मूल पुरुष 'चाहमान' था।[24] यह महत्वपूर्ण सूचना भी प्रशस्ति में प्राप्य है।

21. प्रशस्ति के श्लोक–संख्या 7 से लक्ष्मण के पुत्र शोभित द्वारा आबू के शासक धरणीवराह के

यशोऽपहार की तथा बलिराजदेव द्वारा धारानरेश मुञ्ज की सेना भंग करने की जो जानकारी उपलब्ध होती है उससे मालवा, राजपूताना तथा गुजरात राज्यों के त्रिकोणीय संघर्ष चलने का पता चलता है।[25]

22. बलिराज देव के उत्तराधिकारी के रूप में 'विग्रह–पाल' का उल्लेख डॉ॰ दशरथ शर्मा ने किया है परन्तु सूँधा–शिलालेख में उसका उल्लेख नहीं है।[26] प्रशस्तिकार लिखता है कि, "बलिराज देव का चचेरा भाई महीन्दु बलिराज देव का उत्तराधिकारी बना" यह ऐतिहासिक सत्यता हैं। शासकों के उत्तराधिकारियों के संबंधों की सूचना देने में प्रशस्तिकार ने न केवल सावधानी व निपुणता बरती है अपितु ऐतिहासिक सत्य को साक्षी बनाया है। इस प्रशस्ति में कवि ने अपने चरित नायकों की औरस सन्तान अथवा उनके चचेरे भाई या बन्धु आदि के राज्यारूढ़ होने के भेद को अति निपुणता व सत्यता से यथास्थान प्रकट किया है।

औरस पुत्र के लिए प्रयुक्त शब्दावली व श्लोक सं॰ तनूद्भवः (7), तत्तनूजः (10), पुत्रः तस्य (12.), तनयः तस्य (18), अंगजन्मा (22), तस्यांगनः (34), तत्तनयः (37) तथा नन्दनः (42)

औरस–पुत्र से भिन्न उत्तराधिकारियों के लिए प्रयुक्त पद व श्लोक संख्याः– भ्राता (35) बांधवः (9.20), तत्पितृव्यः (14), बन्धुः (24, 26)

इस विधा से कवि ने न केवल ऐतिहासिक धरोहर की सुरक्षा की है अपितु चौहान–वंश के शासकों के वंशानुक्रम को दूषित होने से बचा लिया है अतः इस प्रशस्ति की ऐतिहासिक उपयोगिता सर्वोपरि है।

23. इस प्रशस्ति से गुर्जर नरेश भीमदेव प्रथम (वि॰सं॰ 1078–1120) के साथ चौहान शासकों के दीर्घ संघर्ष की ऐतिहासिक सूचना मिलती है जो अहिल (अश्वपाल–पुत्र) से प्रारंभ होती हैः–

"गुर्जराधिपतिभीमभूभुज्यः, सैन्यपूरमभजद् रणेषु यः।
शम्भुवत्त्रिपुरसंभवं बलं, वाडवानल इवाम्बुधेर्जलम् ।।[27]

अन्तिम दो चरणों में पौराणिक उपमाओं के प्रयोग प्रशस्ति के लक्षण–बिन्दुओं के पोषक हैं। अहिल का उत्तराधिकारी उसका चाचा अणहिल्ल बना। उसने भी भीम नरेश की गजा–घटा को छिन्न–भिन्न कर दियाः– "भीमक्षोणीपतिगजघटा येन भग्ना रणाग्रे"(14) अणहिल्ल के विषयों में डा॰ दशरथ शर्मा के विचार उल्लेखनीय हैं"

" Ahil was succeeded by his uncle Anahilla, one of the most successful and energetic rulers of the Nadol line. He successfully continued the war against Bhimdeva II of Gujarat whom he defeated at Pratisthana." (144)

(भीमदेव II के स्थान पर I होना चाहिए)

इसी प्रकार वे और लिखते हैंः–

"Anahilla must be regarded as one of the most successful rulers of Nadol who raised high its inner-state position and held his own against the strongest

rulers of the time, Indian as well as foreign." (145)

सूँधा– शिलालेख में भी इसकी प्रशंसा में 14 से 17 तक चार श्लोकों का गुम्फन किया गया है। उसने शाकंभरी पर पुनः अधिकार किया, मालवराज भोज के सेनानायक 'साढा' को मारा, घोरकर्मा तुरुष्क महमूद गजनबी के दाँत खट्टे किये, अतः विष्णु के सदृश चतुर्भुज के रूप में उसे चित्रित कर ऐतिहासिक तथ्यों की सच्ची जानकारी कवि ने हमें प्रदान की है।

दृष्टः कैर्न चतुर्भुजः स समरे शाकंभरीं यो बलात्
जग्राहानुजघान मालवपतेर्भोजस्य साढ़ाह्वयम्।
दण्डाधीशमपारसैन्यविभवं तीव्रं तुरुष्कं च य :
साक्षाद्विष्णुरिसावितीह यशसा शृंगारिता येन भूः ।।

24. अणहिल्ल का उत्तराधिकारी बालप्रसाद महती सेना का स्वामी था। उसने शक्ति के प्रभाव से आबू नरेश कृष्णदेव द्वितीय को भीमदेव प्रथम के कारागार से मुक्त कराया, चरण–मर्दन तो केवल बहाना था–

" जज्ञे भूभृत्तदनु तनयस्तस्य बालप्रसादः,
भीमक्ष्माभृच्चरणयुगलीमर्दनव्याजतो यः।
कुर्वन्पीडामतिबलतया मोचयामास कारा–
गाराद् भूमीपतिमपि तथा कृष्णदेवाभिधानम् ।। 18 ।।

परन्तु डॉ॰ दशरथ शर्मा का विचार इस विषय में भिन्न है जो उक्त श्लोक से मेल नहीं खाता, उनके अनुसार बालप्रसाद भीमदेव की शरण में गया तथा प्रार्थना [28] करने पर भीमदेव ने कृष्णराज द्वितीय को कारागार से मुक्त किया। प्रशस्ति की प्रामाणिकता को देखते हुए यह विचार अनुसंधान की अपेक्षा रखता है।

श्रीमांस्तस्याजनि नरपतिर्बान्धवो जिन्दुराजः,
यः संडेरेऽर्क इव तिमिरं वैरिवृन्दं विभेद।
यस्य ज्योति प्रकरमभितो विद्विषः कौशिका भा,
द्रष्टुं शक्ता न हि गिरिगुहामध्यमध्याश्रितास्तत् ।।

25. प्रशस्ति के अनुसार जिन्दुराज ने सांडेराव [29] पर भीम–नरेश की सेना का मदभंग किया। जिन्दुराज के तीन पुत्रों की जानकारी प्रशस्ति देती है। प्रथम पुत्र पृथ्वीपाल अन्वर्थसंज्ञक शासक था, वह महती सेना का स्वामी, कर्ण की सेना का संहारक तथा सशक्त धर्मपरायण था। पृथ्वीपाल के उत्तराधिकारी योजक के विषय में एक महत्वपूर्ण सूचना प्रशस्ति हमें देती है कि 'योजक अपने प्रभविष्णु प्रताप के बल पर अपने श्वेतपत्र के साथ अणहिल्लपाटन तक विहार करता था। [30]

श्रीयोजको भूपतिरस्य बन्धु–
विवेक सौध प्रबलप्रतापः।
श्वेतातपत्रेण विराजमानः
शक्त्याणहिल्लाख्यपुरेऽपि रेमे।।

26. प्रशस्ति से हमें ज्ञात होता है कि योजक का अनुज आशाराज ही उसका उत्तराधिकारी बना जिसके गुणकीर्तन में कवि ने 26 से 30 अर्थात् पाँच श्लोक रचे हैं जिनके अनुसार वह परमयशस्वी, स्वर्णिम वर्ण वाला, अतिबलिष्ठ, विष्णुसदृश धरती को धारण करने वाला तथा लोकप्रिय शासक था। उसने धर्मशाला, जलाशय, उद्यान, शिवमन्दिर, वापी प्रपा इत्यादि जनहित के कार्य किये।, ये कार्य किसी भी शासक के उत्कर्षकाल के ज्ञापक माने जाते हैं परन्तु इस विषय में डा॰ दशरथ शर्मा आशंका करते हैं। उनके मतानुसार पहले आशाराज स्वतंत्र शासक था परन्तु 1173 से 1176 वि. सं. के मध्य उसे नाडोल से निकाल दिया गया तथा उसने अपना शेष जीवन जयसिंह सिद्धराज की अधीनता में बिताया और उसके आदेशानुसार धारा नरेश नरवर्मन से लड़ने गया [31] जबकि प्रशस्ति के निम्न श्लोक का आशय इसके विपरीत सा प्रतीत होता है जिसके अनुसार जयसिंह सिद्धराज आशाराज द्वारा स्थापित स्वर्णकलश रूपी कीर्ति को मिटानें में समर्थ न हो सका।

"श्रीआशाराजनामा समजनि वसुधानायकस्तस्य बन्धु;
साहाय्यं मालवानां भुवि यदसि कृतं वीक्ष्य सिद्धाधिराज;
तुष्टो धत्तेस्म कुम्भं कनकमयमहो यस्य गुप्यद् गुरुस्थम्
तं हर्त्तुं नैव शक्तः कलुषित ह्रदयः शेष भूपालवाग्भिः।।

27. प्रशस्ति का द्वितीय भाग श्लोक संख्या 31 के मंगलाचरण से प्रारंभ होता है जिसमें भगवान् शिव को सुगन्धाद्रि मुकुट कहा गया है, यह इतिहास का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है जिसकी प्रकाशिका यह प्रशस्ति है।

जटामूले गंगा प्रबल लहरी पूर कुहना,
समुन्मीलच्छत्रप्रकर इव नम्रेषु नृपताम्।
प्रदातुं श्री शंभुः सकलभुवनाधीश्वरतया,
तया वा देयाद् व शुभ मिह सुगन्धाद्रि मुकुटः ।।31।।

28. आशाराज के उत्तराधिकारी आह्लादन देव (आहलण देव) के विषय में यह प्रशस्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करती है। पिता की भाँति पुत्र भी स्वतन्त्रता प्रेमी था। उसे सौराष्ट्र के आक्रान्ता, जीवदया के पोषक, नाडोल में शिव–मन्दिर के निर्मापक तथा धर्मपरायण शासक के रूप में ख्याति प्राप्त थी। इतना ही नहीं गुर्जरेश कुमारपाल उसकी सहायता का पग–पग पर अभिलाषी था। [32] यह सूचना दो राज्यों के पारस्परिक तथा सामरिक संबंधों पर प्रकाश डालती है जो इतिहास की सम्पदा है।

29. आह्लादन के उत्तराधिकारी केह्लण की उपलब्धियों को प्रशस्तिकार ने इस श्लोक से अभिव्यक्त किया हैः–

श्रीमांस्तस्यांगज इह नृपः केह्लणो दक्षिणाशा–
धीशोदंचद्भिलिमनृपते मान हृत्सैन्यसिन्धुः ।
निर्भिद्योच्चैः प्रवलकलितं यस्तुरुष्कं व्यधत्त,
श्री सोमेशास्पदमुकुटवत्तोरणं काञ्चनस्य ।।34।।

अर्थात् केह्लण ने दक्षिण दिशा के देवगिरि के यादव शासक भिलिम का मानमर्दन किया।[33] तुरुष्क मुहम्मद गोरी का भी बल चूर–चूर किया, स्वर्ण–तोरण बनवाया। ये श्लोक चौहान–शासकों की स्वतन्त्र–सत्ता के साक्षी हैं, पराधीनता के नहीं। डॉ॰ दशरथ शर्मा के अनुसार भिलिम राजा ने गुजरात राज्य पर 1187 ए.डी. में आक्रमण करना चाहा, और मोहम्मद गोरी ने 1178 ए.डी. में। केह्लण ने उसका विरोध किया। चौहान–शासकों की राष्ट्रवादिता की सूचना प्रशस्ति से मिलती है।

30. सूँधा–शिलालेख से जालोर–शाखा के संस्थापक कीर्त्तिपाल को विक्रम का परिचय प्राप्त होता हैं। वह महत्त्वाकांक्षी, राष्ट्रवादी तुरुष्क–मोहम्मद गोरी की सेना का (कासह्द में) संहारक, जाबालिपुर (जालोर) को अपना निवास (राजधानी) बनाने वाला तथा शर–विद्या में निपुण था। किरातकूट (किराडू) के शासक आसल को बाणों से बींधने की जानकारी प्रशस्ति से प्राप्त होती है। आसल शायद मदन ब्रह्मदेव का उत्तराधिकारी था। मदन ब्रह्मदेव वि.सं. 1235 में भीमदेव द्वितीय का जागीरदार था।[34]

31. कीर्त्तिपाल के उत्तराधिकारी के रूप में समरसिंह देव का परिचय शिलालेख से मिलता है जिसके उदार गुणों का कीर्त्तन (37–40) चार श्लोकों में गुम्फित किया गया है। वह समरपुर का निर्माता, सोने का तुलादान करने वाला, शिव–मन्दिर बनवाने वाला तथा स्वर्णगिरि दुर्ग पर प्राकार का निर्माण कराने वाला था। ये ऐतिहासिक सूचनाएँ समृद्ध शासन–काल, भारतीय दानपरम्परा तथा शासकों के व्यक्तित्व के साथ–साथ सांस्कृतिक–समन्वय को उद्भासित करती है।

"प्राकार : कनकाचले विरचितो येनेह पुण्यात्मना,
नानायन्त्रमनोज्ञकोष्टकततिर्विद्याधरीशीर्षवान्।
किं शेषः फणवृंदमेदुरतनुर्वक्षःस्थले वा भुवो,
हारः कि भ्रमणश्रमादुडुगणः किं वैषभेजे स्थितिम् ।। 38 ।।

प्रशस्ति के इस श्लोक से तात्कालिक व्यवसाय विज्ञान के उत्कर्ष का बोध होता है, साथ ही कवि–हृदय के मनोहारी कल्पना–प्रधान चित्रण–चातुर्य का भी, सन्देह–अलंकार के सहयोग से जिसमें काव्य–कौमुदी स्पृहणीय बन गयी है।

कीर्त्तिपाल की पुत्री रूदल देवी भी शिवभक्त थी जिसने जालोर नगर में शिव के दो मन्दिर बनवाये। यह ऐतिहासिक सूचना भी पद्य सं 41 से प्राप्त होती है।

श्रीकीर्तिपालभूपतिपुत्री जाबालिपुरवरे चक्रे।
श्रीरूदलदेवी शिवसन्दिरयुगलं पवित्रमतिः।।
"धीरोदात्तस्तुरुष्काधिपमददलनो गूर्जरेन्द्रैरजेयः,
सेवायातक्षितीशोचितकरणपटुः सिंधुराजांतको यः।
प्रोद्दामन्यायहेतुर्भरतमुखमहाग्रन्थतत्त्वार्थवेत्ता,
श्रीमज्जाबालिसंज्ञापुरि शिवसदनद्वन्द्वकर्त्ता कृतज्ञः।।

जालोर के चौहान शासकों में उदयसिंह (देव) का नाम आदर से स्मरणीय है। वह, समरसिंह देव का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, जो विशाल साम्राज्य का अधिपति, न्यायप्रिय, धर्मात्मा, उपकार परायण, सिन्धुराज का हन्ता, तुरुष्क (आरामशाह या इल्तुतमिश) के स्वामी का मदभञ्जक, जालोर में शिवमन्दिर–युग्म का निर्माता तथा भरत मुनि के महाग्रन्थ अर्थात् नाट्यशास्त्र अथवा महाभारत का विद्वान् था। इसकी पत्नी प्रल्हादन देवी ने चाचिगदेव एवं चामुण्डराज को जन्म दिया।

32. इस शिलालेख से हमें प्राचीन नगरों, स्थानों आदि के तत्कालीन नामों की भी उपयोगी जानकारी मिलती है:–

नद्दूल (नाडोल), श्री जाबालिपुर (जालोर), माण्डव्यपुर (मण्डोर), वाग्भटमेरू (बाड़मेर), राटहद (राड़धरा), रामसैन्य (रामसीन), अपराजितेश (रामसीन का आपेश्वर मंदिर), श्रीमाल (भीनमाल), रत्नपुर (रतनपुर), सत्यपुर (सांचोर), संडेर (सांडेराव), किरातकूट (किराडू) कासीहद (कायन्द्रा, कासींदर जिला सिरोही, इसी स्थान पर कीर्तिपाल आदि ने मिलकर मुहम्मद गोरी को परास्त किया था।), गूर्जर (गुजरात), अणहिल्लपुर (वर्तमान पाटन), सुगन्धा (सूँधा) हिम्राद्रिभव (आबू), शाकंभरी (साँभर), चाहमान (चौहान), कनकाचल (स्वर्णगिरि – सोनगिरि जिससे कालान्तर में सोनगरा चौहान कहलाये), स्रवन्ती (सागी नदी)।

33. प्रशस्तिकार ने चरित नायक चाचिगदेव के गुणकीर्तन में अपनी प्रतिभा का प्रभविष्णु प्रयोग किया है। वह दानेश्वर, साक्षात् इन्द्र, प्रत्यक्ष कल्पद्रुम, बृहस्पति, शेषनाग, सुमेरु आदि के समान चित्रित हुआ है। श्रीमाल में करग्रहण में उसने छूट दी, विग्रहादित्य की पूजा हेतु धनदान की स्वीकृति दी, रामसीन में अपराजितेश (आपेश्वर) मंदिर में कनककलश एवं ध्वजारोहण किया। ये गुण चौहान–शासकों की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्र भक्ति की प्रवृत्तियों के प्रकाशक हैं।

34. यह प्रशस्ति सुगन्धाद्रि के प्राकृतिक वैभव तथा उसकी भव्यता की मनोहर जानकारी भी प्रस्तुत करती है। द्रष्टव्य श्लोक सं 54–55

35. प्रशस्ति का सम्पूर्ण कलेवर मानो कमनीय काव्य का क्लम–हरण–कुंज है, मनोविनोद का मञ्जुल मण्डप है, पौराणिक प्रसंगो का प्रेरक प्रवाह है, जिसमें जयमंगल सूरि की प्रतिभा का उत्कर्ष है, काव्य के विविध अंगरूपी सुमनों की सौरभ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूँधा शिलालेख से हमें बहु–आयामी जानकारी

प्राप्त होती है। नाडोल एवं जालोर के 19 चौहान शासकों की ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक सामग्री इससे मिलती है। यह शिलालेख उनके वीर–कार्यों, समर–संघर्षों, जय–पराजयों, उत्साह जनित उपलब्धियों, उदार प्रवृत्तियों, गुण–परम्पराओं, पौराणिक कथा–प्रसंगों, तत्कालिक राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक अवस्थाओं तथा उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व दानादि पद्धतियों, प्राकृतिक वन–सम्पदाओं आदि का अत्यन्त उपोदय एवं विश्वसनीय पुरातत्व–वर्ग का स्रोत है। इतना ही नहीं यह प्रशस्ति जैन यति जयमंगल सूरि की अमरकीर्त्ति है जो वृहद्गच्छ के तीन आचार्यो, प्राचीन नाम–रूपों, चाहमान शाखाओं के संस्थापकों, सूँधा माता के मन्दिर में मण्डप निर्माण तथा मूर्ति–प्रतिष्ठा आदि की सूचना देती है इसलिए सूँधा–शिलालेख ऐतिहासिक धरोहर है।

: संदर्भ :

1. राजस्थान का इतिहास– डॉ. गोपानाथ शर्मा, तृतीय संशोधित संस्करण, 1978, पृष्ठ 8
2. प्राचीन भारत का इतिहास– डॉ. वी. डी. महाजन, अष्टम संस्करण, 1989 पृष्ठ 21
3. राजस्थान का इति., पृष्ठ 9
4. प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 21
5. प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 21
6. राज. का इति., पृ. 9
7. प्राचीन भारत का इति.,पृ. 22
8. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, काव्य–साहित्य, डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध–संस्थान, वाराणसी, 1973, पृ.सं. 435, 436 व 437
9. राजस्थान का इतिहास, पृ. सं. 23
10. Early Chauhan Dynesties, Dr. Dasharatha Sharma, Reprint 1992, P 176.
11. संवत् 1319 त्रयोदशशतैकोनविंशतौ मासि माधवे।
चक्रेऽक्षयतृतीयायां प्रतिष्ठा मण्डपे द्विजैः।।57।।
श्री सूँधा माता, तीर्थ, खण्ड 2, शिलालेख, तृतीय संस्करण, अनुवाद– श्रीकृष्ण सोनी, सम्पादन– डॉ. भगवतीलाल शर्मा, 1987
12. वही, श्लोक सं. 59
"स श्रीकरी सप्तकवादि देवाचार्यस्य शिष्योऽजनि रामचंद्रः।
सूरिर्विनयो जयमंगलोऽस्य प्रश स्तिमेतां सुकृती व्यधत्त।।
13. जैन साहित्य का वृहद् इति. भाग 6, द्रष्टव्य पृष्ठ सं. 88,19,467 व 469
14. "भिषग्वर विजयपाल पुत्रेण नाम्वसींहेन लिखिता।
सूत्रधार जिसपालपुत्रेण जिसराविणोत्कीर्णा।।
(सूधा शिलालेख श्लोक सं. 60)
15. द्रष्टव्य श्लोक सं. 56, सूँधा–शिलालेख
तन्मूर्ध्नि त्रिदशेन्द्रपूजितपदांभोजद्वयां देवताम्,

चामुण्डामघटेश्वरीतिविदितामभ्यर्चितां पूर्वजैः।
नत्वाऽभ्यर्च्य नरेश्वरोऽथं विदधेऽस्या मंदिरे मंडपम,
क्रीडात्किन्नरकिन्नरीकलरवोन्माद्यत्मयूरीकुलम्।।

16. यह दोहा बारहठ लाखा लिखित हस्तलिखित ग्रन्थ में –'अथ श्री माताजी रा दूहा लषंते' शीर्षक रचना में संकलित है। इसका लिपिकाल सं. 1933 चैत्र वदि अमावस है। संभवतः यह कवि सूजा द्वारा रचित छंद है, क्योंकि इसके (पाँचवे दोहे के) आगे वाले छंद से 6 में "कव सूजो बनती करै" ऐसा चरण आया है।
17. स्कन्दपुराण में इस सौगन्धिक गिरि (सूँधा पहाड़) पर अवटेश्वरी देवी का उल्लेख मिलता है– प्रभास खण्ड– श्रीमाल माहात्म्य– अध्याय 54, श्लोक सं. 20। 'अवटेश्वरी' 'अघटेश्वरी' का ही अपर पर्याय है।
18. पुराणानुसार मान्यता है कि जब भगवान् शिव दक्ष यज्ञ में जले हुए 'सती' के शरीर को लेकर उन्मत्त हो गये थे, तब विष्णु ने सुदर्शन चक्र से सती के शरीर के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। सती के अंग जिन–जिन स्थानों पर गिरे वहाँ शक्तिपीठ स्थापित हो गये। संभवतः इस सुगन्धाद्रि पर सती का सिर गिरा हो जिसके कारण चामुण्डा का नाम 'अघटेश्वरी' प्रचलित हो गया हो।
19. "ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मंगलमाचरेत्" की शास्त्रीय परम्परानुसार इस प्रशस्ति में तीनों स्थानों (आदि, मध्य, अन्त) पर शिव, पार्वती, चण्डिका, शम्भु तथा कुम्भिवक्त्र गणेश की स्तुति द्वारा शिव–कामना की गयी है।
20. राजस्थान का इतिहास– डॉ. गोपीनाथ शर्मा, पृ. 90
21. Early Chauhan Dynesties, द्रष्टव्य पृ. सं. 12
22. वही, द्रष्टव्य पृ. सं. 370
23. वही, द्रष्टव्य पृ. सं. 13
24. सूँधा–शिलालेख, द्रष्टव्य–श्लोक सं. 4
25. Early Chauhan Dynesties पृ. सं. 140
26. वही , द्रष्टव्य पृं. सं. 142
27. शिलालेख श्लोक सं. 131
28. Dr. Dasharath Sharma, E. Ch. Dy., पृ. सं. 145
29. सूँधा–शिलालेख– श्लोक सं. 20
30. वही, द्रष्टव्य श्लोक 24 ;
    Early Chauhan Dy. पृ.सं. 147
31. Early Ch. Dy., पृ. सं. 148
32. सूँधा–शिलालेख–श्लोक सं. 32
33. Early Ch. Dy., पृ. सं. 157
34. वही, पृ.सं. 164

संस्कृत विभागाध्यक्ष
राजकीय महाविद्यालय, जालोर (राजस्थान)

सूरसिंह वंशप्रशस्ति : इतिहास के संदर्भ में

डॉ. उषा गोस्वामी

संस्कृत की सभी रचनाओं में रसोन्मीलन के साथ अन्यान्य उद्देश्यों की प्रासंगिक उपलब्धि भी होती है, किन्तु जिस साहित्य को ऐतिहासिक काव्य के अन्तर्गत माना गया है, उसमें मुख्यतः रस–प्रधान, प्रणय प्रधान और प्रशस्तिपरक साहित्य की गणना होती है। इसमें भी प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य मुख्यतः रस–प्रधान और प्रणय–प्रधान हैं। समकालीन प्रशस्तिपरक और अर्वाचीन साहित्य राष्ट्रीय–गौरव और राष्ट्र–प्रेम से सम्बधित है। समकालीन कवियों ने आश्रयदाताओं की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने के प्रयोजन से उनका जीवन–चरित्र गद्य या पद्य में निबद्ध करने का प्रयास किया और उन आश्रयदाताओं के पूर्वजों एवं वंशजों का भी उल्लेख किया। फलस्वरूप उनकी रचनाओं से तत्कालीन शासकों के विषय में तो ज्ञात होता ही है, पूर्व पुरुषों की वंशावली भी इतिहास जानने के लिए सहायक सिद्ध होती है। यह परम सुखद तथ्य है कि राजस्थान में भी संस्कृत के अनेक महान् साहित्यकार हुए, जिन्होंने संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं में ऐतिहासिक काव्यों का भी प्रणयन किया। ऐतिहासिक काव्यों की शृंखला में श्री माधवभट्ट द्वारा रचित "सूरसिंह वंशप्रशस्ति" काव्य इतिहास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। इस काव्य को प्रकाशित करने का श्रेय राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर और सम्पादक श्री ओ३म् प्रकाश शर्मा को है, जिनकी विद्वत्ता और सराहनीय प्रयास से यह काव्य–कृति दृष्टिपथ में आई।

यह काव्य चतुः सर्गात्मक सूर्यवंशीय राजाओं और राष्ट्रकूट नरेशों की वंशावली और यत्र–तत्र उनकी गौरवमयी प्रशस्तियों का वर्णन करता है। यह सृष्टि–संरचना के साथ मारवाड़ में राठौड़ वंश के पूर्व पुरुष राव सीहा के परिचय से लेकर राजा सूरसिंह तक का उल्लेख करता हुआ राजा सूरसिंह 1595–1619 ई. को जर्जरित राष्ट्रकूट वंश के उद्धारक के रूप में चित्रित करता है। काव्य का अभिधान राष्ट्रकूटवंशावली के स्थान पर सूरसिंह वंशप्रशस्ति रखना और काव्य के अंतिम सर्ग में राजा सूरसिंह की वीरता, पराक्रम, उदारता आदि उदात्त गुणों को दर्शाता कवि का अभिवन्दन यह स्पष्ट करता है कि कवि राठौड़ वंश के शासकों की शृंखला में राजा सूरसिंह की महत्ता को प्रतिपादित करना चाहता है।

इस काव्य का सम्पादन एकमात्र उपलब्ध प्रति के आधार पर किया गया है और इस प्रति में लिपिकाल वि.सं. 1777 प्राप्त होता है। यह समय राजा सूरसिंह से आगे का है। अतः रचयिता माधवभट्ट को सूरसिंह के समकालीन मानने पर प्राप्त प्रति मूलप्रति की प्रतिलिपि ही मानी जायेगी। किन्तु यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कवि के समकालीन न होने पर भी इस प्रकार की प्रशस्ति–रचना अथवा साक्षात्–वर्णन कवियों की अद्भुत प्रतिभा के समक्ष किंचित्–दुरूह नहीं होता, क्योंकि रचनाकार का रचना के पात्रों से इस प्रकार तादात्म्य

स्थापित हो जाता है कि उसकी रचना के समस्त पात्र उसके समक्ष पूर्णरूपेण उपस्थित रहते हैं। यदि प्राप्त प्रति मूलग्रंथ की प्रतिलिपि ही मानी जाए, तो मूल प्रति की प्राप्ति से संभवत: काव्य के कई ऐतिहासिक तथ्यों के उन बिन्दुओं का निराकरण हो जाए, जहाँ कवि–वर्णन और इतिहासकारों के वर्णन में मतभेद है, क्योंकि प्रतिलिपियों में कई कारणों से त्रुटियाँ हो सकती हैं। यहाँ मेरा उद्देश्य इस काव्य के रचयिता सूरसिंह के समकालीन थे या नहीं अथवा प्राप्त प्रति मूलप्रति है या प्रतिलिपि, यह न होकर सम्पादित प्रशस्तिकाव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना ही है।

यद्यपि प्रशस्तिकार का अधिकांश वर्णन इतिहास सम्मत ही है फिर भी कुछ ऐसे स्थल भी हैं, जहाँ कवि का कथन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से भिन्न है। काव्य के प्रथम सर्ग में संस्कृत–काव्य की परम्परा 'मंगलाचरण' के निर्वाह के पश्चात् पुराण और पौराणिक आख्यानों के आधार पर सृष्टि–संरचना का वर्णन है। इसमें भगवान विष्णु द्वारा सृष्टि–संरचना के उद्देश्य से कमलनाल की उत्पत्ति, उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव और तत्पश्चात् ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की संरचना वर्णित है। इसी क्रम में ब्रह्मा पुत्र मरीचि एवं कश्यप से लेकर राजा बंभ तक की वंशावली, प्राप्त होती है। अनेक स्थलों पर प्रख्यात महापुरुषों, तथा हरिश्चन्द्र, भागीरथ या रघु आदि के प्रमुख चारित्रिक गुणों और उनके जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं का भी वर्णन है [1] ऐतिहासिक दृष्टि से इस वर्णन का यह महत्व माना जा सकता है कि कवि ने पुराणों में विस्तृत रूप से वर्णित सृष्टिक्रम और महापुरुषों के विशेष आख्यानों [2] को संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया और वे इस प्रयास में सफल भी रहे।

कवि ने इस सृष्टिक्रम में सूर्यवंशीय राजाओं के नाम एवं विभिन्न गौरवमयी गाथाओं के साथ राष्ट्रकूट नरेशों की पराक्रम गाथाओं का दिग्दर्शन कराया है। वस्तुतः सूर्यवंशीय राजाओं के साथ राष्ट्रकूट नरेशों के वर्णन से कवि ने राष्ट्रकूट या राठौड़ों को सूर्यवंशी माना है। साथ ही राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति राष्ट्रवर से बताते हुए यह मत प्रस्तुत किया है कि राष्ट्रवर से ही कालान्तर में "रट्ठवर" और उसके बाद राठौड़ नाम का प्रचलन हुआ। [3] राठौड़ों के सूर्यवंशी होने और जाति सूचक राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। दयालदास और कर्नल टॉड आदि कई इतिहासकार इन्हें सूर्यवंशीय मानते हैं, ओझा आदि इतिहासकार चन्द्रवंशी, [4] कई यदुवंशी और बर्नेल आदि द्रविड़ मानते हैं। इसी प्रकार राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में भी अनेक मत हैं। संस्कृत–शिलालेखों, ताम्रपत्रों, और पुस्तकों में जाति सूचक राठौड़ के लिए बहुधा राष्ट्रकूट ही प्राप्त होता है। कहीं–कहीं रट्ठ राष्ट्रौड़ [5] शब्द भी मिलता है। एक मत यह भी है कि रट्ठा नामक राजा के पुत्र का नाम राष्ट्रकूट था और उसके वंश का नाम राष्ट्रकूट पर ही चला। अतः कवि का यह कथन कि राठौड़ सूर्यवंशी थे, तो ग्राह्य हो सकता है, किंतु राष्ट्रवर से रट्ठावर और तत्पश्चात् राठौड़ शब्द का निर्माण युक्तिसंगत नहीं लगता। उसके स्थान पर यदि राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति रथोद्धत से मानी जाए तो अधिक समीचीन होगा, क्योंकि रथोद्धत से रथोढ, राथोढ और राठौड़ बन सकता है।

काव्य के द्वितीय सर्ग में राजा बम्भ के वंशक्रम में अजयचन्द्र, सुभटराज और विजयचन्द्र

के उल्लेख के साथ कन्नौज के राजा जयचन्द का उल्लेख है। कवि लिखता है कि दलपंगु नामक उपाधि से विभूषित पराक्रमी और यशस्वी सम्राट् जयचन्द ने सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं को अधीन करने की इच्छा से राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया, परन्तु इन्द्रप्रस्थ के राजा पृथ्वीराज चौहान द्वारा विफल कर दिया गया ।[6] प्रथम तो "दलपंगु" शब्द वस्तुतः दलपंगुल है और अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार यह उपाधि पृथ्वीराज चौहान ने धारण की थी।[7] दलपंगुल शब्द का अभिप्राय विश्व–विजय से था। पृथ्वीराज के समकालीन फारसी ग्रंथ "ताजुल मासिर" में भी इस बात का उल्लेख है कि पृथ्वीराज विश्व–विजय की कामना करता था। इस प्रशस्ति के अतिरिक्त 'रम्भामंजरी' नामक नाटिका में भी गाहड़वाल नरेश जयचन्द को दलपंगुल कहा गया है।[8] वस्तुतः जयचन्द और पृथ्वीराज दोनों ही शासक महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली थे; अतः कवि का उद्देश्य जयचन्द को दलपंगुल कहकर उसकी महत्त्वाकांक्षा का दर्शन ही प्रतीत होता है।

कवि, कन्नौज नरेश जयचन्द्र को ही राठौड़ों का पूर्वज मानते हैं। इस विषय में भी अनेक मत हैं। मारवाड़ के राठौड़ों का पूर्व पुरुष राव सीहा माना जाता है, जबकि इतिहास साक्षी है कि इस प्रसिद्ध राजवंश के मरुमण्डल में अभ्युदय के पूर्व श्री राष्ट्रकूट वंश का यहाँ अस्तित्व था।[9] यद्यपि उनका परवर्त्ती राठौड़ों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि के मतानुसार जयचन्द गाहड़वाल था और राठौड़ सर्वदा स्वयं को राष्ट्रकूट या राठौड़ ही लिखते रहे हैं, अतः गाहड़वाल राठौड़ नहीं हो सकते। किंतु कुछ सूत्र उन्हें जयचन्द का वंशज ही प्रमाणित करते हैं।[10] अतः यदि जयचन्द ही राठौड़ों के पूर्व पुरुष राव सीहा का पूर्वज था, तो राव सीहा का मारवाड़–आगमन जयचन्द की मृत्यु के पश्चात् अर्थात् वि.सं. 1250 के पश्चात् ही मानना पड़ेगा। क्योंकि जयचन्द के जीवन–काल में उनके वंशज का कन्नौज से पलायन और मारवाड़ में स्थापित होना तर्कसंगत नहीं लगता। किंतु मारवाड़ की ख्यातों में राव सीहा का आगमन वि. सं. 1212 माना है, अतः यह कहना होगा कि सीहा का जयचन्द से कोई सम्बन्ध नहीं था। रेउ महोदय ने जयचन्द के पुत्र या पौत्र का पूर्वी उत्तर–प्रदेश की ओर जाने का उल्लेख किया है।[11] ऐसी स्थिति में पूर्वी उत्तर–प्रदेश की शस्य–श्यामला भूमि को छोड़कर शुष्क पश्चिमी राजस्थान में सीहा आगमन संदिग्ध लगता है। इसके अतिरिक्त राव सीहा के मारवाड़ आगमन के दो कारण बताए जाते हैं, एक मत के अनुसार उन्होंने कन्नौज के शासन काल में सगोत्रीय पुरुषों का वध किया था, अतः वे प्रायश्चित के लिए द्वारिका यात्रा पर निकले और मार्ग में पाली के महाजनों के अनुरोध पर वहाँ रक्षक के रूप में निश्चित वेतन पर नियुक्त हुए, और कालान्तर में वे मारवाड़ में ही बस गए और दूसरे मत के अनुसार कन्नौज के पतन के पश्चात् वे सुख और वैभव की चाह से मारवाड़ आए। ये दोनों ही कारण तर्कसंगत नहीं लगते। क्योंकि शासकों ने राज्य की कामना से या राज्य–विस्तार की दृष्टि से अपने ही परिवारजनों से युद्ध किया है और राव सीहा मारवाड़ में भी योद्धा के रूप में ही रहे। दूसरे, मरुस्थल में सुख और वैभव की चाह से आना भी संदेहात्मक ही है। अतः अनुमान होता है कि राजस्थान के राष्ट्रकूटों में से ही कोई ऐसा 'सीहा' नामक वीर हुआ, जिससे वर्तमान राठौड़ वंश चल रहा है।

इसके अतिरिक्त राव सीहा को कवि ने सीतराम का पुत्र बताया है।[12] इतिहासकारों में भी कई सीतराम के पुत्र सीहा थे यह मानते हैं, तो कई सीतराम को सीहा का भ्राता बताते हैं।[13] कवि के अनुसार ये सीतराम जयचन्द के पौत्र और जयसेन के पुत्र थे।[14] सूर्यवंशप्रशस्ति के सम्पादक ने भूमिका में इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला है कि इस प्रशस्ति के अतिरिक्त जयचन्द के पुत्र का नाम जयसेन नहीं मिलता। ख्यातों और वंशावली में 'वरदायीसेन' का उल्लेख है और कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों और ताम्रपत्रों पर 'हरिश्चन्द्र' को जयचन्द का पुत्र बताते हैं। इसमें भी कई इतिहासकार वरदायीसेन और हरिश्चन्द्र को भाई मानते हैं और कई हरिश्चन्द्र उनकी उपाधि स्वीकार करते हैं। परन्तु यही उचित प्रतीत होता है कि वरदायीसेन के सत्यवादी होने के कारण उन्हें हरिश्चन्द्र के समकक्ष मान लिया होगा और हरिश्चन्द्र उनकी उपाधि ही रही होगी। वैसे भी पिता–पुत्र दोनों के नाम में सर्वथा साम्य भारतीय परम्परा के अनुकूल नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ कोई भी परम्परावादी भारतीय नारी साधारणतः पति के नाम के समान नाम का उच्चारण नहीं करती। अतः पुत्र का नाम पति के नाम के समान कैसे हो सकता है ? फलस्वरूप जयचन्द्र के पुत्र का नाम वरदायीसेन "हरिश्चन्द्र" भी ग्राह्य है। यहाँ यदि कवि का कथन माना जाए कि राव सीहा जयसेन के पौत्र थे, तो इतिहास में कन्नौज नरेश जयचन्द का पुत्र जयसेन का न होना सीहा का सम्बन्ध कन्नौज नरेश से नहीं सिद्ध करता। अपितु किसी अन्य जयचन्द के वंशज ही राव सीहा थे, यह बतलाता है। किंतु प्रशस्तिकार ने जयचन्द कन्नौज नरेश का ही वर्णन किया है, संयोगिता स्वयंवर और पृथ्वीराज चौहान द्वारा संयोगिता के अपहरण आदि घटनाओं का वर्णन भी इसका प्रमाण है। कवि को जयचन्द के पुत्र के नाम में अवश्य भ्रान्ति या प्रमाद हुआ है, यह कहा जा सकता है।

काव्य के द्वितीय सर्ग में श्लोक सं.73 में कवि लिखता है कि राव सीहा ने द्वारिका, हरिद्वार और कांची आदि तीर्थों की यात्रा के समय पाटण के राजा मूलराज सोलंकी का आतिथ्य स्वीकार किया और उनके अनुरोध पर जाडेजान्वय लाखा का वध किया। कवि का यह उल्लेख ख्यातों पर आधारित है।[15] ख्यात–वर्णन के आधार पर कुछेक इतिहासकारों ने भी यह उल्लेख किया है[16] कि राव सीहा का साथियों सहित सोलंकी ने अतिथि सत्कार किया और उनके अनुरोध पर राव सीहा ने जाडेजावंशीय लाखा से युद्ध किया। कहीं वर्णित है कि लाखा के आतंक से सोलंकी नरेश भयभीत था और वह किसी प्रकार उसका अंत चाहता था, तो कहीं वर्णित है कि वे अपने पिता का बंदला लेना चाहते थे और उससे युद्ध में अनेक बार पराजित हो चुके थे। किंतु राव सीहा और लाखा एवं सोलंकी नरेश का समय भिन्न है। सांभर से प्राप्त सोलंकियों के शिलालेख में मूलराज ई. सन् 1994 तक जीवित था, अतः यह वर्णन कपोलकल्पित ही जान पड़ता है। संभवतः द्वयाश्रय काव्य के रचयिता हेमचन्द्र का यह कथन सही है कि सोलंकी मूलराज ने ही लाखा का वध किया।[17]

द्वितीय सर्ग में ही कवि राव सीहा के पुत्र आसथान द्वारा खेड़ नगर में राजधानी बनाने का वर्णन करता है और तत्पश्चात् उनके पुत्र धूहड़जी के राज्यासीन होने और कर्णाट प्रदेश से इष्टदेवी चक्रेश्वरी की मूर्त्ति लाने का उल्लेख करता है। कवि कहता है कि यह मूर्त्ति

धूहड़जी के द्वारा नागाणा नामक गाँव में स्थापित की गई, अत : तभी से इस देवी का नाम नागणेची प्रसिद्ध हुआ ।[18] यहां उल्लेखनीय बिन्दु है कि यह मूर्त्ति कौन लाया ? यह कर्णाट प्रदेश से क्यों लाई गई जबकि राव सीहा कन्नौज से आए थे, या कुलदेवी की यह मूर्त्ति राव सीहा या राव आसथान के समय स्थापित क्यों नहीं की गई ? जबकि यह हमारी परम्परा सही है कि कोई भी शासक किसी भी कार्य के प्रारम्भ करने से पूर्व अपने कुलदेवता की अर्चना करता है। यदि रेउ महोदय का यह कथन मान लिया जाए कि लुंब नामक सारस्वत ब्राह्मण इसे लेकर मारवाड़ आया था, तो मूर्त्ति का कर्णाट प्रदेश से लाया जाना राठौड़ों की वंशावलियों में वर्णित इस मत की तो पुष्टि करता है कि राठौड़ों की उत्पत्ति महाराष्ट्र कोंकण में हुई और वहाँ से वे कर्णाट और कन्नौज की ओर गए। परन्तु यह भी उल्लेख मिलता है कि यह मूर्त्ति लुंब ऋषि कन्नौज से लाए। दूसरी ओर रेउ महादेय यह लिखते हैं कि जयचन्द ने जब चित्तौड़ विजय किया था, तो वहाँ भी कुलदेवी (नागणेची) का मंदिर बनवाया था। यहाँ दुबारा मूर्त्ति लाना और पुनर्स्थापन की बात भी उचित नहीं लगती। इस विषय में ख्यातों का वर्णन ही उचित प्रतीत होता है। धूहड़जी को देवी ने नागरूप में दर्शन देकर वर दिया और तभी से देवी की नागणियाची रूप में उपासना होने लगी।

इसी प्रकार कवि का यह मानना है कि वीरमजी के द्वितीय पुत्र राव चूण्डा (ई. सन् 1394–1424) ने मंडोवर के नागवंशीय राजाओं को अपने बल से समाप्त कर दिया, उचित प्रतीत होता है ।[19] इतिहास में यह प्रमाण मिलता है कि आसथान से सलखा तक खेड़ पर राठौड़ों का अधिकार रहा। सलखा के पुत्र मल्लीनाथ (राव माला) ने राठौड़ों की सत्ता का विस्तार किया। उनके भाई वीरम को जोहियों ने मार दिया। जब राव माला ने वीरम के पुत्र चूण्डा को सालेड़ी ग्राम की जागीर प्रदान की। उस समय मण्डोर पर प्रतिहारों की ईंदा शाखा का अधिकार था और वे नागौर के मुस्लिम आक्रमणों से दुःखी थे। उन्होंने मण्डोर विजय चूण्डा जी के सैनिकों की सहायता से छल–बल से प्राप्त किया था। अतः किले पर अधिकार करने के बाद पड़िहारों के लिए यवन सेना से मुकाबला संभव नहीं था, अतः उन्होंने अपने मुखिया उगमसी की पोती चूण्डाजी को ब्याही और दहेज में मण्डोर का किला प्रदान किया।[20] इस आशय का सोरठा–"ईंदा री उपकार कमधज"[21] भी प्रसिद्ध है। किंतु यह अनुमान होता है कि पड़िहारों के लिए नागौर की यवन सेना का मुकाबला सामर्थ्य से बाहर था, अत : उन्होंने मण्डोर विजय के बाद चूण्डाजी से पुत्री का विवाह करके मण्डोर दहेज में देने की बात स्वीकार की होगी। अतएव चूण्डाजी ने मण्डोर–विजय में पड़िहारों की सहायता प्रदान करके उनको अनुगृहीत किया होगा। कर्नल टॉड ने चूण्डाजी का पड़िहार नरेश को मारकर मण्डोर पर अधिकार करना लिखा है, जो इस धारणा को अंशत : पुष्ट करता है।

प्रशस्तिकार ने राव चूण्डा के पश्चात् राव रिणमल्ल का उल्लेख किया है। जबकि राव चूण्डा की मृत्यु के पश्चात् राव कान्हाजी ज्येष्ठ न होकर भी उत्तराधिकारी बने और कान्हाजी की मृत्यु के समय रिणमल्लजी के मेवाड़ में होने के कारण मण्डोर की गद्दी राव सत्ताजी को दी

गई थी।[22] कवि ने इन दोनों ही इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख नहीं किया है। संभ्भवतः कवि का उद्देश्य राव चूण्डा के ज्येष्ठ पुत्र का उल्लेख करना होगा, पर इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख होना चाहिए।

प्रशस्ति में राव रिणमल्ल के पश्चात् राव जोधा का सुरक्षा हेतु भटकाव, अनेक स्थानों पर विजय और जोधपुर दुर्ग एवं नगर की स्थापना का वर्णन किया है।[23] राव जोधाजी के 20 पुत्रों में सूजा, विक्रम और वरसिंह आदि पुत्रों के नामोल्लेख के बाद सूजा का जोधपुर के शासक बनने का उल्लेख है।[24] कवि का यह वर्णन भी इतिहास सम्मत नहीं है। राव जोधा के पश्चात् उनके तृतीय पुत्र राव सातल (वि.सं. 1545) में सिंहासन पर बैठे। राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र नींबा के असामयिक निधन के बाद द्वितीय पुत्र जोगा गद्दी के अधिकारी बने, किन्तु राजतिलक के समय वे स्नानादि से निवृत्त न हो सके, अतः सातल को गद्दी दी गई। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई राव सूजा वि. सं. 1572 तक शासक रहे। इस प्रकार इतिहास वर्णन और कवि वर्णन में बहुत अन्तर है। जोधाजी के ज्येष्ठ पुत्र कौन थे या सातल कौन था, इसका कवि ने उल्लेख नहीं किया।

इसी प्रकार कवि राव सूजा के राज्यासीन का उल्लेख करके अगले श्लोक (108) में राव बीकाजी के द्वारा बीकानेर नगर की स्थापना और तत्पश्चात् मेड़ता के राजा दूदा के पराक्रम और दानशीलता को बतलाता है। यहाँ बीकाजी के उल्लेख में प्रशस्तिकार ने इतिहास प्रसिद्ध अनेक तथ्यों की ओर संकेत भी नहीं किया है, जो बीकानेर–स्थापना के प्रमुख बिन्दु हैं। यथा–बीकाजी और उनके चाचा कांधलजी के प्रति जोधाजी का प्रसिद्ध व्यंग्य, बीकाजी को करणीमाता से प्राप्त सहायता, बीकाजी द्वारा जोधपुर पर आक्रमण करना और नागणेची की मूर्त्ति सहित 14 निशानों की प्राप्ति। बीकानेर नगर में नागणेची का मंदिर और राज–परिवार के पास अन्य पैतृक निशान आज भी विद्यमान हैं। बीकाजी का श्रेष्ठ पुत्र श्री माधवभट्ट ने लूणकरण को बताया है।[25] जबकि बीकाजी के ज्येष्ठ पुत्र नरा थे और उनका शासन काल भी कुछ अवधि का रहा है।[26]

इतिहास बताता है कि राव सूजा की मृत्यु के पश्चात् राव गांगा उत्तराधिकारी बने और उन्होंने 1531 ई. तक शासन किया। गांगा का शासनकाल मारवाड़ के राठौड़ों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है। गांगा ने अपनी राजनैतिक सूझबूझ, शौर्य और पराक्रम से राज्य विस्तार किया। गांगा के बाद राव मालदेव (1531 ई.) गद्दी पर बैठे। उनके चार पुत्र राम, उदयसिंह, रत्नसिंह और चन्द्रसेन थे। मालदेव की मृत्यु के पश्चात् राव चन्द्रसेन गद्दी पर बैठे। प्रशस्तिकार का कथन है कि मालदेव ने अपनी पत्नी के कहने पर चन्द्रसेन को मारवाड़ का राज्य दिया।[27] यहाँ यह तो स्पष्ट है कि चन्द्रसेन मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र नहीं थे और मालदेव ने ज्येष्ठता के परम्परागत नियमों का उल्लंघन करके उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। वस्तुतः समस्त राजकुमारों की शुद्ध जन्म–तिथियां और ख्यातों में उनके

नाम वरिष्ठता-- क्रम उपलब्ध न होने से यह निश्चित करना कठिन है कि वरिष्ठता–क्रम में चन्द्रसेन का कौन–सा स्थान है ? अतः मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उदयसिंह और राम दोनों ने ही चन्द्रसेन पर आक्रमण किया। प्रशस्ति में वर्णित लोहावट स्थान पर युद्ध इतिहास–सम्मत है। तत्पश्चात् चन्द्रसेन के तीन पुत्र रायसिंह, उग्रसेन और आसकरण में प्रथम आसकरण, उसके बाद उग्रसेन और दोनों के परस्पर युद्ध में काल कवलित होने पर रायसिंह उत्तराधिकारी बने। सोजत में वि. सं. 1639 में इनका राजतिलक हुआ। वे अकबर की सेवा में रहते हुए सिरोही के सुरत्राण से युद्ध में वि.. सं. 1640 में दत्ताणी गाँव में मृत्यु को प्राप्त हुए।[28] कवि ने भी यही संकेत किया है।

माधवभट्ट ने जिस राजा सूरसिंह के वंश की प्रशस्ति लिखी है, वे मोटा राजा उदयसिंह के पुत्र थे। उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वि.सं. 1640 (1583 ई.) में अकबर ने इन्हें जोधपुर राज्य की गद्दी प्रदान की। वे प्रथम शासक थे, जिन्हें मुगल मनसबदारी मिली। इनसे प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें राजा की उपाधि प्रदान की। इनके पश्चात् इनके पुत्र राजा सूरसिंह वि.सं. 1652 में उत्तराधिकारी बने। ये वस्तुतः राठौड़ वंश के योग्य शासक थे। ये एक पराक्रमी और रणकुशल राजा थे, इसलिए बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें सवाई राजा की उपाधि दी। जोधपुर के राजा बनने के बाद उन्होंने अपने पराक्रम से सोजत, मेड़ता पर विजय प्राप्त की। गुजरात के शाहि बहादुर, दक्षिण के शाहि निजामुलमुल्क एवं हब्शियों को पराजित किया। मालदेव के पुत्रों की आपसी कलह से राठौड़ कुल का गौरव प्रभारहित हो गया था। इनके वीरोचित गुणों से वह उज्ज्वल हो गया। कवि भी अंतिम सर्ग में उनके उदात्त गुणों का अभिनन्दन करता हुआ उनकी महत्ता को ही प्रतिपादित करता है। अंत में कवि अपना परिचय देते हुए काव्य की समाप्ति करता है।

इस वंश–प्रशस्ति के ऐतिहासिक विवेचन में मुख्य बिन्दु यह सामने आया कि जोधपुर और बीकानेर के समकालीन शासकों और भाइयों में से कुछ के नाम एक जैसे हैं। जैसे चन्द्रसेन के पुत्र रायसेन और बीकानेर नरेश रायसेन और दोनों ने ही अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। इसी प्रकार प्रशस्तिकाव्य के रचयिता ने दूदा के पौत्र जयमाल की वीरता और आगरा नगर के राजद्वार पर उसकी मूर्त्ति स्थापना बताकर उसके 14 पुत्रों में सुरत्राण को युवराज बताया। इधर बीकानेर के शासक रायसिंह के तीन भाइयों में से कनिष्ठ को सुरत्राण बताया। सिरोही का राजा भी सुरत्राण बताया गया है। इसी प्रकार बीकानेर का शासक भी सूरसिंह था और इनके भाई का नाम दलपतसिंह था। माधव भट्ट ने श्लोक सं. 166 में राजा सूरसिंह के भाई को भी दलपतसिंह बताया है। स्मरण रहे कि बीकानेर के शासकों में से अनेक शासक बड़े यशस्वी रहे हैं। स्वयं सूरसिंह के पुत्र कर्णसिंह ने एक किंवदन्ती के अनुसार औरंगजेब के द्वारा काबुल अभियान में हिन्दू राजाओं के धर्मपरिवर्तन के षड्यंत्र को विफल कर दिया और हिन्दू राजाओं द्वारा उन्हें जयजंगलधर बादशाह की उपाधि प्रदान की गई। यद्यपि उन्हें बादशाह का कोपभाजन भी बनना पड़ा था। अतः संभावना है कि नाम या समय की समानता के बावजूद उत्तरकालीन इतिहास में तथ्यात्मक भ्रातिन्याँ न उत्पन्न हो जाएँ अथवा एक दूसरे की उपलब्धियाँ या असफलतायें एक दूसरे पर न थोप दी जाएँ ! इतिहासकारों को इस संभावना पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह उचित होगा कि इंग्लैण्ड के जार्ज या एडवर्ड जैसे एक समान नामों को प्रथम, द्वितीय या तृतीय

कहकर अथवा नगरों के नाम को साथ कहकर शासकों के नामकरण में आ रही भ्रान्ति को सदा के लिए दूर कर दिया जाय। अन्यथा कालान्तर में किसी की प्रशस्ति को किसी अन्य की प्रशस्ति माना जाए तो आश्चर्य नहीं। अतः आवश्कयता यह है कि अतीत को इन राजाओं के नाम तथा काम के बारे में सभी भ्रान्तियों को दूर किया जाए। इसके लिए यह भी निश्चय करना होगा कि मूल –स्रोत "सूरसिंह–वंशप्रशस्ति" जैसे ऐतिहासिक काव्यों को प्रामाणिक माना जाए या उन इतिहासकारों को, जिनकी धारणायें बद्ध प्रतिभूत हो सकती हैं। मेरी सम्मति तो इतिहास ग्रंथों के पक्ष में है।

गवेषक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
शाखा–बीकानेर

: संदर्भ :

1. प्रथम सर्ग, श्लोक सं. 24,25,26,27 और 31 आदि, सूरसिंह– वंशप्रशस्ति।
2. श्रीमद्भागवतपुराण– तृतीय स्कन्ध ; अग्निपुराण
3. सूरसिंहवंशप्रशस्ति, 1/55
4. वर्धा के ताम्रपत्र में भी इन्हें चन्द्रवंशी लिखा है।
5. राष्ट्रौड–वंश–महाकाव्य, दक्षिण भारत के शिलालेखों में रट्ट यदुवंशी का वंशज माना है।
6. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/59, 60, 61
7. मारवाड़ का इतिहास– बी.एम. दिवाकर, पृ. 51
8. राजस्थान का इतिहास– डॉ. कालूराम शर्मा, पृ. 51
9. बीजापुर अभिलेख वि. सं. 1053 मण्डोर में सं. 1213 का राठौड़ भुवड़ि के पुत्र सलखा का स्मारक लेख।
10. बीकानेर नरेश राजसिंह 1650 वि. के अभिलेख में उत्कीर्ण वंशावली ; जैन ग्रन्थ पुरातन प्रबन्ध–संग्रह वि.सं. 1528 से पूर्व, पृ. 88 ; मोहनलाल ज्ञान भण्डार सूर्यपुर की कल्पसूत्र की प्रति ; राठौड़ों की वंशावली (1545–1548) "गहड़वाल उच्चकुल के राजपूत हैं। गेहरवाल वंश राठौड़ों की ही एक शाखा थी"। राजपूत जातियों का इतिहास– डॉ. देवीलाल पालीवाल, पृ सं. 213
11. फर्रूखाबाद जिला का महुई गांव, रेउ, मारवाड़ का इतिहास भाग– 1, पृ. 32
12. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/71
13. डॉ. टैसीटरी; ग्रंथ सर्वेक्षण (परम्परा) 28–29, पृ. 138, सीतराम सीहाजी के पिता थे। रेउ–मारवाड़ का इतिहास भाग, पृ. 32 सीहा सीतराम के भाई थे। नैणसी–सीतराम सीहा के पिता थे।

राजस्थान का इतिहास– बी.एम.दिवाकर, पृ. 125 सीतराम सीहा जी के भ्राता थे।

14. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/70

15. इतिहासकार मुंहणोत नैणसी और इतिहास ग्रन्थ– मनोहरसिंह राणावत, पृ. 102–103

16. राजस्थान का इतिहास– बी.एम. दिवाकर, पृ. 125
"सीहा और लाखा का प्रथम युद्ध बीकानेर से 20 मील पश्चिम में कोलूमठ में हुआ, वहाँ पराजित हो लाखा भाग गया। सोलंकी ने खुश होकर अपनी बहिन का विवाह सीहा से कर दिया। तत्पश्चात् द्वारिका जाते समय अणहिलवाड़ापत्तनम् में पुनः लाखा से युद्ध हुआ और वहाँ लाखा राव सीहा के हाथों मारा गया।"

17. हेमचन्द्र–द्वयाश्रय काव्य–पंचमसर्ग

18. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/76

19. सूरसिंहवंश प्रशस्ति – 2/90

20. रेउ, मारवाड़ का इतिहास, भाग–1, पृ. 61

21. ईंदा रा उपकार कमधज कदे न भूलजे। चूड़ो चंवरी चाढ, दी मण्डोवर दायजै।।

22. मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर–सं. डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़, पृ.11

23. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/96–102

24. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/105–107

25. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 2/118

26. राजस्थान का इतिहास– डॉ. प्रकाश व्यास, पृ. 291

27. सूरसिंहवंशप्रशस्ति – 3/133

28. मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर– सं. डॉ. गोविन्द सिंह राठौड़, पृ. 18

अजीतचरित्र महाकाव्य : ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ॰ गोविन्द राम चरौरा

अपारे काव्यसंसारे कविरेक : प्रजापति : ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।। [1]

कवि अपार काव्य संसार का प्रजापति होता है। वह अपने लोकोत्तरवर्णना– नैपुण्य से अनन्त काव्यजगत् की संरचना अपनी रुचि के अनुसार करता है। आचार्य आनन्दवर्धन के उक्त कथन का आशय कवि के असाधारण महत्व का प्रतिपादन करना है। इसका यह आशय तो कदापि नहीं है कि कवि कल्पना लोक का वासी होता है तथा जिस परिवेश में वह रह रहा है उससे उसका कोई लेना–देना ही नहीं।

कवि के वर्णन में अतिरञ्जना हो सकती है परन्तु देशकाल की घटना का ब्यौरा आनुषङ्गिक रूप से उसमें रहता ही है। यदि घटनाओं का ब्यौरा ही प्रामुख्येन विवक्षित होता है तो उस काव्य का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से और बढ़ जाता है अथवा कवि अपने समकालीन किसी महापुरुष से सम्बन्धित घटनाओं का यथातथ्य ब्यौरा प्रस्तुत करता है, अथवा जीवन के शाश्वत मूल्यों को महापुरुषों के जीवन में घटाते हुए राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में योग देता है तो वह काव्य ऐतिहासिक काव्य की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

राजस्थान की रियासतों के आश्रय में अथवा स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ऐसे सैकड़ों संस्कृत काव्य समसामयिक ऐतिह्य को प्रकट करते हैं। इनमें ईश्वरविलासमहाकाव्य, हम्मीरमहाकाव्य, अजितोदयमहाकाव्य, भीमप्रबन्धमहाकाव्य, शत्रुशल्यचरितमहाकाव्य, रामविलासमहाकाव्य, सुर्जनचरितमहाकाव्य, राजप्रशस्तिमहाकाव्य, बलवन्तसिंहयशप्रताप, कर्णकुतूहल, माधवस्वातन्त्र्यम् एवं अजीतचरित्रमहाकाव्य आदि प्रमुख हैं।

अजीतचरित्रमहाकाव्य जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के लिए ही लिखा गया है।[2] तत्कालीन इतिवृत का परिज्ञान कराने वाली प्रकृत काव्यकृति का महत्व इसलिए और बढ़ जाता है कि इसके प्रणेता बालकृष्णशर्मा दीक्षित, अजीतसिंह के समकालीन थे। अजीतसिंह की आज्ञा से ही उक्त ग्रन्थ का प्रणयन किया गया। स्वयं कवि ने लिखा है–

आज्ञाकृता तेन नराधिपेन, राठौडवंशाभरणोत्तमेन।
औदीच्यजं दीक्षितबालकृष्णशर्माणमेनं विबुधैकभक्तम् ।।[3]

आलोच्य कृति से अजीतसिंह एवं इनके पूर्ववर्ती शासकों के समकालीन प्रमुख घटनाओं का ब्यौरा तो हमें मिलता ही है साथ ही साथ तत्कालीन भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जानकारी का भी दिग्दर्शन होता है।

पाण्डुलिपि रूप में प्राप्त, अद्यावधि अप्रकाशित अजीतचरित्रमहाकाव्य दश सर्गों में विभक्त है। विदित ही है कि उक्त काव्यकृति की रचना महाराजा अजीतसिंह के लिए की गई है परन्तु इसके दश सर्गों में से प्रारम्भ के छः सर्गों में अजीतसिंह के पूर्ववर्ती शासकों का उल्लेख है। अन्तिम चार सर्ग अजीतसिंह के लिए समर्पित हैं।

"मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि" [4] इत्यादि भगवान् महाभाष्यकार की उक्ति को मन में रखते हुए जगज्जननी भगवती एवं श्रीगणेशवन्दना द्वारा ग्रन्थारम्भ किया गया है। तदनन्तर अजीतसिंह के वंश का सम्बन्ध सूर्यान्वयी वैवस्वत मनु से स्थापित कर उसके वंशज इक्ष्वाकु [5] के वंश में उत्पन्न मरु को यहाँ का संस्थापक शासक बताया गया है। धर्मपरायण मरु यहाँ पुष्करस्नान के लिए आये एवं उक्त स्थली को अपनी धार्मिक क्रियाओं के अनुरूप पाकर पुष्कर के निकट में अपनी राजधानी बनायी। मरु ने ही मरुपुरु नामक नगर बसाया जो अब मन्दपुर के नाम से प्रसिद्ध है। [6] मारवाड़ के मरुभूमि नाम के विषय में बहुविध विचार प्रचलित हैं। [7] परन्तु अजीतचरित्र में बताया गया है कि यहाँ राज्यस्थापना मरु ने की ; अतः उसी के नाम से यह मरुभूमि प्रसिद्ध है। [8]

कालान्तर में मरु के पश्चात् इस वंश में शल्य [9] का उल्लेख कवि ने किया है। ये महाभारत में प्रसिद्ध शल्य ही हैं। महाभारत युद्ध में शल्य की भूमिका का विशद् वर्णन कवि ने तृतीय सर्ग का विषय बनाया है।

शल्य के पश्चात् कौन–कौन शासक यहाँ हुए, इस विषय में केवल इतना कहकर कवि आगे बढ़ जाते हैं कि शल्य के पश्चात् बहुत से प्रतापी शासक हुए। उनका वर्णन पुराणों में विशद् रूप से मिलता है। ग्रन्थ–गौरव के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है। [10] शल्य के पश्चात् सीधे राव योद्धा (जोधा) से प्रारम्भ किया गया है। [11] राव योद्धा एवं अजीतसिंह के बीच के शासकों का उल्लेख चतुर्थ सर्ग में किया गया है जो क्रमशः इस प्रकार हैं– राव योद्धा–रावसूजा–रावबाघा– गाङ्गेय (राव मालदो)– मोटा राजा उदयसिंह–सूरसिंह–गजसिंह–जसवन्तसिंह।

उपर्युक्त शासकों से सम्बन्धित जिन रोचक महत्वूपर्ण तथ्यों का समायोजन इस काव्य में किया है, वे निम्न प्रकार हैं :–

1. यहाँ राव योद्धा राठौड़ वंश के प्रवर्त्तक हुए [12] परन्तु इतिहास इसको नहीं मानता।
2. राव बाघा के कोई सन्तान न होने पर उन्होंने हरिद्वार में गङ्गातट पर जाकर गङ्गा स्तुति की। फलस्वरूप उन्हें गाङ्गेय नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। [13]
3. सुधीजनों को प्रचुर दान देने से गाङ्गेय का ही नाम मालदो (मालदेव) हुआ। [14]
4. महाराजा उदयसिंह का (कीर्त्ति, बल, कान्ति, वंश, श्री, एवं शरीर) सब कुछ महान् होने से मोटा राजा नाम प्रसिद्ध है। [15]
5. मोटा राजा उदंयसिंह के समय से ही इस कुल में 'महाराजा' पद धारण करने लगे। [16]

उक्त शासकों की उत्पत्ति एवं मुक्ति की तिथियों का उल्लेख इस कृति में नहीं किया गया है। कवि ने पाँचवाँ सर्ग पूरा जसवन्तसिंह के लिए लिखा है। जसवन्तसिंह से सम्बन्धित जिन प्रमुख तथ्यों को इसमें अनुस्यूत किया है, वे निम्न हैं–

1. जसवन्त सिंह के समय में मारवाड़ पर म्लेच्छों का अधिक दबाव था। म्लेच्छेतर जनता पर अधिक अत्याचार हो रहे थे। जसवन्तसिंह अन्त तक म्लेच्छों से लड़ते रहे।[17]
2. पुत्रजन्मोत्सव पर कारागृह से बन्दीजनों को मुक्त करने की प्रथा थी।[18]
3. ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी जसवन्तसिंह का इनके पिता गजसिंह ने अपने समय में ही राज्याभिषेक कर दिया था।[19]
4. महाराजा जसवन्तसिंह का विवाह चन्द्रवंशी धर्मपाल यादव की पुत्री से हुआ।[20] अजीतसिंह का जन्म इसी यादव रानी की कोख से हुआ।
5. जसवन्त सिंह की यादव रानी ने भादौं शुक्ला सप्तमी संवत् 1735 को गर्भधारण किया[21] तथा इसके लगभग चार माह पश्चात् जसवन्तसिंह का स्वर्गवास पौष शुक्ला दसमी संवत् 1735 को हो गया।[22]

छठे सर्ग में कवि ने अजीतसिंह की माता यादवरानी के जन्मान्तर का वर्णन कर उसे दिव्य पृष्ठभूमि प्रदान की है। काव्यात्मक रूप से तो यह ठीक है परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह वर्णन हज़म होने योग्य तो कतई नहीं।

6. अन्तिम (सात से दश तक) चार सर्गों में अजीतसिंह के जन्म से राज्याभिषेक तक की ही प्रमुख घटनाओं का चित्रण हुआ है। निष्कर्ष रूप में कतिधय निम्न तथ्य उभरकर सामने आते हैं–

अजीतसिंह सात माह के ही पैदा हो गये। अतः ज्येष्ठ पुत्र होने से राज्य के उत्तराधिकारी बने। इनका जन्म संवत् 1735 चैत्र कृष्णा चतुर्थी को हुआ।[24] औरङ्गजेब ने पत्र भेजकर राठौड़ों को दोनों पुत्रों सहित दिल्ली उपस्थित होने का आदेश दिया।[25] तदनुसार राठौड़ दिल्ली पहुँचे। औरङ्गजेब ने उन्हें बुलाने के लिए दूत भेजे। दूतों के उत्तेजनापूर्ण वचनों से भी राठौड़ सरदार यह सोचकर चुप रहे कि दोनों राजपुत्र व रानियाँ किंवा सम्पूर्ण कुल यहीं है और यवनाधिपति शत्रु प्रबल है। यहाँ भगवान् ही सहायक हैं।[26]

राठौड़ सरदार आकर औरङ्गजेब से मिले और बालक अजीतसिंह को विधिपूर्वक राज्य देने की प्रार्थना की[27] परन्तु औरङ्गजेब ने दोनों पुत्रों को तत्काल अपने समक्ष उपस्थित करने पर ही राज्य देने की बात कही।[28] बात बनती न देख राठौड़ सरदार अकालयुद्ध को टालकर वापस अपने दिल्लीस्थ निवास[29] पर आ गये एवं रात्रि को रानी के साथ मन्त्रणा की कि दोनों कुमारों एवं रानियों को यहाँ से स्वदेश ले जाया जाय।[30] इसी बीच औरङ्गजेब के दूत आकर राठौड़ों को कटुवचन कहने लगे। राठौड़ों ने राजपुत्रों को निकाल दिया था। परन्तु शाही

सैनिक इस विचार से मूढ हो गये कि राजपुत्रों एवं उनकी माताओं को राठौड़ों ने यहीं नगर में छिपा दिया है। [31] इधर राठौड़ों को भी क्रोध आ गया; अतएव दोनों ओर से युद्ध हुआ। स्वामी के बालक होने एवं समक्ष न होने पर भी क्षत्रियों का उत्साह प्रशंसनीय था। [32]

एतदनन्तर नवें सर्ग में अजीतसिंह के राणा जयसिंह की पुत्री से विवाह का उल्लेख है। [33] औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके दोनों पुत्रों में संघर्ष हुआ और शाह दिल्ली का शासक बना। [34] इसी अवसर पर अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। [35]

दिल्लीपति दक्षिण में नर्मदा के इलाके में गया हुआ था। तभी अजीतसिंह ने उसे कूर्मराज की भूमि लौटाने को कहा [36], परन्तु शाह ने उसे नहीं माना। कूर्मराज और अजीतसिंह दोनों ने राणा से सन्धि की तथा कूर्मराज जयसिंह का विवाह भी अपनी पुत्री से राणा ने कर दिया। दोनों जोधपुर आ गये। [37]

अजीतसिंह व कूर्मराज जयसिंह दोनों ने सांभर आकर यवनों को मार भगाया। [38] तब शाह ने सैयद हुसैन को सेना लेकर सांभर भेजा। [39] भयङ्कर युद्ध हुआ और इस युद्ध में सैयद हुसैन मारा गया। [40] सांभर पर कब्जा कर अजीतसिंह जोधपुर आ गया तथा जयसिंह जयपुर। [41] तदनन्तर अजीतसिंह ने अजमेर पर आक्रमण किया। [42] यवनों द्वारा एक माह में दुर्ग खाली कर देने एवं प्रभूत दण्डराशि [43] देने पर अजीतसिंह वहाँ से लौटा और लाख्यनगर [44] में अपना विवाह कर जोधपुर आ गया। यहाँ से नागौर जाकर इन्द्रसिंह के पुत्र को दण्ड दिया [45] तथा नागौर इन्द्रसिंह को सौंप, पुनः सांभर पहुंच कर वहीं जयसिंह को बुलाया तथा मन्त्रणा कर रामसीर नामक नगर को गये। [46] दोनों ने अजमेर के पास मिलकर दिल्लीपति से सन्धि कर ली। [47] वहां से दोनों चिन्तामुक्त होकर पुष्कर आये तथा बहुविध दान दिये। [48] पुष्कर से जयसिंह को विदा कर अजीतसिंह जोधपुर आ गये। जोधपुर आकर अजीतसिंह ने विधिवत् अपना राज्याभिषेक कराया। [49] प्रकृत कृति में राज्याभिषेक– पर्यन्त का ही वर्णन है।

उक्त काव्य अजीतसिंह की आज्ञा से लिखा गया है। कवि उसका आश्रित है; अतः वर्णन प्रशंसापरक अवश्य है किन्तु जिन ऐतिहासिक तथ्यों का समायोजन इसमें हुआ है उनमें से अधिकांश अन्य ऐतिहासिक ग्रथों से प्रमाणित हैं। संभवतः उन्हीं घटनाओं को महत्त्व दिया गया है जिनसे अजीतसिंह एवं उनके पूर्वजों का पराक्रम झलकता है।

प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में इसे महाकाव्य लिखा गया है परन्तु महाकाव्य के मात्र एक लक्षण–आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, को छोड़कर किसी का भी निर्वाह इसमें नहीं हुआ है। काव्यात्मक दृष्टि से इसका महत्व भले ही कम हो, परन्तु यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है इसमें कोई सन्देह नहीं– और संभवतः यही इसके प्रणेता दस्तावेज है इसमें कोई सन्देह नहीं– और संभवतः यही कवि का ध्येय भी रहा है। अजीतसिंह को आश्रय बनाकर लिखे गये एक अन्य महाकाव्य अजितोदय से यह रचना पूर्ववर्ती है।

सन्दर्भ :–

1. ध्वन्यालोक, उद्योत– 3, कारिका– 42–43 की वृत्ति,

2. अजीतसिंहो धरणीतलेस्मिन्, जातस्तदर्थं कुरु काव्यबन्धम्।।
   अजीतचरित्र महाकाव्य 1/16
3. अजीतचरित्र महाकाव्य, 1/8
4. महाभाष्य– अध्याय 1, पाद 1 आह्निक–1,
5. सूर्यान्वये योत्र मनुर्बभूव वैवस्वताख्य: क्षितिपार्थिवादि:।
   इक्ष्वाकुनामाजनि राजराजस्तदन्वये वंशकर: शरण्य:।।अजीतचरित्रमहाकाव्य – 1/11
6. तत: परं दुर्गसमीप एवं चकार राजा नगरं विचित्रम्।
   मरो: पुरं तद्विदितं त्रिलोक्यां, तं चाधुना मन्दपुरं वदन्ति।। वही 2/16
7. सरित्पञ्जाबदेशीया स्वच्छवारिमनोहरा।
   मण्डोवरपुरोपान्ते स्वच्छन्दं प्रवहत्पुरा।।
   चिह्नानि च प्रदृश्यन्ते तत्र तत्रस्थलेऽधुना।
   श्रीमदावडशक्त्याख्या सञ्जाता चारणान्वये।।
   तस्या: शापवशात्काले विक्रमस्य महीपते:।
   त्यक्त्वा मण्डोवरोपान्तं नदी दूरं विनिर्गता।।
   तेन मण्डोवरप्रान्तो बभूव जलवर्जित:।
   मरुस्थलीति संज्ञास्य देशस्यासीत्तत: परम्।।
   यशवन्तयशोभूषणम्: मुरारिदानकृत, आकृति–1, पद्य 3.4.5.6
8. वंशे तदीयेत्र मरुर्बभूव यन्नामतोयं मरुरेव जात:।
   मरोश्चरित्रं कथयामि किञ्चिद् वक्तुं न शक्यं सकलं कदाचित्।।अजीतचरित्रमहाकाव्य, 1/12
9. तदन्वये शल्य इति प्रसूतो राजाधिराजो मरुभूमिभर्त्ता।
   को वा विशेषो धरणीस्थ राज्ञां वाञ्छन्ति देवा अपि यत्सहायम्।।
   वही 3/1
10. तदन्वये भूपतयो बलिष्ठा वरानुसारेण तथैव जाता:।
    तेषां गुणा वर्षशतैरगण्या ज्ञात्वेति वा ग्रन्थबहुत्वभीत्या।
    मया पृथक्त्वेन न वर्णिताश्च सर्वे पुराणे विशदीकृतास्ते।। वही, 4/1,4
11. तदन्वये भूपतिरेष जातो देहाश्रित: क्षत्रियधर्म एव।
    रावादि योद्धा खलु नाम यस्य जानन्ति वित्तं भुवनत्रयेपि।। वही 4/5
12. राठौडवंशे खलु वंशकर्त्ता जात: पृथिव्यामयमेव राजा। वही 4/6
13. राज्ञ: सुतस्तस्य बभूव नात्र स प्रस्थितो दिग्विजयस्य दम्भात्।
    गङ्गां हरिद्वारगतामुपेत्य ससैनिकैस्तत्र तपश्चकार।। वही 4/9,17
14. गाङ्गेय नाम्न: प्रथित: सुतोभूत श्रीमालदोराव इतीह नाम्ना।
    द्रव्यप्रदानेन सुधीजनेभ्यो नाम स्वकीयं स चकार सार्थम्।। वही 4/19

15. कीर्त्या महत्त्या महता बलेन कान्त्या महत्त्या महता गृहेण।
श्रिया महत्त्या वपुषो महत्त्वाद्बभूव मोटा इति नाम तस्य।।
वही– 4/25

16. तदा प्रभृत्येव कुलं तदीयं प्राप्तं महाराजपदं प्रतीतम्।
रसातलस्थान्यकुलोद्भवानामप्राप्यमेतद्धरणीपतीनाम्।।
वही– 4/27

17. अनेन दुःखेन च पीडितास्मि म्लेच्छाधिपत्वेन विलज्जिताहम्।
म्लेच्छाधिपास्ते बहुपीडयन्ति प्रजां मदीयां परधर्मभेदात्।। वही, 5/6

18. स्वयं विंमुक्तः पित्तृणामृणाच्च कारागृहे स्थान्मुमुचे तथैव।
वही– 5/15

19. ज्येष्ठे सुते सत्यपि तस्य तातो मद्देशपोयं भवितेति मेने।
ज्येष्ठं तिरस्कृत्य पिता स्वकाले ग्रहप्रसादान्नृपतिं चकार।।
वही– 5/16,18

20. चक्रे विवाहं जसवन्तसिंहो राजाधिराजो ननु राजपुत्र्याः।
यथैव रामो जनकात्मजायाः सूर्यान्वयोयं विधुवंशजायाः।। वही, 5/25, एवं षष्ठ सर्ग पूर्ण

21. पञ्चत्रिंशाधिके तेन संवत्सप्तदशे शते।
भाद्रशुद्धस्य सप्तम्यां मृद्गृहीता तु योगिना ।।
तदैव सा यादवराजपुत्री गर्भं दधौ भर्तृमनोनुकूलम्।। वही, 5/50–51

22. राजा गर्भगतं सुतं तमचिरात् दृष्ट्वा परं योगिनं
म्लेच्छानां क्षयकारकं स्वसुखदं श्रेष्ठं प्रजापालकम्।
पञ्चत्रिंशयुतेब्द सप्तदशमे प्रान्ते शतेन प्लुते।
पौषस्यापरपक्षदिविगतदिने मुक्तिं गतो राजराट्।। वही, 5/53

23. अन्तर्हितो बालक इत्थमुक्त्वा तदा जनन्याः सुखमत्रजातम्।
स सप्तमे मासि तदैव जातो ग्रहानुकूलं समयं समीक्ष्य।।
वही, 7/5

24. पञ्चत्रिंशाधिके भूमौ संवत् सप्तदशे शते।
अजीतसिंहोजनितश्चैत्राघश्रुतिवासरे।। वही, 7/6

25. एतस्मिन्नन्तरे पत्रं दिल्लीपस्य समागतम्।
श्रुतं राज्ञः सुतौ जातौ तावानयत बाहुजाः।। वही, 7/24

26. दूतान् वक्रवचः परायणमुखान् संवीक्ष्यते बाहुजा
अन्योन्यं कथयाम्बभूवुरखिलैर्वाच्यं न वक्रं वचः।
तौ द्वौ राजसुतौ च राजमहिलाश्चात्रास्ति सर्वं कुलं
तद्राज्ञो यवनाधिपश्च सुतरां वैरी सहायो हरिः।।
वही, 7/32

27. तेष्वद्य वर्य्यो जसवन्तसिंहः स्वर्गं गतस्तस्य सुतौ च बालौ।
तावागतावद्य तयोश्च यत्नं कुर्वेधुना भूपति नीतियुक्त्या।।
वही– 7/29

28. समस्तानिति प्राह दिल्लीपतिस्तान् मया तत्सुतौ दृष्टिमार्गेवलोक्यौ।
ततोहं प्रदास्यामि देशं तदीयं विदायं च भिन्नं तथा बाहुजेभ्यः।।
वही– 8/2

29. अकाले रणं निन्दितं नीतिवद्भिर्विचार्येति सर्वे तदा प्राहुरेनम्।
स्वकीये निवेशे समागत्य सर्वे प्रणद्धं निजे राजगेहे युयुत्से।।
वही– 8/6

30. प्रेषणीयावतो देशे धात्रीभ्यां सहितावुभौ।
युद्धेस्मिन् गतिरस्माकं खड्गेनैव न संशयः।। वही– 8/9,11

31. सुतावद्य निष्कासितौ बाहुजैर्वा ततः पूर्वमेवागताः स्थापयित्वा।
स धात्र्यौ च गुप्तीकृतौ वा नगर्यां स इत्थं विचारेण मूढो बभूव।।
वही– 8/14

32. न पूर्वं न पश्चात्कदाचिन्न दृष्टस्तथा योद्धृणां यादृशः संयुगोयम्।
अहो क्षत्रिया बालभर्त्तार एते समक्षं विना तेत्र युद्ध्यन्ति पत्युः।।
वही– 8/33

33. जयसिंहाख्य राणेनोक्तमाहूय पुरोहितम्।।
राज्ञे चाजीतसिंहाय प्रदास्यामि सुतां मम।। वही– 9/2,8

34. गतो मृत्युमोरङ्गजेबस्तदानीं
सुतौ द्वौ मिथश्चक्रतुर्युद्धमेकः।
तयोर्मृत्युमाप्तः परः शाहशर्मा
बभूवाथ दिल्लीपतिश्छत्रधारी।। वही– 9/13

35. अगत्वा गृहाण्यागतो राजभूमौ नृपो जोधपुर्यां स्थितो निर्भयः सन्।
श्रुतं तेन दिल्लीश्वरेणेति चित्ते धृतं कोपि वीरो बलिष्ठो नृपोयम्।।
वही– 9/14–15

36. प्रयातोथ दिल्लीपतिर्दक्षिणस्यां गतो नर्मदातीरभूमौ तदानीम्।
नृपः प्राह दिल्लीपतिं कूर्मराजप्रधानाय भूमिस्तदीयार्पणीया।।
वही– 9/17

37. विवाहो जयसिंहस्य——— कारितः उभावपि ततः पश्चाज्जोधपुर्यां समागतौ
वही– 9/21

38. भूपालो जयसिंहोपि राज्ञः सार्द्धं सम्प्रस्थितः।।
उभावपि गतौ तत्र सम्भराख्ये पुरे तदा। वही– 9/23,24

39. महाम्लेच्छो हुसेनाख्यः सैदजात्या च विश्रुतः।
प्रेषितः पातिसाहेन बलेन महतागताः।। वही– 9/25

40. हुसेनो यदा पातितो वीरभूमौतदीयाश्च सम्बन्धिनः सर्व एव। वही– 9/32
41. ततः परं यथाकालं मन्त्रं कृत्वा परस्परम्।
 स्वे स्वे भवने ययत् राजानौ तावुभावपि।। वही– 9/36–27
42. ततोजीतसिंहो गुणानां प्रदाता गतश्चाजमेरप्रहारायर्णम्।
 भटैस्तत्रमूर्च्छाः प्रक्लृप्ता विभागात् स्वनालीमुखाच्चियक्षिपुः केपिगोलान्।।
 वही– 10/1
43. तदोचुः प्रगल्भा महाराजपार्श्वे ददात्येष दण्डं प्रभूतं गृहाण।
 स्थितिर्मासमात्रं ततो दुर्गमेनं त्वदीयान् प्रदत्त्वा गमिष्यत्यधीनः।। वही, 10/5
44. तथेति राजाह ततो गृहीत्वा यथेप्सितं द्रव्यमितो जगाम।
 तदैव लाख्ये नगरे विवाहं कृत्वा जगाम स्वगृहे नृपेन्द्रः।। वही– 10/7
45. कदा दैवविद्भिः प्रदत्ते मुहूर्त्ते वरे प्रस्थितोजीतसिंहो बलिष्ठः।
 गतो नागपुर्य्यामयोग्यं समीक्ष्येन्द्र पुत्रं च जग्राह दण्डं प्रचण्डम्।। वही– 10/8
46. प्रदत्त्वा पुरीमिन्द्रसिंहाय राजा पुनः सम्भराख्ये पुरे प्रस्थितोऽयम्।
 तदा कूर्मराजं समाहूय मन्त्रं प्रकृत्वा गतौ रामसीराख्यपुर्याम्।। वही– 10/10
47. वही – 10/12
48. यथा प्रसन्नौ भवतस्थैव
 कृत्वा स चिन्तारहितो जगाम।
 तावागतौ पुष्करतीर्थराजे
 दत्तानि दानानि बहूनि ताभ्याम्।। वही– 10/20
49. आहूय षड्कर्मस्तान् द्विजेन्द्रान्
 बन्दीजनान् बाहुजवंशजातान्।
 देशान्तरस्थान् धरणीसुपालान्
 राज्याभिषेकं नृपतिश्चकार।। वही– 10/28

गवेषक,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

अजितोदयमहाकाव्यम्

डॉ. भगवती लाल व्यास

श्रीजगज्जीवन भट्ट द्वारा विरचित अजितोदय महाकाव्य 32 सर्गों में निबद्ध एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। लगभग अर्द्धशताब्दी का काल वि. सं. 1730 से 1781 तक अर्थात् ई. सन् 1674 से 1724 तक का ऐतिहासिक काल समाविष्ट हो जाता है। मारवाड़ के इतिहास में भी इस काल का विशेष योगदान रहा है। जिन परिस्थितियों में महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम की मृत्यु हुई और औरंगजेब जैसा बादशाह जो मारवाड़ का राज्य हड़पना चाहता था, ऐसी स्थिति में ग्रंथकार ने उन सब स्थितियों का वर्णन किया जिसमें महाराजा जसवन्तसिंह जी प्रथम ने पठानों को पराजित किया और अपना वर्चस्व स्थापित किया। आखिर में औरंगजेब ने अपना ध्यान दक्षिण में लगाया, वहीं उसकी मृत्यु वि. सं. 1763 अर्थात् 1707 ई. में हो गई। ज्योंही औरंगजेब की मृत्यु हुई महाराजा अजीतसिंह अपने प्रभाव में आये और बहादुरशाह, जहांदारशाह, फर्रुखसियर, रफीउदजत, शाहजहाँ द्वितीय और मोहम्मद शाह तक छाये रहे।

कविवर भट्ट ने मंगलाचरण के पश्चात् जसवंतसिंह जी द्वारा पठानों को जहांब नदी के किनारे परास्त करने से प्रारम्भ किया है और उनके पुत्र अभयसिंह के विवाह तक का वर्णन करके कवि अपनी लेखनी को विश्राम दे देता है। इस प्रकार तीन पीढ़ी तक का इतिहास समाविष्ट कर लेना इस काव्य की विशेषता है। वस्तुतः पं. जगज्जीवन भट्ट महाराजा अजीतसिंह जी के समकालीन रहे हैं। अतः उन्होंने यथातथ्य वर्णन ही प्रस्तुत किया है। कहीं पर भी विषय या घटनाओं को अतिरंजित नहीं किया गया है। महाराजा अजीतसिंह जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत्, मास, तिथि आदि का वर्णन करने से भी इतिहास की प्रामाणिकता सिद्ध होती है–

देहे च वामनयनं किल वाम बाहु–
र्वामोरुरस्फुरदजस्त्र महिष्या:।
प्राप्ते प्रसूति समयेऽथ समीपमेव
वर्षेसु वह्नितुरगेन्दुमिते प्रसिद्धे।।

इस प्रकार अंकानां वामतोगति के आधार पर वि. सं. 1735 में अजीतसिंह जी का जन्म हुआ। आगे के श्लोकों में भी कवि ने पूरी जानकारी दी है–

प्राप्ते वसन्तसमये किल चैत्रमासे,
पक्षेऽसिते शुभतरे च तिथौ चतुर्थ्याम्।।
कुम्भं गते च खरधामनि सौम्यवारे,
स्वातौ पुनर्मकर नाम्नि शुभे च लग्ने।।
रामशिवसंज्ञसहितेषु गतांशकेषु।

सूर्योद यादनल वायुघटीष्वितासु।
तेजो निधे रजितसिंह नृपस्य जन्म
लाहौरनाम्निनगरे प्रबभूव मध्ये।।

महाराजा जसवन्तसिंहजी के दो रानियाँ थी। प्रथम रानी जादमन जिसे हिंगुलाज देवी ने स्वप्न में आकर कहा कि तुम्हारे पुत्र होगा और ठीक चैत्र वदि 4 सं. 1735 (19 फरवरी 1679) को लाहौर में अजीतसिंहजी का जन्म हुआ। उसके 48 मिनट बाद ही नरूकी रानी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम दलथम्भन रक्खा गया जिसकी अल्पकाल में ही मृत्यु हो गई।

अब राठौड़ सरदार अजीतसिंह जी की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो गये। जब उन्हें पता चला कि औरंगजेब षड्यंत्र करके राज्य हड़पना चाहता है तो राठौड़ सरदारों ने शौर्य, त्याग और स्वामिभक्ति का अपूर्व परिचय दिया। पहले औरंगजेब ने मारवाड़ जाने से रोका और बाद में अनुमति दे दी। उस समय केवल तीन सौ सरदारों को छोड़कर शेष राठौड़ों ने मारवाड़ के लिए प्रस्थान किया। इस दल में प्रमुख सरदार राठौड़ सूरजमल, संग्रामसिंह, उदयसिंह जैतावत, प्रतापसिंह उदावत, नरसिंहदास और ख्वाजा फरासत थे। मुगल सेना के घेरे में से अजीतसिंहजी को निकाल लिया। मुगलों को बहम हुआ और युद्ध छिड़ गया। पीछे से वीर दुर्गादास या दुर्गदास वीरतापूर्वक लड़ते रहे। जिसका सजीव चित्रण कवि ने सात छंदों (कुलिक) में किया है। बलून्दे के ठाकुर मोहकमसिंह की पत्नी बाघेली के भी एक कन्या थी। जिसकी आयु राजकुमार के बराबर थी। मोहकमसिंह की पत्नी ने अपनी कन्या को दिल्ली में छोड़ दिया और राजकुमार को लेकर जोधपुर आई। खीची मुकुन्ददास को राजकुमार अजीतसिंह जी की सुरक्षा के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया गया। करीब आठ वर्ष तक मुगलों के साथ राठौड़ों का युद्ध चलता रहा और बड़ी मुश्किल से अपनी सूझ–बूझ के साथ अजीतसिंह की रक्षा की। अनेक संघर्षों के पश्चात् उनको प्रकट किया।

उनके शासन काल में जोधपुर राज्य की बहुत उन्नति हुई। मंडोर आदि में महल, प्रासाद और वीरों की साल उनके द्वारा निर्मित है। इसका उल्लेख है। इस प्रकार अजितोदय महाकाव्य में महाराजा अजितसिंह जी का जीवन वृत सूक्ष्मतापूर्वक विस्तृत वर्णन किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है।

अजितोदय महाकाव्य ऐतिहसिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से भी उत्तम काव्य है। इसकी भाषा अत्यंत प्रांजल एवं व्याकरण–सम्मत है। इसमें भावानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। ऐतिहासिक सामग्री और आकलन देते देते यह काव्य के धरातल पर भी आ जाता है। मंगलाचरण में कवि कितना विनम्र होकर कहता है–

"शास्त्रज्ञो न च शाब्दिकोऽस्म्युत महासाहित्य विन्नाऽस्म्यहम्
नो जानाभ्यहमद्भुतार्थ विललत्काव्यस्य संयोजनम्।
देवी काचिदिहाऽब्ज योनि तनया पाणिस्थ वीणा कल–
क्वाणानन्द रतां निरीक्ष्य सुजडं ब्रूते तु मत्कण्ठगां"।

काव्य में नीतिपरक तथ्यों का निरूपण भी स्थान–स्थान पर हुआ है। भाषा की दृष्टि से भी काव्य में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का समावेश हुआ है। पुत्र के महत्व को बताते हुये कवि कितनी सरस पदावली का प्रयोग करता है! ऐसे श्लोक लालित्यपूर्ण एवं हृदयग्राही बन पड़े हैं–

"सूर्यम् विना दिनगणः सदनं विनाऽर्थ,
मृद्धिर्विना वितरणं सुवचो विना वै।
सद्गौरवं सरसिजं च विना सरोहि
सुश्री कलामपि न याति कुलं विपुत्रम्"।।

प्रकृति चित्रण में पं. भट्ट सिद्धहस्त हैं। तत्कालीन मण्डोर के प्रकृति–चित्रण को भी कवि भूले नहीं है। मंडोर के तत्कालीन प्रासाद, वन–उपवन और नागादड़ी जलाशय का भी सजीव चित्रण किया है–

" पुरोराजधान्यस्ति मण्डोवराख्याऽ–
विदूरे मिलन्मालती केतकीका।
सदा यां हि नागाद्रिवारिप्रवाहा
प्रियस्त्रीभिवालं रसाढ्यां करोति।।

अंततोगत्वा यह निर्विवाद सत्य है कि "अजितोदय महाकाव्यम् ऐतिहासिक" दृष्टि से अत्यन्त प्रामाणिक एवं काव्य की दृष्टि से अत्यंत लालित्यपूर्ण और अद्वितीय ग्रंथ है।

सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

"भीम प्रबन्ध–महाकाव्य"
के
नायक, कवि
काव्य और उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ

पं. द्वारकादत्त भट्ट

यह एक अप्रकाशित महाकाव्य है। इसकी प्रतियाँ भी अप्राप्य हैं। इसकी एक प्रति 'महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश' में है, एक प्रतिलिपि मेहता पुस्तकालय, बीकानेर में है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में शायद हों लेकिन वे सारी अपूर्ण हैं। इसकी मूल प्रति मेरे पास है। इसका कारण यह है कि मेरी माता के ननिहाल के पूर्वज ही इस काव्य के रचयिता हैं। मेरे पूर्वज भट्ट जगजीवनदासजी अजितोदय, अभयोदय के रचयिता रहे हैं। चूंकि इस महाकाव्य के लेखक पं. हरिवंश भट्ट के वंशज नहीं रहे, इसलिए इस महाकाव्य की मूल प्रति मेरे घरेलू पुस्तकालय में पहुँची।

अतः इसका संक्षिप्त परिचय आप विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत किया जाता है।

नायक :– इस महाकाव्य के प्रधान नायक, जोधपुर नरेश महाराजा अजीतसिंह के पौत्र म. विजयसिंह के दत्तक युवराज भीमसिंह जी हैं। जोधपुर राज्य के सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में म.अजीतसिंह जी छठे राजा थे। महाराजा विजयसिंह जी के ज्येष्ठ राजकुमार फतेहसिंहजी का छोटी उम्र में स्वर्गवास हो गया था। इनके एक मात्र संतान राजकुमारी अभयकंवर थी, इसलिए महाराजा ने द्वितीय राजकुमार स्वर्गवासी भौमसिंह जी के पुत्र भीमसिंहजी युवराज बने।

इन्हें महाराजा का और अन्तःपुर की राजनीति के विरोध का सामना करना पड़ा, पर वंश परम्परा के अनुसार इनका ही अधिकार था। अतः इन्हें ही युवराज पद मिला।

जन्म :– इनका जन्म राजकुमार भौमसिंहजी की रानी चौहानजी के उदर से सं. 1823 आषाढ़ सुदी 12 शनिवार को हुआ था। सबसे पहले भीमसिंहजी इस काव्य में युवराज के रूप में सामने आते हैं। जब अन्तःपुर का विरोध बढ़ता ही गया तो वे चिन्तित नहीं हुए पर डटकर विरोध का सामना किया।

एक दिन जब म. विजयसिंहजी राजधानी से बाहर थे, इन्होंने जबरन शहर और किले पर अधिकार कर लिया। बाद में सामन्तों और अधिकारियों के समझाने पर मान गये। फिर भी राजनीति से उत्पन्न विरोध ने पीछा नहीं छोड़ा तो अपने अधिकार के लिए महाराजा से युद्ध भी किया।

युद्धं त्वभूत् झामरपार्श्वभागे ।
मनस्विनः हर्षकरं महच्च ।
तत्कातराणां भयहेतुरुग्रम् ।
रणाद् ययौ जालमसिंह एव ।। 1/71 ।।

स्नेहशील भ्राता : म. भीमसिंहजी स्नेहशील भाई के रूप में भी काव्य में दिखाई देते हैं। म.कु. फतेहसिंहजी की पुत्री, जो इनके ताऊजी की लड़की थी उसका विवाह जयपुर नरेश प्रतापसिंहजी के साथ धूमधाम से किया और खूब दहेज दिया।

भ्राता ददौ भीम नराधिपोऽसौ स्वस्त्रे गजाश्वादिक पारिबर्हम्।
प्रताप भूपाय फलं च लेभे। दत्वा स्वसारं बहुकांचनं च ।। 3/33 ।।

अच्छे शासक : इस काव्य में म. भीमसिंहजी अच्छे शासक के रूप में बताये गये हैं। राजा बनतें ही इन्होंने राज्य के किसी भी कर्मचारी को सेवा से अलग नहीं किया। अपने विश्वासी लोगों को उनके साथ जोड़ दिया। इनके राज्य में साम, दान, भेद, दण्ड तथा राज्यों के सातों अंगों के अनुभवी लोगों को नियुक्त किया। न्याय विभाग में भी चरित्रवान व्यक्तियों को नियुक्त किया। इसी काव्य के दूसरे संग्रह में इसका विशद वर्णन है।

धार्मिक कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए जो निर्णय लिय जाते वे 24–24 सदस्यों की दो परिषदों द्वारा लिए जाते थे। वे परिषदें बड़ी चौबीसी और छोटी चौबीसी कहलाती थीं।

एते महद्भूपशिरोमणीनाम् । पुण्ये विभागे च परम्परातः ।।
महच्चतुर्विंशति मध्य संस्था । लघ्वी चर्तुर्विंशतिका तथैव ।। 2/45 ।।

राजनीतिज्ञ : त्यौहारों पर, उत्सवों पर, अपने बन्धु राजा, बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम आदि, संबंधी राज्यों, जयपुर, उदयपुर आदि सरहदी राजा–सिन्ध के नबाबों आदि के राज पुत्रों, उनके रिश्तेदारों को आमंत्रित करते थे। उनके परिजनों की अपनी सेवा में रखते और उनकी चेष्टाओं पर नजर रखते थे।

एको महान् सिन्धुपतिस्तथैव ।अब्दुलवलीखाँ यवनाधिनाथः ।।
तस्यात्मजो वैश्रवण प्रभावः । नाम्नास्ति वै ताजमुहम्मदोऽसौ ।।
यथा महेन्द्रस्य रथाग्रतौ वे । द्वौ यक्षराजौ हि महाबलिष्ठौ ।।
तथा स्थाग्रे यवनाधिनाथो ।धरा महेन्द्रस्य महाबलस्य ।।6/51 ।।

इस तरह इन आमंत्रित लोगों के साथ सवारी निकालते और उनके क्रिया–कलापों को देखते।

विद्या प्रेम : अपने पूर्वजों से विरासत में मिला विद्या प्रेम भी इनमें कम न था। इस वंश में म. मालदेव, म.जसवंतसिंह, म.मानसिंह स्वयं कवि थे। इस वंश की रानियाँ भी कविता करती

थीं। अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए म.म. गौरीशंकर हीराचंद ओझा का जोधपुर राज्य का इतिहास दूसरा खण्ड, पृ–874 देखें। म. भीमसिंह ने भी पं. सतीदास भट्ट आदि कवियों को सम्मानित किया था।

कवीश्वराणामथ शाब्दिकानां, साहित्यकानां च गुणेष्वभिज्ञः ।।
भूमौ हि चाधोभुवने च नाके । न त्वत् समो नाप्यधिको बभूव ।।4/34।।

इसके सिवाय इस महाकाव्य की रचना उनकी ही आज्ञा से हुई यह बात उनके संस्कृत के प्रति प्रगाढ़ प्रेम को प्रकट करती है।

हृदय के उदार : म. भीमसिंहजी हृदय के उदार थे। इसी महाकाव्य में बताया है

अयं दरिद्रो भविता विधात्रा लिपिर्ललाटे लिखिता जनस्य।
मृषा चकाराल्पितकल्पवृक्ष : सम्मार्ज्य दारिद्र्यमसौ महीपः ।।4/31 ।।

इस तरह म. भीमसिंहजी एक निर्भीक, योग्य शासक, विद्या प्रेमी और उदार सिद्ध होते हैं।

कवि पं. हरिवंश भट्ट

इस महाकाव्य के कवि पं. हरिवंश भट्ट थे। उन्होंने काव्य के अन्त में अपना परिचय देते हुए लिखा है :–

पौराणिकोऽजीतनराधिपत्य भट्टः शिवस्तस्य सुतौ हि लालः।
तदात्मजो वै हरिवंशशर्मा । नृपाज्ञया काव्यमिदंचकार ।।

इसी महाकाव्य के दूसरे सर्ग में और भी विस्तृत रूप से कवि के वंश का वर्णन आया है जो इस तरह से है :–

राव जोधाजी के सोलहवें पुत्र ने उज्जैन में अपना नया राज्य स्थापित किया था। म. जसवंतसिंह जी प्रथम के समय वहाँ पृथ्वीराज भारमलोत नाम के राठौड़ राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में भट्ट हरिवंश के पूर्वज गौतमजी कर विभाग के अधिकारी थे। उनके दो पुत्र हुए – 1. गौवर्धन 2. गोविन्ददास। गोवर्धन जी के परशुराम नामक पुत्र हुए जो नबाब शेख मुहम्मद गाजी बलवा फाजिल के साथ शाही नौकरी में थे। पर गोविन्ददासजी पृथ्वीराजजी के साथ रहे। जब जसवंतसिंहजी ने बलख जाते हुए पृथ्वीराज जी को साथ लिया तब गोविन्ददासजी भी साथ थे । उसी समय गोविन्ददासजी का परिचय जोधपुर राजवंश से हुआ। इसी क्रम में इनके भाई के पोते भट्ट शिवजी म.अजीतसिंहजी की सेवा में आये।

जब म. अजीतसिंहजी का जोधपुर पर अधिकार हुआ तब पं. हरिवंश भट्ट के दादा भट्ट शिवजी को जोधपुर में महाराजा ने सं. 1764 में एक घर इनायत किया तथा पौराणिक भट्ट को पद देकर आजीविका दी। भट्ट शिवजी के लाल जी हुए और लालजी के पुत्र हरिवंश जी हुए।

भट्ट हरिवंश जी का जन्म सं. 1793 में हुआ था। सं. 1820 से म.विजयसिंहजी के दरबार में आने–जाने लगे। कुछ समय बाद इनको सोजत की पोतेदारी मिली। फिर इन्होंने देसूरी और उमरकोट की पोतेदारी भी की। वृद्धावस्था में ये दरबार में ही रहे। इन्होंने म. भीमसिंहजी की आज्ञा से इस महाकाव्य की रचना की।

पं. हरिवंश भट्ट कवि के रूप में सामने आते हैं। संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था साथ में शालिहोत्र–हाथी, घोड़े, ऊँट, गाय आदि पशुओं के सामुद्रिक चिह्नों और अवस्थाओं का भी पूर्ण ज्ञान था। शासन के कार्य–कलापों के भी ज्ञाता थे अन्तःपुर की राजनीति से इन्हें घृणा थी। एक स्थान पर इन्होंने लिखा है :–

नारीति शक्तिर्जगदीश्वरस्य तत् सम्मुखं स्थातुमलं न कोऽपि।
ताक्ष्र्यध्वजाः वा वृषभध्वजाः वा वक्रभ्रुवा ते हिमवद् भवन्ति ।।

भट्ट पं. हरिवंशजी का निधन सं. 1865 मार्गशीर्ष वदि 7 को हुआ था।

काव्य और उसके ऐतिहासिक संदर्भ :

एक काव्य की दृष्टि से भीमप्रबन्धमहाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है। इस काव्य का कलेवर तो उतना ही है जितना अन्य महाकाव्यों का है इसमें भी बीस सर्ग हैं। एक धीर, वीर, उदात्त नायक भी हैं। कथावस्तु वैसी ही है। भाषा भी प्रसादगुण सम्पन्न है। अलंकारों की छटा भी मोहक है। दूसरे काव्यों से इसमें भिन्नता यह है कि पूरे काव्य में एक ही छंद है जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है।

वाणी प्रसन्ना स्वयमादिदेश वृत्तेन गन्तास्युपजातिकेन ।।
तेनैव वृत्तेन करोमि काव्यम् स्यात् श्लाघनीयं कविपुंगवैश्च ।। 1/3 ।।

यों पूरे काव्य में तीन श्लोक अलग छंदों के हैं और पूरा काव्य उपजाति में ही है। रस की दृष्टि से, शान्त, विप्रलंभ, हास्य के सिवाय सभी रस हैं। म.भीमसिंह जी के विवाह के समय कन्या का पाणिग्रहण करते हैं उस समय रोमांचित काँपते हाथ का वर्णन, बसंत क्रीड़ाओं का वर्णन, शृंगार के साक्षी हैं। झामर युद्ध का वर्णन–वीर, रौद्र, बीभत्स के स्थल हैं। शब्दालंकार, अर्थालंकार के प्रयोग भी दर्शनीय हैं। बारात के प्रस्थान का वर्णन :–

"गजावलीभिश्च हयावलीभिः रथावलीभिः शिविकावलीभिः।
विवाहकाले च नराधिपस्य मार्गे चलत्पूरिव संचकाशे ।।3/6 ।।

रथ से उतरते हुए महाराज भीमसिंह का वर्णन–

उदेति सूर्यो ह्युदयाद्रिमध्यात् स्तम्भात्यथा वायुदितो नृसिंहः ।।
तथा रथाद्वै नरदेवसिंहः प्रतापवह्नि–ज्वलितारिवर्गः ।।

इस महाकाव्य की रचना प्रसादगुण सम्पन्न है। इस महाकाव्य में छः ॠतुओं के वर्णन

नहीं है। छंदों की विविधता नहीं है। चक्रबंध भी नहीं है। इस महाकाव्य में वह है जो दूसरों में नहीं है।

यह महाकाव्य इतिहास का एक दस्तावेज है। म. भीमसिंह जी के समय बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, ईडर, रतलाम, सीतामऊ, किशनगढ़, और दिल्ली में कौन–कौन से शासक थे।

यह भी है कि जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह जी ने अश्वमेध यज्ञ किया उसमें ऋत्विजों को, आचार्य को क्या दक्षिणा दी। जब जयपुर नरेश अवभृथ स्नान के बाद अपने श्वसुराल जोधपुर आये, यहाँ की ब्रह्मपुरी में प्रत्येक घर के हिसाब से एक–एक स्वर्ण मुद्रा भेंट की।

सवाईजैसिंहनराधिनाथो यदागतोऽसौ श्वसुरालये च ।।
गृहे गृहे हेममयीं च मुद्राम् प्रीत्या ददौ वै द्विजतोषणार्थः ।।2/39।।

महाराजा अजीतसिंह जी के समय जयपुर नरेश पर बादशाह कुपित हुए और वे दिल्ली से जोधपुर आये। उन्हें सूरसागर के महलों में सुरक्षित रखा। बाद में बादशाह को प्रसन्न कर दिल्ली भेजा देखिए सर्ग 1, श्लोक 23 में।

महाराजा भीमसिंहजी की सेना भी अद्भुत तरह की थी। हाथी, घोड़े के सवार, ऊँट के सवार, बैल गाडियाँ और भैंसा गाडियों पर लदी हुई तोपें और सजे हुए तोपचियों के सिवाय पैदल फौज भी थी। इस फौज में वैष्णव तिलक लगा के साधुओं की फौज और रामानुजी सम्प्रदाय के ललाट छाती और भुजाओं पर तिलक लगाये जिनके दागे हुए शंख–चक्र धारण किये साधुओं की फौज थी, जो लड़ने में निपुण थी कहते हैं विष्णु भगवान के शंख चक्रधारी जय, विजय, नन्द, सुनन्द आदि सोलह ही पार्षद हैं पर म. भीमसिंह के तो असंख्य पार्षद थे। यह एक इतिहास की एक अनोखी घटना है। यह काव्य यह भी बताता है कि इनकी फौज में किलकिला, सम्भुबाण, बागिन, नागिन, मगवा, मीरबक्क्ष, रहसकला, गंजक आदि अनेक तोपें थीं।

यह महाकाव्य यह भी बताता है कि प्राचीनकाल में राजा लोग प्रजा के साथ फाग खेलते थे। पूरे लवाजमे के साथ हाथी पर सवार होकर अबीर, गुलाल, जगाल पेवड़ी के चूर्ण से भरी हुई छोटी, बड़ी,कागज की गेंदे लेकर प्रजा के साथ होली खेलते थे । प्रजा को भी गेंदे फेंकने का अधिकार था। जोधपुर की सारी सड़कें लाल–पीली हो जाती थीं।

इस काव्य से यह भी मालूम होता है कि चन्दन, केशर, कस्तूरी का उबटन लगाने वाले से लेकर जूते पहनाने वाले लोगों के कितने दल थे। इससे यह भी मालूम होता है कि अन्तःपुर के पहरेदारों से लेकर दिल्ली के बादशाह तक की गुप्तचरी करने वाले कौन–कौन से लोग थे।

इस काव्य से यह भी मालूम होगा कि तम्बूघर कितने प्रकार के थे। गर्मी, चौमासा, सर्दी में रहने लायक सुख–निवास, लक्ष्मी निवास, दलबादल, दुमंजिले, चमड़े के, सूत के, रेशमी और मोतियों की बंदनमालाएं लगे हुए सोने के दो शिखर वाले, चार शिखर वाले, सोने–चाँदी के पत्ते चढ़े हुए, लकड़ी के थम्भों वाले कैसे–कैसे तम्बूघर थे। यह काव्य तम्बू बाँधने का तरीका भी बताता है।

यह काव्य पुराने भूगोल के नक्शे भी प्रकट करता है जैसे मण्डोर में गौ–मुख बाग, चम्पा का बाग, रायणों का बाग, ढेरों की बावड़ी, दाड़िमों का बाग, आमों का बाग, नींबू की बाड़ियाँ कहाँ–कहाँ थीं। अब चाहे वहां मैदान बन गए हों, बस्ती के मकान, स्कूल, गौशाला, सराय, बन गईं हों।

यह काव्य यह भी बताता है कि राज्य में कौन–कौन से चौधरी, मिर्धा, दरजी, वैद्य, मोगलियों वाले कौन–कौन थे।

इस तरह मेरी दृष्टि में यह काव्य इतिहास सम्बन्धी अनेक सूचनाएँ देने में समर्थ है। संक्षिप्त रूप से हम यह कह सकते हैं कि यह केवल महाकाव्य ही नहीं, परन्तु एक इतिहास का इतिहास है।

सेणा सदन
चांदपोल गेट के बाहर
जोधपुर।

यशवन्त यशोभूषण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित

मारवाड़ में संस्कृत ग्रन्थों का लेखन तो प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु मध्यकाल में यहां सामान्य ग्रन्थों के अलावा ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थों के लेखन की ओर विशेष स्थान दिया गया।[1] इस श्रेणी के ग्रन्थों में अजीतचरित्र, अजितोदय महाकाव्य और अभयोदय आदि का नाम गिनाया जा सकता है।[2] यहां ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थ लिखने की परम्परा आधुनिक काल में भी जारी रही है। कविराज मुरारिदान ने यशवन्त यशोभूषण और पं. लाल चन्द्र पुरोहित ने जुबली प्रमोदिका आदि ग्रन्थ लिखकर प्राचीन परम्परा को बनाये रखा है।

कविराज मुरारिदान मारवाड़ राज्य के महाराजा जसवन्त सिंह द्वितीय के समय विख्यात कवि हुए। उनका जन्म 1832 ई में मारवाड़ के पचपदरा परगना के ग्राम भाणियावास में हुआ। इनके पिता कविराज भारतदान उच्चकोटि के विद्वान् थे। मुरारिदान ने कविता लिखना 1883 ई. में प्रारम्भ किया।[3] उन्होंने 852 पृष्ठों का जसवन्त जसोभूषण ग्रन्थ लिखा। जिसका लघु रूप जसवन्त भूषण (351 पृष्ठ) ग्रन्थ हैं। यह ब्रज मिश्रित हिन्दी, राजस्थानी भाषा में लिखा गया ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के लेखन से प्रसन्न होकर महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) ने कविराज मुरारिदान को लाख पसाव में पांच हजार रुपये वार्षिक आय की जागीर पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर सम्मानित किया।[4] मुरारिदान ने जसवन्त जसो भूषण ग्रन्थ को संस्कृत भाषा में वि.सं. 1958 में मारवाड़ स्टेट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया। करीब 670 पृष्ठों के इस विराट् ग्रन्थ के संशोधन का कार्य दाधीच आसोपा पं. बलदेव के पुत्र पं. रामकर्ण आसोपा ने क़िया।

अभी तक विद्वान यशवन्त यशोभूषण को एक साहित्यिक कृति ही मानते रहे हैं किन्तु इसके ऐतिहासिक पक्ष पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया हैं। यशवन्त यशोभूषण में विभिन्न स्थलों पर मारवाड़ के इतिहास से सम्बन्धित सारगर्भित सामग्री विद्यमान है।

अब हम यशवन्त यशोभूषण के स्वरूप पर विचार करते हैं। मुरारिदान ने 'मरु देश राज्यपरिवर्तनम्' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा हैं कि पंजाब की कोई नदी मण्डोर क्षेत्र में होकर बहती थी, किन्तु विक्रमादित्य के समय चारणों की कुल देवी के शाप के कारण यह क्षेत्र जल विहीन हो गया और मरुस्थल कहलाया।[5]

ओझा, गहलोत और व्यास आदि विद्वान् इस मान्यता से सहमत नहीं है। उनका विचार है कि मारवाड़ के मरुस्थल बनने का कारण आवड़ देवी का शाप नहीं अपितु समुद्र के जल का दूर हो जाना है।[6] रेउ ने लिखा है कि सतलज की एक धारा मण्डोर क्षेत्र से होकर बहती थी किन्तु उस क्षेत्र की पृथ्वी ऊंची हो जाने के कारण यह भू–भाग मरुस्थल बन गया।[7]

मुरारिदान के अनुसार मण्डोर पर कई राजाओं ने राज्य किया। किन्तु लेखक ने उन राजवंशो के नाम नहीं गिनाये हैं। उन्होंने लिखा है कि मण्डोर पर नागवंशीय राजाओं ने भी राज्य किया है। इसी कारण यहां का पर्वत नागाद्रि नाम से विख्यात हुआ।[8] तदनन्तर यहां परमारों का राज्य रहा। परमार वंश में धरणीवराह नाम का राजा था उसने अर्बुद आदि नव कोटों को अपने भाइयों में बांट दिया।[9] किन्तु उनके विलासी होने से यह राज्य बिखर गया और नवकोटि मारवाड़ कहलाया।[10] डॉ. मांगीलाल व्यास ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि धरणीवराह न तो चक्रवर्ती शासक था और न ही महान् योद्धा। हस्तिकुण्डी लेख (वि.सं. 1053) के अनुसार सोलंकी मूलराज ने जब धरणीवराह पर आक्रमण किया, उस समय धरणीवराह ने राष्ट्रकूट धवल के यहां शरण ली थी। यदि वह प्रतापी सम्राट् होता तो मूलराज के आक्रमण के समय यह दशा नहीं होती।[11] इस प्रकार यहां कविराज मुरारिदान द्वारा प्रदत्त सूचना अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होती है।

यशवन्त यशोभूषण के अनुसार मण्डोर में परमारों के बाद नाहड़राव परिहार नामक राजा हुआ जिसने पुष्कर तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया। उसका चित्तौड़ के राजा से युद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद वहां के शासक राणा की उपाधि धारण करने लगे। बाद में मण्डोर पर मुल्तान के मुस्लिम शासकों का अधिकार हो गया। नाहड़राव परिहार के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ कहना खतरे से खाली नहीं होगा।[12] मुरारिदान ने इसके पश्चात् 1500 वि.सं. के मध्य राव चूण्डा द्वारा मण्डोर दुर्ग पर अधिकार करने की घटना का उल्लेख किया है। इसके तत्काल बाद के विवरण में उन्होंने लिखा है कि राठौड़ वंश में जसवन्तसिंह हुए जिन्होंने जोधपुर से पूर्व दिशा में 21 कोश की दूरी पर जसवन्त सागर बनवाया जो 32 गज गहरा तथा 15 कोस की परिधि में फैला हुआ है। इसे बनवाने में 13 लाख रुपये खर्च हुए।[13] यहां जसवन्त सागर के निर्माण के सम्बन्ध में उद्धृत जानकारी महत्त्वपूर्ण है।

यशवन्त यशोभूषण की प्रथम आकृति में ही "तत्रादौ राजवंशवर्णनम्" शीर्षक के अन्तर्गत मारवाड़ के राजनीतिक इतिहास पर और अधिक प्रकाश डाला गया है। मुरारिदान के अनुसार रघुवंश के राम के उत्तराधिकारियों के हाथ से जब अवध निकल गया तो देवी के श्येन (बाज) का रूप धारण कर राष्ट्र रचना की जो पृथ्वी पर महाराष्ट्र और वहां के निवासी राष्ट्रकुल कहलाये।[14] ओझा इस मत से सहमत नहीं है।[15] यशवन्तयशोभूषण के विवरण के अनुसार मरुदेश में एक सूनी (एकान्त में स्थित) नगरी हस्तिकुण्डी से राष्ट्रकूटों के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। मारवाड़ के शासकों (मरुधराधिप) के पूर्वज जो राष्ट्रवर उपाधि धारण करते थे, वे यहीं से दक्षिण की ओर गये तथा कर्णाट, कोंकण तथा उसकी राजधानी कल्याणी को जीत कर फिर वहीं बस गये।[16] उन्होंने वहां कई वर्षों तक राज्य किया तथा याचकों को दान दिये जिसकी पुष्टि ख्यातों तथा ताम्रपत्रों से होती है। हमारा विचार है कि हस्तिकुण्डी से राष्ट्रकूटों के अभिलेख मिले हैं। यह तथ्य तो ठीक है किन्तु राष्ट्रकूट वहां से दक्षिण की ओर गये इस मत की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती है। कविराज मुरारिदान ने राष्ट्रकूटों की जो वंशावली दी है उसमें यशोविग्रह महिचन्द्र एवं श्रीचन्द्र का उल्लेख किया है। उन्होंने इनके बाद मदनपाल,

गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र और जयचन्द्र का शासन करना स्वीकार किया है।[17] जयचन्द्र ने कलियुग में राजसूय यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों को दान देकर पृथ्वी पर प्रसिद्धि प्राप्त की। जयचन्द्र ने आठ यवन राजाओं को पकड़ कर छोड़ दिया। जब वि.सं. 1251 में शहाबुद्दीन गोरी उससे युद्ध करने आया तो उसने उसका मुकाबला किया तथा सिर कट जाने पर भी वह तीर चलाता रहा इसलिए कबन्ध कहलाया[18] यहां मुरारिदान ने राष्ट्रकूटों तथा गाहड़वालों को मिला दिया है[19] किन्तु बीकानेर नरेश रायसिंह के अभिलेख में प्रदत्त वंशावली, जैन ग्रन्थ पुरातन प्रबन्ध, कल्पसूत्र की संवत् 1546 की प्रशस्ति (मोहनलाल ज्ञान भण्डार, सूर्यपुर) आदि में जयचन्द को राष्ट्रकूट कहा गया है।[20] इसलिये यहां पर कविराज मुरारिदान ने रेउजी के मत को स्वीकार कर किया है।[21]

जयचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज उनके वंशजों के हाथ से निकल गया और परिवार के पास केवल गोविन्दगढ़ रह गया, जो शमसाबाद कहलाता है। इसके बाद मुरारिदान ने मारवाड़ के इतिहास से सम्बन्धित कुछ सामान्य घटनाओं का उल्लेख किया है, जैसे– जयचन्द्रं का पुत्र वरदायीसेन हुआ।[22] उसका पुत्र सेतुराम बड़ा नीतिज्ञ था। उसका उत्तराधिकारी सीहा सिंह के समान पराक्रम वाला था। उसने द्वारिका यात्रा के साथ दिग्विजय की। उसके पश्चात् आस्थान हुआ जो पाली गया और गोहिलों से मरुस्थल को जीता। उसने खेड़पुर को अपनी राजधानी बनाया तथा यवनों से संघर्ष करते हुए पाली में वीरगति को प्राप्त हुआ। ये सभी घटनाएं ऐतिहासिक तथा काल क्रमानुसार दी गई हैं। आस्थान जी के बाद धूहड़ हुए जिन्होंने कन्नौज जाकर यवनों को पराजित किया। उस महाबलशाली की प्रतिहारों से युद्ध करते हुए मण्डोर में मृत्यु हुई।[23] रेउजी का मत है कि धूहड़ जी पड़िहारों से युद्ध करते हुए थोभ तथा तरसीगड़ी नामक गांवों के मध्य वीरगति को प्राप्त हुए[24] जबकि गहलोत ने चौहानों से युद्ध करते हुए वि.सं. 1366 में उनका मारा जाना लिखा है[25] धूहड़ जी के बाद राठौड़ रायपाल हुए जिनकी मृत्यु अकाल से प्रजा की रक्षा करते हुए हुई। उनके बाद कनकपाल (कन्हपाल) तथा जालणसी दोनों यवनों से लडते हुए दिवंगत हुए। उनके बाद राव छाड़ा ने चौहानों (जालौर) से लड़ते हुए वीर गति प्राप्त की।[26] उनके उत्तराधिकारी राव तीड़ा ने सिवाना पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चौहान सामलसोम की सहायता की। राव तीड़ा मुसलमानों से युद्ध करते हुए वहीं पर मारा गया। तीड़ा का उत्तराधिकारी सलखा भी यवनों से संघर्ष करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ।[27] सलखा के बाद नीरम उसका उत्तराधिकारी बना वह दल्ला लोहिया (जोहियावाटी) को शरण में गया किन्तु उनसे मनमुटाव होने पर उसका झगड़ा हो गया और वह उनसे लड़ते हुए (वि.सं. 1440) मारा गया।[28] उन्हीं दिनों इन्दा जाति के क्षत्रियों ने यवनों को पराजित कर मण्डोर पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने वीरम के पुत्र चूण्डा से अपनी पुत्री का विवाह कर उसे मण्डोर दुर्ग दहेज में दे दिया।[29] चूण्डा ने बहुत सा भूभाग जीतकर राठौड़ राज्य का विस्तार किया। इसके बाद वह नागौर चला गया जहां मुल्तान की सेना से संघर्ष करते हुए देवलोक की ओर प्रस्थान किया। कविराज मुरारिदान ने चूण्डा के बाद राव कान्हा तथा सत्ताजी का उल्लेख न करके सीधे राव रणमल्ल

की चर्चा की है।[30] उन्होंने अपने भानजे हेतु मालवा के शासक से युद्ध कियां। तत्पश्चात् मोकलजी (भानजा) के हत्यारों चाचा व मेरा का वध कर दिया। मोकल के बाद कुम्भा मेवाड़ के शासक बने तो रणमल्ल उन्हें शासन कार्य में सहयोग देने लगे और इसी कारण उनका अन्त हुआ। रणमल्ल का पुत्र जोधा हुआ। जिसने अपने नाम से नगर बसाया और दुर्ग का निर्माण करवाया।[31] जोधा ने गया की यात्रा की। उनके पुत्र सूजा ने यवनों से दो बार युद्ध किया।[32] यहां पर राव सातल जी का उल्लेख नहीं मिलता जिसका कारण अज्ञात हैं। सूजाजी के बाद राव गांगा शासक बने उन्होंने गुर्जराधीश से ईडर जीतकर अपने भाइयों को दिया।[33] उनके बाद राव मालदेव हुए जिनके पास असंख्य घोड़े तथा विशाल भूभाग था और जिसे मापना कठिन था। मालदेव के बाद रावचन्द्रसेन ने शासन किया किन्तु मुरारिदान उनकी उपलब्धियों के सम्बन्ध में मौन हैं। उन्होंने मालदेव के पश्चात् सीधे राजा उदयसिंह तथा सूरसिंह की चर्चा की है जिन्होंने दिल्लीश्वर की सेवा कर राजपद प्राप्त किया। उनके बाद गजसिंह हुए जिन्होंने 52 युद्ध जीते और दिल्लीश्वर से दलथम्भन उपाधि प्राप्त की। उन्होंने कवियों का सम्मान कर उन्हें उपकृत किया। गजसिंह के बाद जसवंतसिंह (प्रथम) मारवाड़ के शासक बने।[34] जब तक वे जीवित रहे मन्दिर सुरक्षित रहे और औरंगजेब उन्हें गिराने में सफल न हो सका। उन्होंने काबुल को संचार योग्य बनाया। उनका उत्तराधिकारी अजीतसिंह बना जो दिल्ली के सिंहासन पर शासकों को बैठाने और हटाने की योग्यता रखता था। दिल्लीश्वर ने उन्हें राजराजेश्वर की उपाधि से सम्मानित किया। उन्होंने जनता को जजिया कर से मुक्त करवाया।[35] कविराज मुरारिदान ने अजीतसिंह के बाद अभयसिंह तथा विजयसिंह के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। विजयसिंह के पश्चात् गुमानसिंह हुआ जिसका अभिषेक नहीं हुआ।[37] फिर मानसिंह हुए जो राजनीति के अलावा संगीत के भी ज्ञाता थे।[38] राजाओं की वंशावली में यहां गुमानसिंह जी का उल्लेख महत्वपूर्ण तथ्य है क्योंकि राजकीय अभिलेखों से ज्ञातव्य है कि विजयसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा भीमसिंह बने थे। जबकि मुरारिदान विजयसिंह के बाद सीधे मानसिंह का उल्लेख करते है। वे लिखते हैं कि मानसिंह ने भोंसले तथा इन्दौर के होल्कर को आश्रय--प्रदान किया।[39] जबकि सत्य यह है कि महाराजा मानसिंह ने इन्दौर के होल्कर को कृष्णाकुमारी विवाह प्रकरण में जयपुर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से सहयोग हेतु बुलाया था। हाँ उन्होंने 1827 (ई.) में जब नागपुर का शासक मधुराजदेव भोंसले अंग्रेजों से पराजित होकर जोधपुर आ गया तो उसे महामन्दिर में शरण दी। मानसिंह के पश्चात् तखतसिंह उत्तराधिकारी बने जिन्होंने अंग्रेजों के राज्य में राजाओं की शक्ति को सुरक्षित रखा। उनके उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंह हुए जिनका जन्म 1894 में आसोज शुक्ला अष्टमी को हुआ और 1929 ई. में फाल्गुन माह में राजा बने।[40] उनके राज्यकाल में वाष्प से चलने वाली रेलगाड़ी मारवाड़ में प्रारम्भ हुई और टेलीफोन तथा तार की सुविधा प्रजा को प्राप्त हुई।[41] इनके छोटे भाई प्रताप (सर प्रताप) के निर्देशन से न्याय व्यवस्था का संगठन हुआ तथा (तालाब, बावड़ियां आदि खुदवाकर) मरुस्थल को सजल बनाने के प्रयास किये गये। जसवन्तसिंह महा दानी शासक थे उन्होंने विद्वानों को हाथी सिरोपाव आदि प्रदान किये।[42] उनके पुत्र महाराजा सरदारसिंह उच्च कोटि के शासक, नृत्य तथा संगीत के शौकीन थे। उन्होंने मंत्रियों की सलाह से प्रशासन का कार्य किया। वे राज्य का दौरा करते। सेना का

निरीक्षण करते और अधिकारियों को उचित परामर्श देते ताकि प्रजा का कल्याण हो।[43]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि यशवन्त यशोभूषण ऐतिहासिक घटनाओं से परिपूर्ण कृति है जिसमें प्रदत्त ऐतिहासिक घटनाएँ (कुछ को छोड़कर) कसौटी पर खरी उतरती हैं। इसलिये मारवाड़ का इतिहास लिखने और उस पर शोध करने वाले विद्वानों को इस ग्रन्थ की महत्ता स्वीकार करनी चाहिए।

सह आचार्य,

इतिहास विभाग,जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय

जोधपुर (राज.)

संदर्भ :

1. शर्मा दशरथ : राजस्थान थ्रू द एजिज 1, पृ. 515
2. रेउ, विश्वेश्वरनाथ : मारवाड़ का इतिहास, खण्ड– 1, पृ. 21–22
3. जिज्ञासु, मोहनलाल : चारण साहित्य का इतिहास : खण्ड 2, पृ. 137
4. रेउ, पूर्वो., पृ. 25
5. सरित्पञ्जाबदेशीया स्वच्छवारिमनोहरा।
   मण्डोवरपुरोपान्ते स्वच्छन्दं प्रावहत्पुरा ।।3।।
   चिह्मनि च प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र स्थलेऽधुना।
   श्रीमदावडशक्त्याख्या संजाता चारणान्वये ।।4।।
   तस्या : शापवशात्काले, विक्रमस्य महीपते :।
   त्यक्त्वा मण्डोवरोपान्तं नदी दूरं विनिर्गता ।।5।।
   तेन मण्डोवर प्रान्तो बभूव जलवर्जित :।
   मरुस्थलीति संज्ञास्य देशस्यासीत्तत : परम् ।।6।।
   यशवन्त यशोभूषण, 1, श्लोक 3–6, पृ. 33
6. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द : जोधपुर राज्य इतिहास खण्ड 1 पृ. 3 ;
   गहलोत, जगदीश सिंह मारवाड़ राज़्य का इतिहास, पृ. 3 ; (नया संस्करण) ;
   व्यास मांगीलाल : जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 5
7. रेउ, पूर्वो, पृ. 3 (उनका विचार है कि सतलज की यह धारा हाकड़ा नदी कहलाती थी।
8. यशवन्त यशोभूषण 1; 8– 9, पृ. 33
9. वही 1; 9–10, पृ. 34
10. वही 1–11 पृ. 34, धरणीवराह के नवकोटि मारवाड़ का उल्लेख एक छप्पय में भी मिलता है। द्र. गहलोत, मारवाड राज्य का इतिहास, पृ. 59
11. व्यास, मांगीलाल : पूर्वो पु. 13 ; जगदीश सिंह गहलोत भी इस मत से सहमत हैं। द्र. मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ.59
12. नाहड़राव सम्भवतः , प्रतिहार हरिश्चन्द्र का पौत्र (नांगभट) था। मण्डोर में देवताओं की साल के पास एक गुफा है जिसमें एक मूर्त्ति उत्कीर्ण है जिसे नाहड़राव प्रतिहार की माना

जाता है उसके पास 10 वीं शताब्दी का लेख का टुकड़ा मिला है। ओझा, पूर्वो, पृ. 26; रेउ, पूर्वो पृ.7

13. यशवन्त यशोभूषण 1, श्लोक 15–25, पृ. 34–35
14. राष्ट्रकूटों को अभिलेखों और ताम्रपत्रों में चन्द्रवंशी कहा गया है जबकि कर्नल टॉड ने उन्हें सूर्यवंशी माना है। द्र. ओझा, पूर्वो., पृ. 82–84
15. ओझा, पूर्वो, पृ. 88
16. मरु देशेऽस्ति नगरी हस्तिकुण्डीतिनामत:।
राष्टकूट शिलालेखस्तत्रप्राप्त : पुरातन : ।।17।।
आसन् राष्ट्रवरेत्याख्या मरुदेशेश पूर्वजा :
तेषु राष्ट्रवराः केचिन्निर्ययुर्दक्षिणां दिशम् ।।18।।
द्र. यशवन्त यशोभूषण 1,17–19
17. यशवन्त यशोभूषण 1, श्लोक 21–33, पृ. 3–4
18. वही, श्लोक– 33 यहां जयचन्द्र को दलपंगुल भी कहा गया है।
19. यह ओझा का पुराना मत है जिसको बाद में उन्होंने संशोधित कर लिया था। ओझा, पूर्वो, पृ.133
20. ज.ए.सो.ब, 1920, भाग 16, पृष्ठ 276 ; पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ. 88,;
शाह, प्रशस्ति संग्रह, पृ.46 तथा 55,
व्यास, मांगीलाल : जोधपुर राज्य का इतिहास : पृ. 17
21. रेउ, पूर्वो, पृ. 31 ; रेउ, राष्ट्रकूटों का इतिहास।
22. यशवन्त यशोभूषण, 1, श्लोक 35, पृ. 4
23. यशवन्त यशोभूषण, 1,34–40, पृ. 4–5
24. रेउ, पूर्वो. पृ. 47
25. गहलोत, पूर्वो., पृ. 74
26. यशवन्त यशोभूषण, 1, 41–47, पृ.5
27. यहां तीड़ा के बाद कान्हड़देव जी का उल्लेख कविराज मुरारिदान ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है।
28. यशवन्त यशोभूषण, 1, श्लोक 47–49, पृ. 5–6 (उन्होंने त्रिभुवन; मल्लिनाथ और जगमाल का उल्लेख कर सलखा के बाद सीधे राव वीरम का उल्लेख किया है।
29. वही, श्लोक 50–51 पृ.6
30. वही, 1 श्लोक 53–55, पृ.6
31. वही, 1, श्लोक 57–59, पृ.7
32. वही, 1; श्लोक 60, पृ. 7 (जोधा ने गया यात्रा पर लगने वाले कर को बादशाह से मिलकर समाप्त करवाया)।
33. वही, 1, श्लोक 62, पृ. 7
34. यशवन्त यशोभूषण 1 ; 65–66 पृ. 7–8
35. वही, 1; 66–74, पृ. 8
36. वही, 1; 73–74, पृ.8

37. यशवन्त यशोभूषण 1; श्लोक 79
38. वही, 1, 79—82
39. वही, 1, श्लोक 83, पृ.9
40. वही, 1, श्लोक 90—91, पृ. 10
41. वही, 1, श्लोक 92—93, पृ. 10
42. वही, 1, श्लोक 90—95, पृ. 10—11
43. वही, 1; 96—105, पृ. 11

गंगोदय का व्यापक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक विवेचन

डॉ॰ ब्रह्मानन्द शर्मा

इतिहास का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– इति ह आस– अर्थात् इस प्रकार था। इस अर्थ के अनुसार इतिहास के अन्तर्गत न केवल कालविशेष से संबन्धित घटनाएँ आती हैं अपितु कालविशेष से सम्बन्धित प्रदेश का प्राकृतिक और सामाजिक स्वरूप आदि भी आ सकते हैं। प्रदेश का प्राकृतिक और सामाजिक स्वरूप भी काल विशेष की अवस्थितियां हैं। इन अवस्थितियों में जब कालक्रम का समावेश होता है तब कालक्रमाश्रित उनकी ऐतिहासिकता और भी स्पष्ट हो जाती है। प्राकृतिक स्वरूप अनेकशः सामाजिक स्वरूप के निर्माण में सहायक होता है। ऐसी स्थिति में उसका महत्व बढ़ जाता है। यदि हम घटनाओं और तिथियों को इतिहास का सीमित अर्थ कहें तो प्राकृतिक और सामाजिक अवस्थितियों को उसका व्यापक अर्थ कह सकते हैं। वस्तुतः ऐतिहासिक विवेचन में इन सभी का समावेश किया जा सकता है। हम "गंगोदय शीर्षक" काव्य का विवेचन इसी दृष्टि से करते हैं।

ग्रन्थ के शीर्षक गंगोदय के दो अर्थ हैं– गंग नहर का उदय और महाराजा गंगासिंह का उदय। इस प्रकार यह काव्य गंगनहर के आगमन के माध्यम द्वारा बीकानेर राज्य के भूतपूर्व नरेश महाराजा गंगासिंह जी के उदय का वर्णन है। यह बात ग्रन्थ के आरम्भ में ही कही गई है। यथा–

"बीकानेर राज्य के भूतपूर्व नरेश महाराजा श्री गंगासिंह जी के द्वारा लाई हुई गंगनहर ने श्री गंगानगर क्षेत्र की मरुधरा को सुजला वसुन्धरा का जो रम्य रूप प्रदान किया उसी का साकार एवं प्रभावकारी वर्णन इसी प्रदेश के एक कवि ने अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर प्रस्तुत गंगोदय काव्य में किया है। कवि ने इस भूभाग की समृद्धि में युगान्तर लाने वाली इस नहर को प्रजावत्सल, देशभक्त, प्रतापी एवं यशस्वी नरेश श्री गंगासिंहजी की शाशवत–शुभ्र–कीर्त्तिधारा के रूप में चित्रित किया है।"

इतिहास के सीमित अर्थ में इस काव्य के द्वारा निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं–

अपने राज्य के बड़े भू–भाग को हरा–भरा और अन्पूर्ण बनाने के लिए महाराजा गंगासिंह जी सन् 1927 में सतलुज नदी से गंगनहर लाए। इसी के आधार पर इस प्रदेश का नाम श्रीगंगानगर पड़ा।

महाराजा गंगासिंहजी ने अपनी युवावस्था में सन् 1899 ई॰ में एक भयंकर दुर्भिक्ष के दर्शन किए थे। ऐसे दुर्भिक्षों से कालान्तर में राज्य की रक्षा हेतु उन्होंने नहर द्वारा इसे सुसिक्त करने का संकल्प किया। ग्रन्थ के आरम्भ में लिखित उद्धरण से यह बात स्पष्ट होती है–

"If I reflect upon the events of these five decades, I feel that no

achievement has given me greater satisfaction than the advent of the Gang canal which has been the most cherished ambition of my life ever since, as a young man, I witnessed the ravages of the Great famine of the year 1899."

श्री गंगासिंह जी इस काव्य के धीरोदात्त नायक हैं। उन्हें यहां एक प्रजावत्सल और न्यायकारी राजा के रूप में चित्रित किया गया है तथा उनके इस कार्य को देशभक्ति का उज्ज्वल उदाहरण माना गया है। यथा–

निर्भयाः पशवश्चेरुर्गृहाः स्थिता अनर्गलाः।
न्याय्यवृत्तौ स्थिताः सर्वे परस्वं तेन लोष्टवत् ।। 17 ।।
धन्यो गंगप्रदेशोऽयम् धन्याश्चास्य निवासिनः।
बभूवैवंविधो यस्मिन् राजा प्रकृतिरञ्जनः ।। 18 ।।
न स्वर्गं स्वर्ग इत्याहुः सुपुत्रः स्वर्ग उच्यते।
गंगेनैव सुपुत्रेण देशोऽयं स्वर्गसन्निभः ।। 46 ।।

इतिहास के व्यापक अर्थ में प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी प्रकार के इतिहास आते हैं। गंगोदय में प्राकृतिक इतिहास विशेषतः उभर कर आता हैं। इस समग्र काव्य को सम्बन्धित प्रदेश का प्राकृतिक इतिहास कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस काव्य में दो प्रकार की प्राकृतिक अवस्थाओं का चित्रण है– एक गंग नहर के आगमन से पूर्ववर्ती है तथा दूसरी इसकी उत्तरवर्ती है। ये दोनों अवस्थाएँ विपरीत ध्रुवों के समान चित्रित की गई हैं। इससे क्रमजन्य इतिहास के साथ–साथ एक चमत्कारपूर्ण विरोध भी हमें दिखाई देता है। यथा–

रजसां यत्र बाहुल्यं शस्यानि तत्र सर्वतः।
भूपस्यास्य प्रभावेण परिधानं धृतं भुवा ।। 5 ।।

इस प्राकृतिक इतिहास में भूमि की स्थिति, वनस्पतिजगत्, वायुगति और उसका स्वरूप, ऋतुओं की स्थिति, ग्राम्य और नगर–जीवन, यान आदि के साधन, पेय–जल के स्रोत आदि सभी का साकार चित्रण हुआ है और कुल मिलाकर जलाभाव और जलबाहुल्य से उत्पन्न प्राकृतिक स्थितियों को मूर्त्त रूप देकर जल की महिमा स्पष्टतः प्रतिपादित की गई है। यथा–

नीरसाः सैकताश्चैव बीकस्यानीरभूमयः।
सान्निध्येन द्रवीभूताः स्नेहस्य तस्य का कथा।।6 ।।

यहां भूमि की पूर्वापर स्थिति का वर्णन है।

इसी प्रकार–

प्रदेशे यत्र विच्छाये पुरा ह्यर्काः सुखावहाः।
तरवस्तत्र सच्छाया घनीभूताः पदे पदे ।। 10 ।।
स्वल्पच्छायः शमीवृक्षो गृहस्य मे पुरः स्थितः।
विनिर्मितालबालश्च सेवितश्च दिने दिने ।। 25 ।।

सुच्छायाः शिंशपावृक्षाः पंक्तिबद्धाः पुरः स्थिताः।
अयत्नतोऽधुना रूढा जलातिरेकहेतुना।। 26 ।।

यहां वनस्पतिजगत् की पूर्वापर स्थिति का वर्णन है।

इसी प्रकार–

वात्याचक्रे समुद्भूते नेत्रे धूलिसमाकुले।
वायुर्मन्दः सुगन्धिश्च वाति तत्र सुशीतलः।। 11 ।।

यहां वायु की गति और स्वरूप की पूर्वापर स्थितियों का वर्णन है।

इसी प्रकार–

धर्मशैत्ययुते देशे नीरसे चैव सर्वतः।
सरसतां गते सम्यग् राजते कुसुमाकरः।। 12 ।।

यहां ॠतुओं की पूर्वापर स्थितियों का चित्रण है।

इसी प्रकार–

क्व रामाख्यः पुरा ग्रामः क्व गंगानगरं पुरम्।
जीर्णकुड्या गृहा जाता भव्यभवनरूपिणः।। 19 ।।
आच्छादितं तृणैः काष्ठैः सैकतं मे गृहं पुरा।
वेष्टितं निर्जनत्वेन ग्रामाद्बहिर्विनिर्मितम् ।। 23 ।।
गतं तन्नगरीमध्ये वेष्टितं हर्म्यपंक्तिभिः।
सूचयत्तस्य ग्रामस्य दशामतिपुरातनीम् ।। 24 ।।

यहां ग्राम्य–जीवन और नगर जीवन का पूर्वापर चित्रण है।

इसी प्रकार–

उष्ट्रारूढः पदातिर्वा यत्राहं गृहमागतः।
यानारूढा जनास्तत्र गन्तव्यं यान्ति सत्वरम्।। 22 ।।

यहां यानों की पूर्वापर स्थितियों का चित्रण है।

इसी प्रकार–

कूपेषु यत्पुरा जातं विरलं चैव दुर्लभम्।
सुलभं तज्जलं जातं गृहस्थस्यापि देहिनः ।। 36 ।।

यहां जलस्रोत की पूर्वापर स्थितियों का वर्णन है।

इसी प्रकार–

स्पष्टं जलस्य वैशिष्ट्यं भूम्यादितत्त्वपञ्चके।
जलयोगो महायोगः सर्वं तेन सुखायते।। 38 ।।
जलं हि जीवनं लोके जलं सर्वसमीहितम् ।
मरौ तज्जलमानीय गंगेन जगदुद्धृतम् ।। 39 ।।

भागीरथी समानीता भगीरथमहात्मना।
गंगेन गंगमानीय भगीरथायितं पुनः ।।40 ।।

यहां जल की महिमा का वर्णन है। गंगसरित् के रूप में इसी जल को लाने के कारण गंगासिंह जी को यहां राजा भगीरथ कहा गया है।

प्राकृतिक स्थिति के इस परिणाम का प्रभाव इस प्रदेश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर स्पष्टतः लक्षित होता है। इससे यहां की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई है तथा सामाजिक स्थिति समुन्नत हो गई है। इस प्रकार यह काव्य अपनी ललित भाषा में इस प्रदेश के आर्थिक और सामाजिक इतिहास का भी मूर्त्त चित्र प्रस्तुत करता है यथा–

अतिलघ्वापणं तत्र स्थितं गृहस्य सन्निधौ।
आसीन्नित्यप्रयुक्तस्य वस्तुनो यत्र विक्रयः ।।31 ।।
स्थितं सम्प्रति विस्तीर्णमापणं समलंकृतम्।
महार्हाणां पदार्थानां विक्रयो यत्र नित्यशः।।32 ।।
पश्चिमायां दिशि त्वस्यामर्कपंक्तिः स्थिता पुरा।
केचन च स्थिता गर्ता मृत्तिकोत्खननेन हि।।29 ।।
समे तस्मिन् भुवो भागे यन्त्रागारो विराजते।
श्रमिका व्यापृता यत्र वस्त्रनिर्माणकर्मणि ।।30 ।।

संस्कृत–साहित्य में प्रकृति चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वाल्मीकि में यह चित्रण सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट हुआ है। कालिदास का प्रकृति चित्रण अपनी विशेषता की दृष्टि से अद्वितीय है। रत्नाकर और हिमालय के साकार वर्णन इसी कोटि में आते हैं। परन्तु यह प्रकृति वर्णन सूक्ष्म होते हुए भी कालकोटियों से सम्बन्धित न होने के कारण भौगोलिक इतिहास की कोटि में नहीं आता। भवभूति ने अपने उत्तररामचरित में ऐसा प्राकृतिक वर्णन अवश्य किया है। यथा–

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां,
विपर्य्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं,
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।।2.27 ।।

परन्तु यत्र–तत्र विद्यमान इस भौगोलिक ऐतिहासिकता का काव्य के समग्र रूप पर प्रभाव नहीं पड़ता।

ऐतिहासिक महाकाव्यों में यत्र–तत्र प्राप्त प्रकृति चित्रण का भी ऐतिहासिक स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं। गंगोदय में तो भौगोलिक इतिहास ही काव्य का स्वरूप है। इस प्रकार यहां इतिहास और भूगोल काव्य के साथ आकर मिल गए हैं। इतना होने पर भी प्रधानता यहां कवित्व की है, इतिहास और भूगोल तो उसके उपकारक हैं।

पूर्व निदेशक, राज॰ प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
7–क–15, जवाहर नगर, जयपुर

खण्ड - द्वितीय

मेवाड़ की अनुत्कीर्ण संस्कृत प्रशस्तियाँ

डॉ॰ जगदीशचन्द्र जोशी

मेवाड़ में उपलब्ध संस्कृत प्रशस्तियाँ, शिलालेखों और अभिलेखों का इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता रहा है। यद्यपि अभी इस दृष्टि से और भी अनेक शिलालेख आदि का अध्ययन होना शेष है। संस्कृत प्रशस्तियाँ मुख्यतः पद्यबद्ध रही हैं और प्रायः बड़े कलेवर में हैं। इनमें सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा सम्पादित या निर्मित जलाशय, मंदिर, किले, अथवा अन्य किसी महत्वपूर्ण निर्माण कार्य का व्यापक विवरण प्राप्त होता है। साथ ही कई एक अभिलेखों में सम्बन्धित व्यक्ति के पूर्व पुरुषों का अथवा पूरे वंश का संक्षिप्त इतिवृत्त भी होता है जो इतिहास की स्रोत सामग्री के रूप में अधिक उपयोगी माना जाता है। प्रशस्तियाँ काव्यात्मक अधिक होती हैं।

मेवाड़ में ऐसी प्रशस्तियाँ अधिकांशतः शिलोत्कीर्ण हैं। इनका प्रचलन यहाँ दसवीं शताब्दी से अधिक दिखाई देता है। ऐसी प्रशस्तियों की रचना यहाँ के शासकों से सम्बधित अधिक रही हैं जबकि समाज के अन्य विशेष रूप से जैन व्यक्तियों के लिये भी इनका निर्माण हुआ है। इन प्रशस्तियों में मुख्य रूप से यहाँ के इतिहास सम्बन्धी ज्ञातव्य विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। अतएव इनका ऐतिहासिक महत्व विशेष रूप से रहा है। लेकिन जो सुदीर्घकाय प्रशस्तियाँ हैं उनमें रचनाकारों ने अपनी काव्य प्रतिभा का भी पर्याप्त प्रदर्शन किया है। अतएव इन्हें अपने समय के काव्य भी माने जा सकते हैं। यही कारण है कि अनेक प्रशस्तिकारों ने अपनी रचनाओं को काव्य या महाकाव्य नाम से अलंकृत किया है जबकि वे संस्कृत लक्षण ग्रंथों की परिभाषा के अनुरूप काव्य या महाकाव्य की सीमा में नहीं आते हैं।

मेवाड़ में उपलब्ध होने वाले इन प्रशस्ति काव्यों में महाराणा कुंभाकालीन प्रशस्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। कीर्त्तिस्तंभ प्रशस्ति और कुंभलगढ़ प्रशस्ति तथा महाराणा कुंभा की पुत्री रमाबाई द्वारा निर्मित रमानाथ मंदिर जावर की प्रशस्ति उल्लेखनीय है। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के विषय में कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि एकलिंग माहात्म्य के संकलनकर्ता कन्ह व्यास ने इस प्रशस्ति की रचना की होगी, लेकिन चित्तौड़ की कीर्त्तिस्तंभ प्रशस्ति के रचयिता अत्रिभट्ट और महेशभट्ट ही कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के रचयिता रहे होंगे। इस प्रशस्ति में महाराणा कुम्भा की राजनैतिक उपलब्धियों एवं तत्कालीन समाज के विषय में पर्याप्त जानकारी है।

दूसरी बड़ी प्रशस्ति राजसमुद्र का शिलालेख है जो राजसमुद्र–प्रशस्ति महाकाव्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह शुद्ध संस्कृत में है। इसमें 24 सर्ग हैं तथा 25 शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं जो राजसमुद्र की पाल पर लगी हुई हैं। इसकी रचना महाराणा राजसिंह

प्रथम (संवत् 1709–37) के समय तैलंग ब्राह्मण पं॰ रणछोड़ भट्ट ने की थी।

प्रशस्तिकाव्यों की रचना परम्परा 10 वीं शताब्दी के बाद उत्तरोत्तर विकसित होती दिखायी देती है। मेवाड़ में अनेक महाराणाओं ने अपने द्वारा सम्पादित कार्यों के इतिवृत्त को सुरक्षित रखने के लिये इन प्रशस्तिकाव्यों का निर्माण करवाया और शिलोत्कीर्ण कराया गया।

प्रशस्तिकाव्य की रचना करना जितना आसान रहा होगा, उतनी सरलता उसे शिलोत्कीर्ण करने में नहीं रही होगी। यही कारण है कि कई प्रशस्ति काव्यों की रचना हो जाने पर उन्हें शिला पर उत्कीर्ण करने की इच्छा होते हुए भी समय पर उत्कीर्ण करा कर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सका। अतएव अनेक प्रशस्तियाँ अपने समय में निर्मित की जाकर भी शिलाओं पर उत्कीर्ण नहीं हुईं और वे सम्बंधित शासक के जीवन काल में यथा स्थान नहीं लग पायीं। इस तरह के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें राज–प्रशस्ति शिलालेख ही है जो महाराणा राजसिंह के समय में रचा जाकर उनके बाद उनके पुत्र महाराणा जयसिंह के समय शिलोत्कीर्ण हुआ और राजसमुद्र की पाल पर लगवाया गया। इस प्रकार की प्रशस्तियों में परवर्ती शासकों के चरित्र का भी आंशिक समावेश होता देखा गया है।

मेवाड़ राजवंश से सम्बन्धित उपलब्ध प्रशस्तियाँ उपर्युक्त विशेष कारणों से अथवा अन्य किन्हीं कारणों से लिखी जाने के बहुत बाद शिलोत्कीर्ण हुई हैं। लेकिन अब तक तीन ऐसी प्रशस्तियाँ देखने में आयी हैं जो शिलोत्कीर्ण नहीं हो सकीं। ऐसी प्रशस्तियों में महाराणा जयसिंह द्वारा निर्मित जयसमुद्र की प्रशस्ति, महाराणा अरिसिंह के शासनकाल की देबारी के राजराजेश्वर मंदिर की प्रशस्ति और महाराणा फतहसिंह द्वारा निर्मित फतहप्रकाश राजप्रासाद की प्रशस्ति है।

इन प्रशस्तियों में जयसमुद्रप्रशस्ति तथा फतहप्रकाशप्रशस्ति तो विस्तृत हैं जबकि राजराजेश्वर मंदिर की प्रशस्ति केवल 68 श्लोकों में पूरी हुई है। इन प्रशस्तियों के शिलोत्कीर्ण न होने से मेवाड़ के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वूपर्ण ज्ञातव्य प्रकाश में नहीं आ सके और दूसरी ओर मेवाड़ के संस्कृत साहित्य में भी इनकी गणना नहीं हो सकी।

उक्त तीनों अनुत्कीर्ण प्रशस्तियों में से दो प्रशस्तियाँ तो दुष्प्राप्य प्रतिलिपि के रूप में सुरक्षित हैं किंतु जयसमुद्र की प्रशस्ति के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। केवल मात्र सूचना उपलब्ध है। यह सूचना भी गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने उदयपुर राज्य के इतिहास में निम्न प्रकार से दी है–

"इस (जयसमुद्र) तालाब की प्रशस्ति की रचना भी की गई थी, परन्तु वह खुदवायी नहीं गई, जिससे उक्त तालाब के विषय का अधिक हाल मालूम नहीं हो सका। हमें विश्वस्त रूप से उस प्रशस्ति की मूल प्रति का पता लगा परन्तु बहुत उद्योग करने पर भी वह न मिल सकी।"

श्री ओझाजी ने इस प्रशस्ति की रचना की जानकारी दी है तो मूल प्रति कहीं अवश्य सुरक्षित होनी चाहिये। अनुसंधानकर्ताओं को अपनी शोध–यात्रा में इस ओर भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। जयसमन्द की यह प्रशस्ति यदि प्राप्त हो जाती है तो मेवाड़ के संस्कृत–साहित्य में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी तथा मेवाड़ के इतिहास पर भी नया प्रकाश पड़ेगा।

इसी तरह की एक अनुत्कीर्ण प्रशस्ति देबारी के गेट के पास बने राजराजेश्वर मंदिर की प्रशस्ति है। श्री ओझाजी के अनुसार इसकी रचना महाराणा अरिसिंह (वि॰सं॰ 1817–1829) के समय रूपजी भट्ट के पुत्र सोमेश्वर ने की थी। इसमें राज राजेश्वर के मंदिर, वापी, धर्मशाला के निर्माण का विवरण दिया गया है। उक्त निर्माण महाराणा राजसिंह द्वितीय का देहान्त हो जाने पर उनके सुकृत के लिये उनकी माता बख्ता कुंवर ने करवाये थे।

इस प्रशस्ति की सूचना श्री ओझा जी ने अपने इतिहास में इस प्रकार दी है–

"देबारी के दरवाजे के सामने वाले राजराजेश्वर के मंदिर की श्रावणादि वर्ष वि॰ सं॰ 1819 वैशाख सुदी 8 गुरुवार की प्रशस्ति।

इस प्रशस्ति की रचना भट्ट रूपजीत (रूपजी) के पुत्र सोमेश्वर ने की थी किंतु वह खोदी न जाकर इस मंदिर में नहीं लगायी गई। उसकी पुस्तकाकार १६ पृष्ठों पर लिखी हुई एक प्रति मुझे उदयपुर के कथा भट्ट (व्यास) विष्णु राम भट्ट मेवाड़ा से मिली। इस प्रशस्ति में 68 श्लोक हैं। यह प्रशस्ति दो भागों में विभक्त है , पहले भाग में 32 और दूसरे में 36 श्लोक हैं।"

ज्ञात हुआ है कि कुछ वर्षों पूर्व इस प्रशस्ति का प्रकाशन श्री आर॰सी॰अग्रवाल ने कराया। श्री अग्रवाल को प्रशस्ति की प्रति झालावाड़ के श्री जी॰एल॰व्यास से प्राप्त हुई थी। इस प्रति का मूल पाठ पूरा है किंतु कुछ अंश त्रुटित है और अशुद्ध भी है। अतः श्री ओझा जी द्वारा संदर्भित विष्णुराम जी भट्ट मेवाड़ा वाली उक्त प्रति यदि प्राप्त हो जाती है तो इस प्रशस्ति को अपने मूल रूप में सम्पादित किया जा सकेगा। इस प्रकाशित प्रति को देखने में मैं अब तक असमर्थ रहा हूँ।

कालक्रम से तीसरी, अनुत्कीर्ण प्रशस्ति है– फतहप्रकाशप्रशस्ति। इसकी रचना दधवाड़िया चिमनसिंह के पुत्र चारण कवि कर्णीदान ने की थी। यह 16 सर्गों में है और इसमें 1319 श्लोक हैं। महाराणा फतहसिंह ने अपने शासन काल में चित्तौड़ दुर्ग एवं कुंभलगढ़ में अनेक जीर्ण स्थलों का उद्धार और नवनिर्माण करवाया था। चित्तौड़ दुर्ग पर उन्होंने फतहप्रकाश राजमहल का भव्य–निर्माण करवाया। महाराणा फतहसिंह की इच्छा थी कि उक्त राज प्रासाद में एक ऐसी शिलोत्कीर्ण प्रशस्ति लगायी जावे जिसमें मेवाड़ का सम्पूर्ण इतिहास अंकित हो। चारण कवि कर्णीदान ने महाराणा के इस मन्तव्य के अनुरूप इस प्रशस्ति की रचना की थी,

लेकिन कालक्षेप से यह शिलोत्कीर्ण नहीं हो सकी। महाराणा फतहसिंह के आदेश से इसके संशोधन के लिये शाहपुरा के प्रसिद्ध विद्वान् श्री यमुनादत्त षड्शास्त्री से आग्रह किया गया था।

इस प्रशस्ति की मूल प्रति खेमपुर के पास के गाँव के स्व. ईसरदास के परिवार के पास सुरक्षित है। इसका एक अंश श्री कृष्णचन्द्र शास्त्री के पास भी सुरक्षित रहा। प्रशस्ति के इन पृष्ठों में स्वयं कर्णीदान के हाथों से संशोधन हुए हैं। इसकी एक प्रति साहित्य संस्थान में भी सुरक्षित है। इस प्रशस्ति के उत्कीर्ण कराने की कोई जानकारी नहीं मिलती है।

फतहप्रकाशप्रशस्ति सरल संस्कृत में है और महाराजा राजसिंह प्रथम के बाद के इतिहास को समझने के लिए बड़ी उपयोगी है। अनुसंधानकर्ताओं और पाठकों की जानकारी के लिये इसका सम्पादन एवं प्रकाशन आवश्यक है।

ये अनुत्कीर्ण प्रशस्तियाँ हमें इस बात का संकेत देती हैं कि इस तरह का साहित्य अनुसंधान सापेक्ष है। संभवतः कालक्षेप से ऐसी अन्य अनेक प्रशस्तियाँ निर्मित की जाकर शिलोत्कीर्ण नहीं हो सकी होगी, जो उत्कीर्ण हुई हैं उनमें से कई प्रशस्तियाँ खंडित हो चुकी हैं। यदि हमारी अनुसंधान यात्रा में वे पुस्तक रूप में या बिखरे पृष्ठों में कहीं उपलब्ध हो जाती हैं तो मेवाड़ के संस्कृत– साहित्य और इतिहास को समृद्ध किया जा सकेगा।

पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग
उदयपुर (राज.)

राजस्थानीय संस्कृत रूपकों में महाराणा प्रताप का स्वरूप– निरूपण

डॉ. हरमल रेबारी

विश्ववन्द्य स्वनामधन्य महाकवि माघ जैसे शारदातनय को उत्पन्न कर यह मरुप्रदेश राजस्थान युग–युगान्तर तक अन्यान्य प्रदेशों के लिए स्पृहणीय बना रहेगा। श्रम–शौर्य–संस्कृति की उद्गम, भक्ति की क्रीड़ास्थली यह वीरप्रसू मरुधरा चिरकाल से विद्या–व्यसनी विपश्चितों के लिए वन्दनीया रही है। स्वधर्म, मान, मर्यादा और स्वदेश के गौरव की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने वाले असंख्य वीर–वीरांगनाओं की जन्मदात्री यहाँ की धरा प्रयाग के समान परमपावनी एवं शान्तिदायिनी है। ऐसी पुण्यसलिला वसुन्धरा पर पुरातन काल से ही वीणापाणि हंसवाहिनी कमलासना भगवती शारदा की समाराधन–परम्परा अनवरत चली आ रही है, जिसमें अनेक सुरभारती–समुपासक मनीषियों ने अपने श्रद्धासुमन समर्पित किये हैं। इस मरुभूमि में प्रवहमाण सारस्वत–नद अद्यावधि ज्ञानपिपासुओं की सन्तप्त आत्मा को सन्तृप्त करता परिलक्षित हो रहा है। संस्कृत साहित्य के सर्वविध आयाम यहाँ सर्वतन्त्र स्वतन्त्ररूपेण मूर्त्तिमन्त हुये हैं। इनमें रूपक (नाट्य) साहित्य भी अपने गौरवपूर्ण वैभव से विलसित है।

राजस्थान में इस सुकुमार विधा के प्रणयन का शुभारम्भ बारहवीं शताब्दी में प्रणीत ललितविग्रहराज और हरकेलि नामक रूपकद्वय से माना जा सकता है। इसी परम्परा में दुर्विदग्धविचेष्टित, हिन्दोलकमहोत्सव अभिनवाभ्युदय, कलिपलायन, दमनमंजरी, कर्णकुतूहल, होलोत्सव, माधव–स्वातन्त्र्य आदि परिगणित हैं। स्वातन्त्र्यपूर्व की अपेक्षा स्वातन्त्र्योत्तर काल में संस्कृत रूपकों के प्रणयन में आशातीत वृद्धि हुई है। चूंकि स्वातन्त्र्योत्तर युग एक स्वतन्त्र एवं सार्वभौम राष्ट्र का युग था, अतएव इस काल में अधिकांश रूपककारों ने राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्र की शौर्यगाथाओं को अपना कथानक बनाया है।

यही नहीं, अपितु राष्ट्र के स्वातन्त्र्य समर में हुतात्मा देशभक्तों को कथानक बनाकर भी अनेक रूपकों का प्रणयन हुआ है। देशभक्त इन वीरों की शौर्यगाथाओं के अभिव्यञ्जक रूपक इतने अधिक हैं कि इस युग के रूपक–साहित्य को राष्ट्रभक्ति प्रधान तथा देशभक्त वीरों को आधार बनाकर व्यक्ति–प्रधान रूपकों का युग कहा जाय तो किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस प्रकार के रूपकों में महाराणा प्रताप, भामाशाह, विजयसिंह, 'पथिक', रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी, कृष्णराव, सिद्धेश्वर, मीर मकबूल शेरवानी, झलकारी इत्यादि राष्ट्रप्रेम के पथ–प्रदर्शक एवं स्वातन्त्र्यानुरागी सेनानियों की गौरव–गाथा समुल्लसित है। यहाँ परमस्वाभिमानी, शूरवीर तथा हिन्दू संस्कृति के प्रबल पक्षधर सिसोदिया कुलावतंस प्रबल तेजप्रताप मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप का स्वरूप–निरूपण ही अभीष्ट है।

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप विषयक रूपकों में मेवाड़मार्त्तण्ड, राज्याभिषेक,

चित्तौड़सिंह, प्रतापसिंहीय इत्यादि प्रमुख हैं। इन रूपकों में मेवाड़ महीधर महाराणा प्रताप का शौर्य, पराक्रम, स्वाभिमान, देशप्रेम, अतिथि–सत्कार इत्यादि गुण समवाय से संवलित समुज्ज्वल स्वरूप अभिचित्रित हैं।

सिसोदियावंशभूषण मेवाड़–नरेश महाराणा प्रताप एक वीर, पराक्रमी और स्वाभिमानी देशभक्त शासक हैं। तभी तो इनके शौर्य एवं पराक्रम से अभिभूत सम्राट्–अकबर का सेनापति आमेर नरेश मानसिंह इनके दर्शनों के लिए ही मेवाड़ आता है–
"पुण्यश्लोकप्रतापमहाभागविलोकनोत्कटोत्कलिकैवाऽऽकृष्य मामानैषीदत्र कुमार" [1]

मानसिंह द्वारा मुगल सेना की प्रशंसा सुनकर महाराणा उसे कापुरुष की संज्ञा देते हुए मुगलों से लोहा लेने का अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हैं–

"मानसिंह! म्लेच्छानां दास्येन त्वमियान् कापुरुषः संजातो यद्राजपुत्राः म्लेच्छैः पराजेष्यन्त इति बिभेषि? निश्चितं जानीहि यत्सीसोदिया क्षत्रिया मोगलान् सम्मुख– समरे समामन्त्रयितुं सर्वदा सज्जाः।" [2]

दासत्व की अपेक्षा पराजय को अंगीकार करने वाले महाराणा प्रताप मुगल सम्राट् को समर के लिए चुनौती देते हैं–

"अलमधिकं प्रगल्भनेन। दास्यात्पराजयो मे प्रियतरः। युद्धक्षेत्रमेवाधुना जयपराजयो निर्णेष्यति। उच्यतां तव स्वामी सम्राट् यत् चित्तौडराजपुत्रास्तन्मातृभूमेः खण्डकस्य तव सन्धिप्रस्तावं सधिक्कारं परावर्तितवन्तः,ते हि रणांगण एव स्वागतमाचरिष्यन्ति इति।" [3]

महाराणा प्रताप एक सफल योद्धा हैं। यद्यपि मुगल सेना के समक्ष इनकी सेना स्वल्प है, फिर भी इनका साहस और पराक्रम कथमपि कम नहीं है। [4] इनकी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मेवाड़ राजकुल मुगलों के सम्मुख कभी नहीं झुकेगा–

"किन्तु किं न जानीषे यन्मदीया प्रतिज्ञा सुदृढास्ति यावत् प्रतापस्य शरीरे प्राणास्तावन्मेदपाटस्य राजकुलादेकोऽपि क्षत्रियो मोगलानां सदसि न नामयिष्यति शीर्षम्।" [5]

महाराणा द्वारा अनादृत मानसिंह अपने शौर्य एवं शक्ति का बखान करते हुए मेवाड़भूमि को विध्वस्त करने की घोषणा करता है। इससे महाराणा प्रताप का क्षात्रतेज मुखरित हो उठता है और वे उसकी गर्वोक्तियों का प्रतिकार करते हुए उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं–

"(महासिं प्रसार्य) अरे प्रलापिन्! तावकं पितृष्वसुर्भर्तारं सम्राजमकब्बरं घोणया चणकांश्चर्वयितुं बलं शिशूदयान्वयस्याऽस्मिन्कालकराले करवाले विद्यते। मानसिंह! किमज्ञायि त्वया यतो मेवाडमहीकेतुर्युष्मदीये विशालवैभवे विमुह्य पादद्वन्द्वमवनंस्यति। किन्त्वया बोधि यतो निष्कलंकं शिशूदयकुलमात्मगौरवं मौद्‌ग्लोच्छिष्टाशनाशितृणां देशद्रुहामंघ्रितले विस्तारयिष्यति।" [6]

तथा–

"याहि याहि प्रलापिन्! देशद्रोहिन्! मौद्‌गलानां चरणरेणुकणान् मूर्ध्ने निधाय

राजस्थानतिलकायमान मेवाडाय भीतिं प्रदर्शयितुमागमः ।"[7]

वीरशिरोमणि महाराणा प्रताप सम्भावित युद्ध के अवश्यम्भावी होने पर जो उद्‌गार प्रकट करते हैं, उनमें वीरता की झंकार प्रेक्षणीय है–

"यस्यामहमासे दृढाशाबन्धो ह्यन्ततोगत्वा भूत्वैव न्यवसदियं केलिः। आव्रजेत् जयपराजयाभिधं नाटकमिदं क्रीडिष्यते महाहर्षेण सार्धम्। मानसिंह तत्सहचरा अपि यतोऽद्य साम्मुख्यं जातं विततसंसृतिमह संततिभिः संततिभिबाप्पारावलपादानाम्। अद्य चेद्रदना नाम्लीकृताः अद्य चेन्नो पूर्णास्वादः समास्वादितस्तर्हि मुधा मे प्रतापाभिधानम्।"[8]

महाराणा प्रताप के शौर्य एवं पराक्रम से प्रभावित राजगुरु जगमलसिंह (जगमाल) का राज्याभिषेक मध्य में ही स्थगित करवाकर मेवाड़ धरा की रक्षा में समर्थ इस वीरपुंगव को राज्याभिषिक्त करवाना चाहते हैं–

निखिलेऽपि मेवाडप्रदेशे स एव वीरो यः साम्प्रतं मेवारधरां रक्षितुं क्षमः।[9]

यहाँ प्रसंगवश महाराणा प्रताप और उसके सौतेले भाई जगमाल (जगमलसिंह) के राज्याभिषेक विषयक ऐतिहासिक विवाद की ओर संकेत करना भी समीचीन ही होगा। मूल ऐतिहासिक तथ्य यह है कि महाराणा उदयसिंह के 20 रानियाँ थीं और उनसे कुल 17 पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रताप, उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। परन्तु महाराणा उदयसिंह अपनी भटियाणी रानी से अत्यधिक प्रेम करते थे। परिणामस्वरूप उसके प्रभाव में आकर अपनी मृत्यु से पूर्व ही उसके पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। अतः महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के साथ ही उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर संघर्ष शुरू हो गया, क्योंकि तत्कालीन परम्परानुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होता था। कुछ सरदार जगमाल को सिंहासन पर बिठाना चाहते थे, जबकि अन्य सरदार प्रताप के पक्ष में थे। अन्त में प्रताप समर्थक सफल हुए और 28 फरवरी 1572 ई॰ में गोगुन्दा में प्रताप का राज्याभिषेक हो गया। इस राज्याभिषेक से रुष्ट जगमाल अजमेर के मुगल सूबेदार की सहायता से अकबर के पास पहुँचा। अकबर ने उसे जहाजपुर का परगना जागीर में देकर शाही सेवा में मनसबदार बना दिया।[10]

'राज्याभिषेक' एकांकीरूपक में महाराणा उदयसिंह द्वारा जगमल(जगमाल) को उत्तराधिकारी घोषित करने की सूचना[11] देकर जगमल और प्रताप के मध्य पारस्परिक संघर्ष की स्थिति का तो चित्रण किया है, परन्तु प्रताप को राजपद के प्रति अनुत्सुक दर्शाया है। मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम से वशीभूत प्रताप राजपद के लिए परस्पर संघर्ष करके मेवाड़ प्रदेश को दुर्बल नहीं बनाना चाहते हैं। वे तो बिना पद के ही देश–सेवा करने को समुत्सुक हैं–

"अद्य वीरभटानां कियानभावो मेवाडधरायाम्। अहं मिथः सम्मर्दन नैवेच्छामि तां तनुतरां कर्तुम्। अलंकरोतु नाम राजसिंहासनं भ्राता जगमलसिंहः। अहन्तु देशरतिरतः सामान्यः सैन्य इव तद्धिताय स्वप्राणानपि तृणं मंस्ये।"[12]

मेवाड़भूमि को रक्तपात एवं संहार से बचाने के लिए वे राजगुरु का शाप भी अंगीकार

कर लेते हैं–

"प्रतापः सुनिपुणं जानीते यत्प्रभोरयं शापो मामचिरं धक्ष्यति अहमंगीकरोमीदम् । परं यथाद्य मेवारजननीवीरसूनूनपेक्षते अहं केवलं राजपदप्राप्त्यै तेषां वीरपुंगवानां शोणितलेशमपि पतितं प्रेक्षितुं न पारयामि।" [13]

इतिहास में प्रताप समर्थकों द्वारा जगमाल को हटाकर प्रताप को महाराणा बनाने का उल्लेख है, परन्तु रूपककार ने राजगुरु की निष्पाप व निष्पक्ष वाणी और प्रताप के निःस्वार्थ भाव से प्रभावितहृदय [14] जगमल द्वारा स्वेच्छा से प्रताप को राजसिंहासन समर्पित करने का विवरण देकर जगमल को सन्तुष्ट दर्शाया है–

"आयाहि, तात प्रताप, अहं स्वेच्छया राजसिंहासनमिदं तव समर्पये।" [15]

महाराणा प्रताप एक सफल कूटनीतिज्ञ भी हैं। पंजाब प्रान्त में विद्रोह हो जाता है, जिसके दमन के लिए सम्राट् अकबर की प्रमुख सेना को भेजा जाता है। ऐसे समय में महाराणा प्रताप उदयपुर पर आक्रमण कर दुर्ग को स्वायत्त करने का प्रस्ताव रखते हैं–

"वयमद्यैवोदयपुरं प्रतिष्ठामहे। अकबरस्य सर्वाः प्रमुखसेनाः पञ्चनदप्रान्ते प्रवर्धमानं विद्रोहं शमयितुं तत्र प्रहिताः सन्ति। उदयपुरस्थस्य मोगलाधिकृतदुर्गस्य रक्षणाय साहाय्यं प्रदातुं न देहलीतः कापि सेना समायास्यति। उदयपुरे मोगलसेनां पराजित्य दुर्गं च हस्तगतं विधायास्मद्वाहिनी गोगुन्दां प्रति प्रस्थास्यते।" [16]

'अतिथि देवो भव'– भारतीय संस्कृति के इस उत्कृष्ट आदर्श के प्रति महाराणा प्रताप सचेष्ट हैं। यद्यपि राजा मानसिंह मातृभूमि की उपेक्षा कर मुगलों से सम्बन्ध स्थापित कर लेने के कारण देशभक्त महाराणा प्रताप का शत्रु है, तथापि अतिथि रूप में मेवाड़ आगमन पर वे उसका आतिथ्य–सम्पादन अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अमरसिंह द्वारा क्षत्रिय जाति के लाञ्छनभूत मानसिंह के लिए आतिथ्य सम्पादन के औचित्य के विषय में पूछे जाने पर महाराणा कहते हैं कि वे हमारे अतिथि बनकर आये हैं, इसलिए उनका सत्कार अवश्यमेव करणीय है–

"कथं न, यथा तेऽस्मदतिथयोऽभवंस्तथैव तेषां सत्कृतिरप्यवश्यं भविष्यति, ताञ्च त्वमेव विधास्यसि।" [17]

भारतीय संस्कृति के गौरव–रक्षक महाराणा प्रताप का यह उत्कृष्ट आदर्श अनुकरणीय है।

पुण्यप्रदेश मेवाड़ के कण–कण में शौर्य और स्वाभिमान की सुरभि व्याप्त है। ऐसी पुण्य–भूमि का विधर्मी विदेशियों की जूठन चाटने वाले देशद्रोहियों की जूठन के एक कण से भी अपवित्र होना महाराणा प्रताप को सह्य नहीं है। तब ही तो वे मानसिंह के भोजन कर चले जाने के उपरान्त अवशिष्ट समग्र सामग्री को उदयसागर में फिंकवाने और वहाँ की भूमि को गंगाजल से प्रक्षालित करने का आदेश देते हैं–

"यदा जग्ध्वा मानसिंहो, व्रजेत्तदाऽवशिष्टसामग्रीसन्दोह उदयार्णवार्णसि निक्षेपणीयः।

ततस्त्यां समग्रां गां स्वर्णदी–सलिलासारेण प्रक्षाल्य पावय, ज्ञातम्,एष तातादेशः, चिरन्तनैस्त्रिकालदर्शिभिर्ब्रह्मर्षिभिः कीर्तितकीर्तिमार्यावर्त दासेयताद्रढीयः शृंखलाभिः शृंखलयितृणां विदेशीयावशिष्टाशनाशितृणां देशद्रुहामशनावशेषान्ध सोऽत्र कणोऽपि न वसेत्।"[18]

मानसिंह ने जहाँ भोजन किया, उस स्थल को खुदवाने, गंगाजल छिड़कवाने और भोजन आदि को तालाब में फिंकवाने का उल्लेख अन्यत्र[19] भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार राजस्थान प्रदेश में प्रणीत संस्कृत रूपक–साहित्य में वर्णित सिसोदिया–वंशभूषण, वीर शिरोमणि, परमस्वाभिमानी, सफल कूटनीतिज्ञ, मातृभूमि एवं भारतीय संस्कृति के गौरव–रक्षक राजर्षि महाराणा प्रताप के समुज्ज्वल एवं अनवद्य चरित्र की गाथा स्वातन्त्र्यानुरागी प्रत्येक देशभक्त को युगों–युगों तक प्रेरित करती रहेगी।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जयपुर (राज॰)

: संदर्भ :

1. मेवाड़मार्त्तण्डम्, पृष्ठ– 15
2. प्रतापसिंहीयम्, पृष्ठ– 237
3. वही, पृष्ठ– 237
4. "प्रतापो युद्धस्य प्रतीक्षां कर्तुं न जानाति भीमसिंह, अनेन मम खड्गेन मोगलानां रक्तपिपासा सुबहो कालात्प्रतिपालिताऽस्ति, नाधुना सोढुं शक्नोति कालक्षेपम्। अस्माकं शतं गजाः त्रिसहस्त्रं वाजिनः सहस्रद्वयं च पदात्यः मुगलसैन्यानां तुलनायां स्वल्पीयसी भवतु मात्रा, तथापि मातृभूमेः स्थण्डिले शीर्षोपहारं चिकीर्षूणां राजपुत्राणां साहसबलं द्रक्ष्यसि।"–प्रतापसिंहीयम्, पृ॰ 238,239
5. वही, पृ॰ 234
6. मेवाड़मार्त्तण्डम्, पृ॰ 17
7. वही, पृ॰ 18
8. मेवाड़मार्त्तण्डम्, पृष्ठ– 27
9. राज्याभिषेकः, पृ॰ 3
10. डा॰ कालूराम शर्मा– राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, पृ॰ 163.164
11. "महाराज ! अहं भावत्कं भावं भद्रं भावयामि। भवानिदमेव वक्ष्यति उपरते महाराजे जगमलसिंहो राजपदेऽभिषिंच्यतामिति महाराजस्य निश्चयः।" –राज्याभिषेक, पृ॰ 3
12. वही, पृ. 5
13. वही, पृ. 6
14. अहो ! कीदृशी निष्कल्मषा वाणी, कीदृशः पक्षविरतो गुरुः, कीदृशश्च स्वार्थाद्विरतो भ्राता। अहमुभयोरपि प्रणतोऽस्मि।" –वही, पृ. 6

15. मेवाडमार्त्तण्डम्, पृ. 6
16. प्रतापसिंहीयम्, पृ. 248
17. मेवाडमार्त्तण्डम्, पृ. 13
18. वही, पृ.14
19. अ—राजप्रशस्तिमहाकाव्य, 4.21
    ब— अमरकाव्य, 16, 24—52

राजप्रशस्ति महाकाव्य में वर्णित मेवाड़ शासकों के धार्मिक अनुष्ठान

डॉ. (श्रीमती) वसुमती शर्मा

"राजप्रशस्तिमहाकाव्यम्" नामक संस्कृत का महाकाव्य महाकवि रणछोड़ भट्ट द्वारा लिखा गया। मेवाड़ महाराणा जयसिंह (वि.सं. 1737-1755) ने इस महाकाव्य को 25 बड़ी–बड़ी शिलाओं पर खुदवाया। शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों में भारत का यह सबसे बड़ा शिलालेख है। मेवाड़ महाराणा राजसिंह प्रथम (वि.सं. 1709-1739) ने गोमती नदी को रोकने तथा महासेतु बाँधने हेतु दो बड़े–बड़े पर्वतों के मध्य जलाशय का निर्माण करवाया तथा जिसे 'राजसमुद्र' नाम दिया। इस जलाशय के निर्माण के मुहूर्त्त से इसकी प्रतिष्ठा के उत्सव तक मेवाड़ राजपरिवार द्वारा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न किया गया जिसका सुन्दर वर्णन इस महाकाव्य में मिलता है। राजसिंह के काल में लिखे इस ऐतिहासिक महाकाव्य को 6 वर्ष पश्चात् जयसिंह के काल में शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाया गया था। इस महाकाव्य के अध्ययन से राजवंश की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के साथ ही धार्मिक स्थिति का भी पता चलता है। देवपूजन, यज्ञ, दानपुण्य, तीर्थ–यात्रा आदि अनेक धार्मिक कार्य राजपरिवार द्वारा समय–समय पर संपन्न किये जाते थे। इस प्रकार के धार्मिक कार्य, धार्मिक विश्वास एवं मान्यताओं का निर्वाह राजवंश की धार्मिक प्रवृत्तियों को इंगित करता है, वहीं मेवाड़ की संस्कृति के धार्मिक पक्ष को भी उजागर करता है।

यह महाकाव्य मुख्यतया मेवाड़ के महाराणा राजसिंहकालीन तीसवर्षीय प्रमुख धार्मिक अनुष्ठानों को वर्णित करता है तथा प्रत्येक धार्मिक कार्य का संवत्, तिथि, वार के अनुसार ब्यौरा भी देता है।[1] राजसिंह के पिता जगत्सिंह ने वि.सं. 1685 वैशाख शुक्ला तृतीया को राज्य प्राप्त किया। वि. सं. 1686 कार्तिक कृष्णा द्वितीया के दिन जगत्सिंह के पुत्र राजसिंह का जन्म हुआ।[2] जगत्सिंह ने बून्दी के स्वामी शत्रुशल्य के पुत्र भावसिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया[3] तथा एकलिंग के मंदिर पर स्वर्ण कलश, ध्वजा आदि चढ़ाये।[4] जगत्सिंह जबसे नरेश बना तब से वह प्रतिवर्ष चाँदी का तुलादान एवं अन्य दान करता रहा।[5]

राज्यप्राप्तेः समारभ्य तुलां रुप्यमयीं व्यधात्।
प्रतिवर्ष जगत्सिंहो दानान्यन्यानि वातनोत्[6]

सूर्यग्रहण के अवसर पर तुलादान एवं महादान

मेवाड़ शासकों की सूर्यग्रहण के अवसर पर सोने, चाँदी के तुलादान तथा कई प्रकार के महादान करने की परम्परा रही है। महाराणा जगत्सिंह द्वारा वि.सं. 1704 के आषाढ़ में सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकंटक में ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर की पूजा कर सोने का तुलादान किया।[7]

वि.सं. 1721 के माघ महीने में सूर्यग्रहण के अवसर पर राजसिंह ने दो हजार रुपयों का सोने का बना हिरण्यकामधेनु नामक महादान दिया, इसके साथ चाँदी की तुला तथा गजमौक्तिक नामक हाथी प्रदान किया।[8]

चन्द्रग्रहण पर कल्पलता दानः–

राजसिंह द्वारा वि. सं. 1729 के माघ महीनें में चन्द्रग्रहण के अवसर पर कल्पलता नामक दान दिया गया[9] जो दो सौ पचास पल सोने का बना था।

इसी अवसर पर एक सौ अस्सी तोले सोने के बने पाँच हल व उनके साथ भावली नामक एक गाँव के साथ 'पंच लाँगल' महादान दियां। इन दो महादानों में एक हजार अट्ठाईस तोले सोना लगा।[10]

महाराणाओं द्वारा जन्मदिन के अवसर पर भी अनेक प्रकार के दान देने की परम्परा रही है।

जन्मदिन पर दानः– नरेश जन्म दिन पर कई दान यथा कल्पवृक्ष दान, स्वर्ण पृथ्वी दान, सप्तसागर तथा विश्वचक्र नामक दान दिया करते थे।[11] वि. सं. 1727 में राजसिंह ने अपने जन्मदिन पर ' हेम हस्तिरथ' महादान दिया, जो एक हजार बीस तोले सोने का था[12] यथा–

हेम्नो विंशत्यग्रदशशततोलकनिर्मितं।
महादानविधानेन राजसिंहनृपो ददौ।।

इसी प्रकार वि. सं. 1731 में जन्म दिन पर 'विश्व चक्र' महादान दिया, जो पाँच सौ पल सोने का था।[13]

मूर्त्ति प्रतिष्ठा के समय दान :– मूर्त्ति प्रतिष्ठा के समय ब्राह्मणों को महागोदान, रत्नधेनु दान दिया जाता था।[14] वि.सं. 1704 वैशाखी पूर्णिमा को जगत्‌सिंह ने भव्य मन्दिर में श्री जगन्नाथराय की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई।[15]

अस्मिन्वंर्षे पूर्णिमायां वैशाखे श्रीजगत्पतिः।
श्रीजगन्नाथरायं सत्प्रासादे स्थापयन्बभौ।।

मूर्त्ति प्रतिष्ठा के अवसर पर गौसहस्र, कल्पलता, हिरण्याश्व नामक महादान दिये जाते थे।[16] इनके अलावा महागोदान, रत्नधेनु दान भी दिये जाते थे।[17]

सुवर्ण पृथ्वी महादान एवं अन्य महादान :– राजसिंह द्वारा 'सुवर्ण पृथ्वी' महादान वि.सं. 1730 में माघ महीने की पूर्णिमा को दिया गया। इस दान हेतु 28 हजार रुपये खर्च किये गये।[18] मेवाड़ नरेश ब्राह्मणों को 'उमामहेश्वर' का दान देते थे।[19] 'गजदान' हेतु पाँच सौ रुपयों का संकल्प करवाया जाता था तथा पाँच सौ रुपये इस निमित्त ब्राह्मणों को दिये जाते थे।[20] ब्रह्म दान पूर्णिमा को किया जाता था। राजसिंह ने वि.सं. 1713 में कार्तिक माह की पूर्णिमा के दिन वेदोक्त विधि से दो सौ पल सोने का बना ब्रह्मदान

एकलिंग जी में दिया।[21] वि.सं. 1726 कार्तिक कृष्णा द्वितीया को राजसिंह ने सौ पल सोने के बने पाँच कल्पद्रुम व उनके साथ सौ पल सोने का बना 'महाभूत घट" तथा एक हजार रुपयों के मूल्य का 'हिरण्याश्वरथ' महादान देकर ब्राह्मणों को संतुष्ट किया।[22] यह महादान नरेश द्वारा नवीन राजप्रासाद में प्रवेश के अवसर पर दिये गये।

अश्वमेध के निमित्त दान :– अश्वमेध का पुण्य प्राप्त करने के उद्देश्य से नरेश राजसिंह ने वि.सं. 1719 में पौष शुक्ला एकादशी को गुरु मधुसूदन को श्वेत अश्व पर बैठाया तथा 27 पाँव पैदल चले, उन्हें नौ हजार रुपये प्रदान किये तथा पुण्योपार्जन के लिये काशी भेजा।[23]

तड़ाग, वापी, जलाशय की प्रतिष्ठा के समय धार्मिक कार्य :– राजपरिवार के धार्मिक कार्यों में तड़ाग, वापी, जलाशय प्रतिष्ठा का जहाँ धार्मिक महत्व था, वहीं समाज उपयोगी कार्यों के तहत भी इसका महत्व था। नरेश, रानियाँ, कुंवर धार्मिक समाज उपयोगी कार्य समय–समय पर करवाते थे। निर्माण कार्य के पश्चात् प्रतिष्ठा भी भव्य समारोह से होती थी तथा अनेक धार्मिक कार्य इसके अंतर्गत होते थे। वि.सं. 1725 माघ शुक्ला दशमी को राजसिंह ने बड़ी गांव में तड़ाग की प्रतिष्ठा करवाई, जिसका नाम 'जनासागर' रखा। महाराणा ने इस अवसर पर चाँदी का तुलादान किया। तड़ाग के निर्माण में छः लाख अस्सी हजार रुपये खर्च हुए।[24] राजसिंह ने यह पुण्य अपनी दिवंगत माता जनादे को अर्पित किया।[25]

जनादे नामयुक्तायाः स्वमातुः स्वर्गसंस्थितेः।
अर्पयामास सुकृतं राजसिंह इदं नृपः ।। 8/50।।

राजसिंह के पुत्र जयसिंह द्वारा 'रंगसर' तडाग की प्रतिष्ठा करवाई गई। जलाशय की प्रतिष्ठा के समय सुवर्ण 'सप्तसागर' दान, सुवर्ण तुलादान दिया जाता था।[26]

रानियां भी वापी निर्माण करवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवाती थीं। वि.सं. 1732 माघ शुक्ला द्वितीया के दिन राजसिंह की पत्नी रामरसदे ने 'देबारी' घाटे में बनी वापिका की प्रतिष्ठा करवाई जिसके निर्माण में 24 हजार रुपये लगे थे।[27]

तीर्थयात्रा :– राजपरिवार के धार्मिक अनुष्ठानों, में तीर्थ यात्रा पर जाना, वहां दान पुण्य करना तथा वापस लौट कर दान पुण्य करने का विशेष महत्व था। राजपरिवार के सदस्य द्वारका, मथुरा, काशी, हरिद्वार जाते थे। वि.सं. 1698 में दीपावली के अवसर पर जगत्सिंह की माता ने द्वारका की तीर्थ यात्रा की तथा चाँदी का तुलादान एवं अन्य दान किये।[28] माता जांबुवती ने प्रयाग में चाँदी का तुलादान किया तथा काशी, अयोध्या तीर्थ स्थानों के दर्शन कर जब घर पहुँची तो वहां जाकर चाँदी का तुलादान किया।[29]

प्रयागे रजततुलां काश्ययोध्यादिदर्शनं
कृत्वा गृहे समायाता चक्रे रुप्यतुलागणम् ।। 5/44।।

राजसमुद्र का निर्माण तथा जलाशय की प्रतिष्ठा के समय किये गये धार्मिक अनुष्ठान :–
'राजसमुद्र' नामक जलाशय का निर्माण कार्य माघ कृष्णा सप्तमी, बुधवार वि॰सं॰ 1718 को मुहूर्त्तानुसार प्रारंभ किया गया।[30]

इस समय से ही नरेश की आज्ञा से महाकवि रणछोड़ ने इस सरोवर की प्रशस्ति की रचना प्रारंभ की। नरेश राजसिंह ने वैशाख शुक्ला 13, सोमवार वि॰सं॰ 1721 को नींव भरने का मुहूर्त्त किया। इसके बनने में 8 वर्ष, पाँच महीने एवं छः दिन लगे।[31] जलाशय का निर्माण महाराणा की धार्मिक प्रवृत्ति का द्योतक है। इसकी प्रतिष्ठा का उत्सव बड़े ही ठाठ–बाट से एवं धार्मिक अनुष्ठानों के तहत संपन्न हुआ। इसकी प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त वि॰सं॰ 1732 माघ शुक्ला दशमी, शनिवार को निकला।[32]

गते शते सप्तदशे सुवर्षे, द्वात्रिंशदाख्ये तपसीति राज्ञा।
पांडौ दशम्यां च शनौ गृहीतो, जलाशयोत्सर्ग विधेमुहूर्त्त : ।। 3/38 ।।

नरेश राजसिंह ने प्रतिष्ठा के एक दिन पूर्व उपवास रख कर देह शुद्धि की।[33] दूसरे दिन पुरोहित एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ नरेश ने स्वस्तिवाचन किया तथा पृथ्वी पूजा की।[34] फिर गणेश पूजन, गोत्र प्रवर्द्धक, गोत्र देवी पूजा तथा गोधन प्रदान करने वाली गोविन्द पूजा की।[35] गरीबदास एवं अन्य ब्राह्मणों को आसन दिया तथा उनके चरण धोये।[36] ब्राह्मणों का कुंकुम तिलक कर, अक्षत लगाये,मधुपर्क दिया, उनके हाथों में कुसुमसूत्र बांधा तथा दक्षिणा दी।[37] वस्त्र, मुक्तामणि के कुंडल, मणि जड़ित अंगूठियां, रत्न जड़ित कड़े, भुजबन्ध एवं सोने के यज्ञोपवीत प्रदान किये।[38] राजसिंह ने अनेक प्रकार के वाद्य बजवाये, हाथियों पर ब्राह्मणों को बिठाया तथा जनसमुदाय को एकत्रित किया[39] तथा नाना प्रकार के बाजे वालों को साथ लिया, स्त्रियाँ जल लाने के लिए कुंभ उठाये चल रही थीं।[40] इस प्रकार जल यात्रा कर वरुण की विधिवत् पूजा करके कलशों में जल भरवाकर तथा सुन्दर कलश उठाकर मधुर गीत गाती नारियाँ आगे चलीं।[41] नरेश मंडप में प्रविष्ट हुए। मंडप ब्राह्मण मंडली से सुशोभित था, यज्ञ वेदी पर कलशों की स्थापना कर राजसिंह ने मंडप के चारों कोनों में स्थापित देवताओं का पूजन किया तथा वास्तुपूजा कर वेदी स्थित देवताओं की पूजा की, उसने नवग्रहों, अधिदेवताओं और प्रत्यधि देवताओं की स्थापना की। रुद्र कलश की स्थापना करके राजसिंह ने पुरोहित, ब्राह्मणों के साथ जागरण किया तथा वेद निमित्त कार्य किये।[42] दूसरे दिन स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो महाराणा ने सुन्दर मण्डप में प्रवेश किया तथा इस अवसर पर अपने सहोदर, कुमारों, समस्त रानियों, पुत्र–वधुओं को, अपने वंश में उत्पन्न सब पुत्रियों, पुरोहितों की वधुओं तथा राजाओं की रानियों को बुलवाया। पटरानी के साथ वरुण की तथा समस्त देवताओं की पूजा की। जलाशय को रत्नाकर बनाने के लिए उसमें नव रत्न डाले। श्रेष्ठ मत्स्य, कच्छप तथा मगर छोड़े।[43] महाराणा ने बछड़े सहित गाय का विधिवत् पूजन किया तथा सरोवर का नाम 'राजसागर' 'राजसमुद्र' पुरोहित द्वारा बतलाया गया। महामंडप में होम, वेद पाठ, जप के साथ कुण्डों में अग्नि

प्रज्ज्वलित हुई।[44] हाथियों की कतारें, सुन्दर अश्वों की पंक्तियां तथा सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत पालकियों के साथ राजसिंह ने समस्त रानियों के वसनांचलों तथा स्वयं के दुपट्टे के छोर के पारस्परिक गठबंधन से नंगे पैर से राजसमुद्र की प्रदक्षिणा की। नरेश ने वहां आये लोगों को वस्त्र दान, द्रव्यदान आदि दिया। तदनन्तर महाराणा ने सुवर्ण तुलादान एवं सप्तसागर दान करने हेतु पृथ्वी, विष्णु, गणेश समस्त देवताओं तथा ग्रहों का पूजन किया।[45] होम, वेदपाठ, जप सभी कार्य क़िये।[46] राजसिंह पूर्णिमा के दिन सुन्दर मंडप में रानियों, पुरोहित, भाइयों, पुत्र, पौत्रों तथा मंत्रियों के साथ मंडप में पहुँचा तथा पूर्णाहुति दी एवं जलाशय की प्रतिष्ठा विधि को संपन्न किया।[47] सोने के 'सप्त सागर दान' हेतु सोने के सात कुन्ड बनाये तथा सामग्रियों से पूरित कर विद्वान्, पुरोहितों सें आशीर्वाद ग्रहण किया।[48] इस अवसर पर राजसिंह ने 'तुलादान' हेतु तुला दण्ड पर स्थित विष्णु का ध्यान कर हाथ में शालिग्राम की मूर्त्ति ली तथा आयुध को स्पर्श किया। राजसिंह विशाल स्वर्णतुला पर आरूढ हुआ। तब दासियों ने सुवर्ण मुद्राओं से भरी थैलियाँ तुला के पलड़े पर रखी। तुला में बारह हजार तोले सोना चढ़ा। इस प्रकार जलाशय की प्रतिष्ठा 'सप्तसागर' और सुवर्ण तुला का दान के अलावा ग्रामदान, गजदान, अश्वदान, पृथ्वीदान एवं कई प्रकार के अन्य दान दिये।[49] राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर महाराणा राजसिंह ने गांव घासा, गुढा, सिरथल, सालोल, आलोद, मंज्झेरा, धनेरिया, झाड सादड़ी, आंबेरी, असरोल, असाना और भावा–बारह गांव पुरोहित गरीबदास को प्रदान किये[50] तथा अन्य ब्राह्मणों को भी अनेक गांव तथा भूमि प्रदान की।[51]

राजसिंह की पटरानी ने इस अवसर पर चाँदी का तुलादान किया।[52] ब्राह्मणों, ऋषि, पुरोहितों को बहुत सा धन महाराणा द्वारा इस अवसर पर दिया गया।[53] राजसमुद्र जलाशय की प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, बूंदी, जैसलमेर के नरेशों के यहां हाथी, अश्व, अनेक जरीन वस्त्र, भेंट हेतु भेजे गये।[54] उपस्थित नरेशों को अनेक भेंटें दीं, इसके अलावा क्षत्रियों, चारण, भाटों को अश्व प्रदान किये।[55] शासकों, पंडित, कवियों, बन्दीजनों को भी अश्व, वस्त्र एवं धन दिया गया।[56]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कवि रणछोड़ भट्ट विरचित, 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' से मेवाड़ के नरेशों के धार्मिक अनुष्ठानों का सुन्दर परिचय मिलता है, जो तात्कालिक राजवंश की ही नहीं वरन् मेवाड़ की संस्कृति को भी उजागर करता है।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर।

: संदर्भ :

1. राज. म. 5/17
2. राज. म. 5/ 22,23
3. राज. म. 5/ 29
4. राज. म. 5/30
5. राज. म. 5/34,35
6. राज. म. 5/ 34
7. राज. म. 5/ 35,36
8. राज. म. 8/ 44,45
9. राज. म. 10/ 33
10. राज. म. 10/ 34,35,36
11. राज. म. 5/ 37,38,39
12. राज. म. 10/ 20,21
13. राज. म. 12/ 37,38
14. राज. म. 5/ 50
15. राज. म. 5/ 48
16. राज. म. 5/ 49
17. राज. म. 5/ 50
18. राज. म. 12/29,30,31
19. राज. म. 5/ 43,46
20. राज. म. 6/ 26,28
21. राज. म. 6/ 30,31
22. राज. म. 10/5–7
23. राज. म. 6/37–40,45
24. राज. म. 8/47, 48, 49
25. राज. म. 8/50
26. राज. म. 13/30
27. राज. म. 13/28,29
28. राज. म. 5/ 31,32
29. राज. म. 5/44
30. राज. म. 1/10

    पूर्णे सप्तदशे शते समतनोत्स्वष्टाशास्येब्दके
    माघे श्यामलपक्षके नरपतिः सत्सप्तमीवासरे ।
    घोघुंदावसतिजलाशयमहारंभं च तस्याज्ञया
    प्रारंभ रणछोड़ एष कृतवॉसतस्य प्रशस्तेस्तथा ।।१०।।

31. राजप्रशस्ति महाकाव्यम् ; संपा– डॉ. मोतीलाल मेनारिया, भूमिका, पृष्ठ– 20, 21

32. राज. म. 13/ 38
33. राज. म. 14/ 22.23
34. राज. म. 14/ 25
35. राज. म. 14/ 26
36. राज. म. 14/28, 29
37. राज. म. 14/30, 31 ,32
38. राज. म. 14/ 34, 35, 36, 38, 40
39. राज. म. 5/ 1,2,3
40. राज. म. 15/ 4
41. राज. म. 15/ 7
42. राज. म. 14/ 8.–11,13
43. राज. म. 15/14–18
44. राज. म. 15/ 21,30,31,33
45. राज. म. 16/7,10,11,32,35,37
46. राज. म. 16/ 38
47. राज. म. 17/ 1–6
48. राज. म. 17/ 12–15
49. राज. म. 17/ 22,23,24,28,35,38
50. राज. म. 18/1,2
51. राज. म. 18/ 3
52. वही, श्लोक सं॰ 18/9,10
53. वही, श्लोक सं॰ 18/ 23
54. वही, 20/1–17
55. वही, 20/18– 44
56. वहीं, 20/45–55

जयसिंह प्रशस्ति में जयसमुद्र–निर्माण का विवरण

डॉ॰ शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त'

मेदपाट में जहाँ शक्ति की पूजा होती रही– महाकाल के ही एक स्वरूप भगवान् एकलिंग के दीवानों ने अरिमुण्डों की माला कपालमाली को अर्पित की, वहीं शूलपाणि के दूसरे हाथ में विद्यमान कला का प्रतीक डमरू भी उपेक्षणीय नहीं रहा। महाराणा कुंभा ने अपने वंश एवं कार्यों के विस्तृत विवरण देने वाले बड़े–बड़े शिलालेख अंकित करवाये। कीर्त्तिस्तंभ व कुंभलमेरु जैसे दुर्ग बनवाये, संगीतराज की रचना की, एकलिंग माहात्म्य की रचना करवायी। इसी परम्परा में राजधानी परिवर्तित हो जाने के पश्चात् उदयपुर में रहकर मेवाड़ का शासन चलाने वाले महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र का निर्माण करवाया। इसी राजसमुद्र के निर्माण का विवरण देने वाले राजप्रशस्ति नामक महाकाव्य एवं राजरत्नाकर के सृजन की प्रेरणा दी। महाराणा कुंभा का एकल व्यक्तित्व दो भागों में विभक्त हो गया। महाराणा जगत्सिंह, राजसिंह और जयसिंह वास्तुरचना करते करवाते रहे तथा श्रीकृष्णभट्ट, रणछोड़भट्ट और सदाशिव काव्य रचना करते रहे।

महाकवि रणछोड़ भट्ट मेवाड़ की इस रचनाधर्मिता से महाराणा जगत्सिंह के समय से ही संबद्ध रहा। महाराणा जगत्सिंह ने उसे बुलाकर उमामहेश्वर दान दिया। अमरकाव्यम् में रणछोड़ भट्ट ने इसका उल्लेख किया है। अमरकाव्यम् की रचना कवि ने क्यों कीं? इसका स्पष्ट उल्लेख तो कवि ने नहीं किया है किन्तु इसका अनुमान कवि द्वारा रचित पंक्ति "अमरममरसिंहं त्वं कुरुष्वेकलिंग" से लगाया जा सकता है। कवि किसी अमरसिंह के अमर होने की कामना करता है। काव्य की विषय वस्तु के रूप में कवि वर्तमान राजवंश के तीर्थ–यात्रा हेतु "अम्बा" प्रासाद में आगमन, शत्रु द्वारा आक्रमण के कारण शिलादिक की मृत्यु से प्रारंभ होकर महाराणा राजसिंह के सिंहासनारोहण तक घटना को समेटा गया है, प्रतीत होता है। महाराणा अमरसिंह प्रथम द्वारा अकबर से की गई संधि के कारण प्राप्त अपयश को समाप्त कर अमरसिंह की कीर्त्ति को अमर करने का ध्येय अमरकाव्यम् की रचना के पीछे रहा होगा। महाराणा अमरसिंह के काल में सम्पन्न हुई संधि की बातचीत कर्णसिंह ने सुनिश्चित की और संधि के परिणामस्वरूप जगत्सिंह को मुगल दरबार में भेजा गया। कहते हैं महाराणा अमरसिंह ने इस संधि के उपरान्त राजकार्य में रुचि लेना बन्द कर दिया और ग्लानिवश महलों से बाहर नहीं निकले। महाराणा जगत्सिंह ने रणछोड़ भट्ट की सहायता संधि का औचित्य सिद्ध किया। यदि इस प्रकरण को पढ़ें तो ऐसा ही प्रतीत होता है।

रणछोड़ भट्ट की इस सफलता के उपरान्त महाराणा राजसिंह के काल में निर्मापित, बावड़ी, तालाब आदि पर रणछोड़ भट्ट द्वारा रचित प्रशस्तियाँ शिलांकित

करवाई गईं। राजसमुद्र के निर्माण की सम्पूर्ण घटना को विषय–वस्तु बनाकर दो संस्कृत काव्यों की रचना हुई, प्रथम सदाशिव नागर का राजरत्नाकर और रणछोड़ भट्ट की राजप्रशस्ति। संभवतः दोनों रचनायें महाराणा के सामने प्रस्तुत की गईं और पर्याप्त विमर्श के पश्चात् महाराणा जयसिंह की आज्ञा से राजप्रशस्ति को राजसमुद्र की पाल पर स्थित नौ चौकियों पर प्रस्तरांकित करवा कर लगवाया गया।

महाराणा राजसिंह ने कीर्ति के दोनों आधार विदेशी शक्ति से संघर्ष और आन्तरिक सुरक्षा एवं सम्पन्नता को ध्यान में रखते हुए समयोचित नीति अपनाई। महाराणा जयसिंह ने भी तदनुकूल पिता के काल में और स्वयं के काल में भी मुगल सत्ता से संघर्ष एवं भूमि को अदेवमातृक कर शस्य सम्पन्न बनाने की नीति चालू रखी। छप्पन प्रदेश में स्थित गोदा नदी को बांधकर जयसमुद्र का निर्माण करवाया। महाराणा जयसिंह द्वारा निर्मापित इस तड़ाग पर शिलालेख लगाने की दृष्टि से जयसिंहनृपप्रशस्ति की रचना महाकवि रणछोड़ भट्ट ने महाराणा अमरसिंह द्वितीय की प्रेरणा से की–

"अमरसिंहनृपाज्ञयादौ संप्रेरितस्तु
जयसिंहनृपप्रशस्तिकाव्यम् करोति रणछोडकवि।
प्रशस्ति रचिता मया औरंगजेबदिल्लीश
महासेनादि नाशिता।।"

इस समय तक कवि पर्याप्त वृद्ध हो चुका था। उसे डर भी था कि एक बार जो कृति नष्ट हो गयी वह पुनः नष्ट न हो जाये इसीलिए इधर–उधर से बची–खुची जानकारी को एकत्र कर कवि ने जयसिंह नृप–प्रशस्ति की पुनः रचना की। उसका अनुमान यह रहा होगा कि राजप्रशस्ति की भाँति ही जयसमुद्र के ऊपर यह प्रशस्ति भी शिलांकित होकर सुरक्षित रहेगी। किन्तु पता नहीं किन कारणों से इस प्रशस्ति को स्मृति में रहना बदा ही नहीं था। यह प्रस्तरों पर तो अंकित हो ही नहीं पाई। भारत के ग्रंथ भण्डारों से भी अनुपलब्ध रह गई।

आदरणीय प्रो॰ मूलचन्द पाठक साहब ने राजरत्नाकर का सम्पादन करने के लिये रॉयल एशियाटिक सोसायटी से राजरत्नाकर की माइक्रोफिल्म मंगवाई और भ्रमवश इस काव्य की माइक्रोफिल्म आ गई। इसी माइक्रोफिल्म के आधार पर यह लेख तैयार किया गया है।

इस काव्य के प्रथम सर्ग में कालभोज, खुम्मानसिंह, आलूसिंह, शक्तिकुमार, शालिवाहन, नरवाहन, अम्बाप्रसाद, कीर्तिवर्मा, नरपति, जसकर्ण, मातड़ि राजहंस, योगराज, वोर, वैरिसिंह, तेजसिंह, समरसिंह और कर्ण रावल का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में कर्ण रावल के पुत्र राहप और माहप में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष, माहप का राहप को मारने का षड्यंत्र रचना, षड्यंत्र का भेद खुल जाने पर राहप का सीसोदा जाना वर्णित है। कर्ण के पश्चात् इस वंश में नहपति, गजपति और छत्रपति हुये। जसकर्ण, नागपाल,

पूर्णपाल, पीथा , भुवनसिंह, भीमसिंह, और जयसिंह हुए। जयसिंह ने बघेला के पास महल बनवाये। जयसिंह के पश्चात् लक्ष्मसिंह हुये, उन्होंने गोगादेव को मार डाला। मालवा पर सिंह ने आक्रमण किया। लक्ष्मसिंह ने अवंती की रक्षा की। भाग्यवश चित्रकूट मालक के अधीन हो गया। उसने रत्नसिंह को चित्रकूट का स्थानपाल बनाया। लक्ष्मसिंह पर्वतों में चला गया। रत्नसिंह शासक बना। उसने सिंहल जाकर पद्मिनी से विवाह किया। इसे लेकर अल्लाउद्दीन व रत्नसिंह में संघर्ष हुआ। रत्नसिंह को अल्लाउद्दीन ने गिरफ्तार कर लिया जिसे चतुरतापूर्वक पद्मिनी ने बचाया। इस समय लक्ष्मसिंह भी आ गये। एक वर्ष तक म्लेच्छ क्षय हुआ। इस युद्ध में लक्ष्मसिंह मारे गये। तृतीय सर्ग में अरसी, अजेसी, हम्मीर, क्षेत्रसिंह, मोकल का वर्णन है। हम्मीर द्वारा चित्रकूट लेना, एकलिंग की नवीन मूर्त्ति का निर्माण क्षेत्रसिंह द्वारा जांगल और अजमेर पर अधिकार, लाखा द्वारा जावर का खनन प्रारंभ करवाना, मेरों का वध, काशी और गया को कर मुक्त करवाने, मोकल द्वारा कृषि कर्मरत ब्राह्मणों के वेद पाठ की ओर प्रवृत्त कराने, शाकंभरी तक जाना, पीरोज और मुहम्मद को भगाने, नागौर, सोजत, डीडवाना और बांसवाड़ा देकर रणमल्ल को मंत्री बनाने, द्वारका यात्रा, पुत्रोत्पत्ति व चाचामेरा द्वारा वध का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में कुंभा द्वारा अनेक विवाह, दुर्गों के निर्माण पितृवधिकों को दण्ड, मंदिर आदि का निर्माण, अतिदानशीलता, चित्त की व्याकुलता का वर्णन इसी सर्ग में कुंभा पुत्र रायमल के शासनकाल का भी संक्षिप्त वर्णन है। पंचम सर्ग में सांगा से लेकर रत्नसिंह, विक्रमादित्य, बनवीर का विवरण दिया गया है। षष्ठ सर्ग में उदयसिंह, महाराणा प्रताप, अमरसिंह, कर्णसिंह, जगत्सिंह, राजसिंह, जयसिंह और अमरसिंह का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग में कवि ने इस कृति का नाम जयसिंह–नृप प्रशस्ति दिया है। कवि ने लिखा है कि उसने प्रशस्ति की रचना पहले भी की थी किन्तु दिल्लीपति की सेना ने इसे नष्ट कर दिया। इस सर्ग में कुमार जयसिंह का औरंगजेब के पास जाने और पारस्परिक संधि का वर्णन है। दिल्ली से ही जयसिंह यात्रा हेतु चले गये थे। वापिस लौटने पर महाराणा जयसिंह पुत्र से मिलने कांकरोली आये, संवत् 1737 में औरंगजेब द्वारा मेवाड आक्रमण का वर्णन है। इसमें देवारी के घाटे, चितौड़ की तलहटी, जयसिंह का अहमदाबाद प्रयाण तथा देसूरी के नाल के युद्धं का वर्णन है। इसी सर्ग में महाराणा राजसिंह की मृत्यु का वर्णन है। अष्टम सर्ग में महाराणा जयसिंह तक समाचार, उसका राज्याभिषेक अकबर द्वारा भेंट, तहब्बर खाँ से युद्ध, औरंगजेब से संधि का प्रस्ताव किया। दलेल खाँ से युद्ध और अन्त में संधि का प्रसंग वर्णित है। नवम सर्ग में औरंगजेब के साथ संधि की प्रक्रिया का वर्णन है। दशम सर्ग में 1784 में महाराणा द्वारा क्षत्रिय कन्याओं का विवाह, बांसवाड़ा विजय का वर्णन इसके साथ ही पूर्व में दिये गये दानों का वर्णन है। एकादश सर्ग में कुमारपद में लगवाये गये कृष्णविहार बाड़ी का वर्णन है। द्वादश सर्ग में जयसिंह द्वारा एकलिंग जी की अर्चना और रणछोड़भट्ट रचित राजप्रशस्ति को शिलांकित करने का वर्णन है। त्रयोदश सर्ग से लेकर 17 वें सर्ग तक जयसमन्द के निर्माण का वर्णन है। 17वें तडागोत्सर्ग के समय दिये गये दानों तथा 18 वें सर्ग में उत्सर्गकर्म में आये हुए अतिथियों की विदाई का वर्णन है।

जयसमन्द का वर्णन–

राणा जयसिंह की आज्ञा से गजधरों ने तड़ाग बाँधने के लिये स्थल चुना। छप्पन देश के केनतोड़ा नामक ग्राम के पीछे की ओर स्थल का चयन हुआ। इस तड़ाग की सीमा के ग्रामों के नाम इस प्रकार हैं– गतोड़ा, पाटन, गामड़ी शुकोड़िया, भटवाड़ा, नाक, डींगला, सैमाल, अधवाड़ा–ऐसे 23 गाँव मेवाड़ की भूपति के है। इनके मध्य भूमि में विशाल तालाब बनवाने की योजना बनी। स्थान का चयन करने के बाद गजधर तालाब बनाने आ गये। मणियाल पर्वत दो भागों में बंट गया, इसके बीच में स्थित गोमती नामक नदी को बांधने का प्रयास महाराणा जयसिंह ने किया। संव्रत् 1743 के वैशाख शुक्ल दशमी को तड़ाग का खातमुहूर्त्त किया गया। आषाढ़ शुक्ल पंचमी को पाद पूरण (नींव भरने) का मुहूर्त्त किया गया। इस समय राणावत बखतसिंह, गोवर्धन, पंचोली आनंदीदास, मुकुन्दराज, तथा अन्य ठाकुरों ने वैश्यों और कायस्थों एवं अन्य कार्यकर्ताओं ने सेतु का मुहूर्त्त करवाया। पुरोहित रणछोड़राय ने सेतु का मुहूर्त्त करवाया। पृथ्वी पर स्थित महल और पर्वत पर स्थित महल का मुहूर्त्त राजकुमार (अमरसिंह) के हाथ से सम्पन्न हुआ। इस कार्य के मुख्य शिल्पी गजधर नाथू और जगन्नाथ थे।

निम्नभूमि में शिलाबद्ध मूल दृढ़ हो, इसलिए सेतु की नींव दृढ़ बनाने का संकल्प किया गया। रत्नगर्भा के गर्भ में स्थित रत्नाकर को खोदने के लिये उद्योग किया गया। ग्यारह गज जितना खनन हुआ। फिर नींव से जल निकालने का प्रयास किया। साठ घड़ी में बांस के पात्रों से जल निकाला गया। तदनंतर सेतु का पद बन्धन हुआ। तलशोधन कर पद बंधन करवाने के कारण वह सेतु स्थायी रहा। सेतु की लम्बाई 50 गज, ऊंचाई 51 गज, तल में चौड़ाई छः सौ गज, आगे 50 और विस्तार में 51 गज है। इस पर महल, मंदिर और बुर्ज बनाये गये। यह सेतु देवी के यहाँ 51 गज, बर्तुल में 75 गज, दूसरे बुर्जों पर 52 गज, 125 गज बर्तुल पर 250 गज 93 गज, 250 गज और 101 गज लम्बे हैं ,चौड़ाई सर्वत्र 50 गज ही है।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी संवत् 1744 को वर्षा हुई। 19 गज तक पानी आया। आषाढ़ में नव नौकारोहण हुआ। ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को राजरूप पंवार की पुत्री महाराणा जयसिंह की पत्नी कमला देवी के साथ वापी अधिवासन हुआ, सप्तमी को गौतारण हुआ, नवमी को मातृका स्थापन तथा जल यात्रा की गई। होम हुआ, कीर्त्तिस्तंभ पर महासूत्र लपेट कर सभी रानियों के निच्छोल से गठबंधन कर राजा ने पैदल प्रदक्षिणा की। इस तड़ाग की प्रदक्षिणा 32 कोश की हुई, फिर पूर्णाहुति हुई। इस अवसर पर स्वर्णतुलादान, ब्रह्मा, विष्णु, शिव की अर्चना की गई। यह तड़ागोत्सर्ग छप्पन देश में हुआ। अनेक प्रासाद, चौराहे, आरामगाह आदि बनाये गये। तालाब का निर्माण बाद में भी चलता रहा। संवत् 1756 में महाराणा मोक्षाकांक्षी हुये, उस समय तक जयसमुद्र 100 क्रोश की परिक्रमा वाला हो गया था।

महाराणा ने स्वर्णतुला; सप्तसागर, स्वर्णकल्पलता, हैमहस्तीरथ नामक दान दिये

जो क्रमशः 7,250 तोला, 3,333 आमलक, 38 तोला 10 माशा व 83 तोला (दो कल्पलतायें), 1000 तोला स्वर्ण लगा। इस अवसर पर आम्बेर दुर्ग के विष्णुसिंह, बीकानेर के अनूपसिंह, बूंदी के अनिरुद्धसिंह, रामपुरा के गोपालसिंह, डूंगरपुर के जसवन्तसिंह, और जोधपुर के अजीतसिंह सम्मिलित हुये। जिन्हें महाराणा ने विदाई स्वर्णाभूषण, वस्त्र, हाथी और घोड़े दिये। उत्सर्ग के दिन तक जयसमुद्र पर 18 लाख रुपयों का व्यय हुआ। ढेबर नामक ग्राम का नाम बदल कर जयनगर रखा गया। खेराड़ ग्राम के पास नदी रूप ओटा निकला। इस अवसर पर बनाये गये प्रासाद का नाम जयमंदिर रखा गया। कवि ने कल्पना की है कि जैसे भगीरथ गंगा लाये, ठीक उसी प्रकार महाराणा ओटा लाये।

इस काव्य के संबंध में उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2 में पं॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृ॰ 594 पर लिखा है कि----- "इस तालाब की प्रशस्ति की रचना भी की गई थी, परन्तु वह खुदवाई नहीं गई।" जिससे उक्त तालाब के विषय में अधिक हाल मालूम नहीं हो सका। हमें विश्वस्त रूप से उस प्रशस्ति की मूल लिपि का पता लगा, परन्तु बहुत उद्योग करने पर भी वह मिल नहीं सकी। हमें विश्वास है कि ओझाजी द्वारा संकेतित जयसमुद्र की अनुत्कीर्ण प्रशस्ति यही 'जयसिंह नृपप्रशस्ति' रही होगी। इससे पूर्व यह कवि 'राजप्रशस्ति' की रचना कर चुका था। अतः उद्देश्य जयसमुद्र पर उत्कीर्ण करवाना ही रहा होगा। संभव है कवि की मृत्यु अथवा महाराणा की अन्यमनस्कता अथवा अन्य कुछ कारणों से इसका उत्कीर्णन 'जयसमुद्र' पर नहीं हो सका।

पं॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने जयसमुद्र का वर्णन करते हुये लिखा है कि "गोमती, झामरी, रूपाहेल और बगार नामक छोटी नदियों का जल एकत्र होकर दो पहाड़ों के बीच ढेबर नामक नाके में होकर निकलता था। यहाँ बांध बाँधने के कारण लोग उसे ढेबर भी कहते हैं। इस तालाब के बनने में 10 गाँव डूब गये, जिनके चिह्न पानी कम होने पर अब भी नजर आते हैं। वि॰स॰ 1748 ज्येष्ठ सुदी 5 को इस तालाब की प्रतिष्ठा हुई, जिसके उपलक्ष्य में महाराणा ने तुला दान किया।"

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ओझा जी के ग्रंथ में आई चार नदियों के स्थान पर रणछोड़ भट्ट ने केवल गोमती नदी का ही नाम दिया है। किन्तु तालाब के आस-पास के ग्रामों, निर्माण प्रक्रिया, निर्माण कार्य में सहयोगी व्यक्ति, निर्माण एवं उत्सर्ग कार्य में लगे धन आदि की विस्तृत जानकारी इस काव्य से प्राप्त होती है। ढेबर नामक ग्राम का नाम बदलकर 'जयनगर' रखने और जयसमंद के महल का नाम जयप्रासाद रखने की चर्चा भी इस काव्य के अतिरिक्त कहीं दिखाई नहीं देती। एक दो स्थानों पर पं॰ गौरीशंकर हीराचंद ओझा के इतिहास पर विमति भी दृष्टिगोचर होती है। यथा रणछोड़ भट्ट ने महाराणा जयसिंह के मोक्षाकांक्षी होने का वर्ष 1756 दिया है जबकि ओझा जी ने यह संवत् 1755 लिखा है। इस काव्य में युद्धों का वर्णन, कृष्ण विहार बनाने का वर्णन, जयसमुद्र बनाने का वर्णन विस्तृत है किन्तु अमरसिंह एवं जयसिंह के संघर्ष

का किञ्चित् भी उल्लेख नहीं है। ओझा जी ने इस विषय पर काफी टिप्पणी की है, संभव है यह प्रकरण महाराणा जयसिंह और अमरसिंह दोनों की कीर्त्ति के लिये अनुपयुक्त समझ कर पं॰ रणछोड़ भट्ट ने छोड़ दिया हो।

पं॰ रणछोड़ भट्ट ने अपने काव्य में कुमारियों के विवाह का वर्णन भी किया है, जिसे ओझा जी ने विशेष महत्व नहीं दिया। महाकवि रणछोड़ भट्ट का यह काव्य जहाँ एक ओर संस्कृत–साहित्य में महाकाव्यों की समृद्धि बढ़ाता है, वहीं मेवाड़ के इतिहास से संबंधित अनेक पक्षों की विस्तृत जानकारी भी उपलब्ध करवाता है।

वरिष्ठ शोध अधिकारी
साहित्य संस्थान (I.R.S.)
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

अमरसार : एक ऐतिहासिक काव्य

डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित

वीरप्रसविनी मेवाड़भूमि सदैव ही भारतीय संस्कृति की पोषक एवं संरक्षक रही है। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में मेवाड़ का विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान है। मेवाड़ का राजवंश अपने शौर्य एवं त्यागमय जीवन के लिये तो भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है ही, भारतीय संस्कृति की प्रतीक देववाणी संस्कृत के कवियों और लेखकों को राज्याश्रय प्राप्त होता रहा है, फलस्वरूप उन राज्याश्रित लेखकों ने विविध विषयों पर संस्कृत में ग्रन्थों का प्रणयन कर संस्कृत साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की है। मेवाड़ में जो संस्कृत साहित्य उपलब्ध है, वह परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण है। यहां के संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अपरिमेय महत्व है। किन्तु मेवाड़ के लिखित इतिहास में उद्धरण देने के रूप में इसका स्वल्प उपयोग ही अभी तक किया गया है। साहित्यिक पक्ष के अनुशीलन एवं विभिन्न कृतियों में निहित सम्पूर्ण विषयवस्तु के ज्ञान की ओर विद्वानों का समुचित ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। मेवाड़ के संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य के अतिरिक्त ज्योतिष, संगीत, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, टीकाग्रन्थ एवं कोश आदि से संबंधित अनेकानेक रचनाएं सम्मिलित हैं।

मेवाड़ में उपलब्ध अधिकतर महाकाव्य व खण्डकाव्य ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित हैं। एक तो रणछोड़ भट्ट द्वारा विरचित "राजप्रशस्ति" दूसरा सदाशिव नागर द्वारा प्रणीत "राजरत्नाकर", "राजप्रशस्ति" राजसमुद्र की नौचौकी नामक पाल पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं और "राजरत्नाकर" की पाण्डुलिपि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में सुरक्षित है। ये साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महाकाव्य राणा राजसिंह प्रथम ने अपने शासन काल में उक्त दोनों विद्वान् कवियों को अपने आश्रय में रखकर लिखवाये। राजप्रशस्ति का मूल तो प्रकाशित हो चुका है पर राजरत्नाकर का संपादन एवं प्रकाशन अभी भी शेष है। इनके अतिरिक्त अमरसार, अमरकाव्य, संग्रामसिंहमहोदय नामक काव्य, जगत्सिंहकाव्य, अमरसिंहाभिषेककाव्य (अमरसिंह द्वितीय) वीरतरंग, वीरवंश वर्णन, वीरभूमि खण्डकाव्य हैं, जिनमें से प्रथम चार अप्रकाशित हैं और अन्तिम चार प्रकाशित। मुक्तककाव्यों में से जगत्सिंहाष्टक, राजसिंहाष्टक, शोध–पत्रिका में प्रकाशित हैं, किन्तु राजसिंहप्रभोर्वर्णन नामक मुक्तक काव्य अप्रकाशित है। राज्याभिषेक पद्धति, वेदोपनिषद्–पुराणादि ग्रन्थों से संकलित कर बनाई गई है।

अमरसार काव्य

अमरसार नामक काव्य की रचना महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के यश, नीति और धर्म के विषय में उनके मंत्री डूंगरसिंह की प्रेरणा से जीवंधर पण्डित ने की।[1] उक्त विषयानुसार यह काव्य यशखण्ड, नीतिखण्ड और धर्मखण्ड–इन तीन खण्डों में विभाजित है। यशखण्ड में राणा अमरसिंह के ऐश्वर्य एवं दिनचर्या का विस्तृत वर्णन है। नीतिखण्ड में नीतिविषयक और धर्मखण्ड में धर्म विषयक वृत्त विस्तार से दिया गया है।

यह काव्य राणा अमरसिंह के पौत्र राणा जगत्‌सिंह के शासनकाल में समाप्त हुआ है, ऐसा इसके निम्न विवरण से प्रतीत होता है। काव्य के लेखक जीवंधर ने अपनी इस कृति में इस काव्य के समाप्तिकाल के सम्बन्ध में एक श्लोक लिखा है। "शशिकलाशतवत्सरपूरणे द्वियुगबाणयुते शितफाल्गुने शशिकला" का अर्थ सोलह और द्वियुग के सन्धि (2, 4) करने से छः और गुणन (2x4) करने से आठ तथा बाण का अर्थ पांच होता है। इस तरह वि.सं. 1665 या 1685 फाल्गुन शुक्ला पंचमी इसका समाप्ति काल हो सकता है।[2] इस कालावधि में राणा अमरसिंह के राज्यकाल का अधिकांश भाग आता है। अमर सिंह का राज्याभिषेक वि.सं. 1653 माघशुक्ला एकादशी को हुआ[3] तथा वि.सं. 1676 माघ शुक्ला द्वितीया बुधवार को उनका स्वर्गवास हुआ[4] इनके पश्चात् इनके पुत्र महाराणा कर्णसिंह राज्यसिहांसन पर आरूढ़ हुए[5] फिर इनके पुत्र एवं महाराणा अमरसिंह के पौत्र राणा जगत्‌सिंह वि.सं. 1685 में राज्यसिंहासन पर आसीन हुए।[6] हो सकता है कि कवि ने काव्यरचना वि.सं. 1665 में प्रारम्भ की हो और वि.सं. 1684 में समाप्त की हो। कवि जीवंधर ने अपनी कृति अमरसार के अन्तिम धर्मखण्ड में श्लोक सं. 250 से राणा जगत्‌सिंह विषयक श्लोकों को लिखा है। इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ का अन्तिम भाग राणा जगत्‌सिंह के शासनकाल में लिखा गया है। राणा जगत्‌सिंह वि.सं. 1684 के फाल्गुन माह में राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए। एतदर्थ कवि के शशिकलाशतवत्सर श्लोक के अनुसार वि.सं. 1685 के लगभग इस काव्य का रचनाकाल सम्मत प्रतीत होता है।

कवि जीवंधर

अमरसार के रचयिता जीवंधर ने अपनी रचना में स्वयं का विशेष परिचय न देकर केवल अपना नामोल्लेख मात्र ही किया है।[7] कवि संस्कृत का विद्वान् होने के साथ–साथ प्राकृत का भी अच्छा ज्ञाता था, इस काव्य के मध्य में आये हुए प्राकृत के श्लोकों से ज्ञात होता है।[8]

डूंगरसिंह की प्रेरणा से इस काव्य का प्रणयन करने के कारण कवि जीवंधर ने स्तुत्य राजा के अतिरिक्त इस मंत्री का भी पर्याप्त स्तवन किया है। इनके अतिरिक्त राजपुरोहित काशीदास, धन्वंतरी वैद्य, सेनापति हरिदास का यशोगान किया है। अमरसार का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व उपर्युक्त व्यक्तियों के संबंध में कवि द्वारा हुआ वर्णन उल्लेखनीय है।

मंत्री डूंगरसिंह

कवि ने डूंगरसिंह के पूर्वजों का एवं उसका वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है। धरा का आभूषण नागौर नाम का नगर (मारवाड़ में) है। उसमें वणिक् जनों का अधीश लटु नाम का व्यक्ति था। उसके शंकर नामक पुत्र हुआ। शंकर के पुत्र का नाम सार्थ था। उसके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम डूंगरसिंह, प्रतापचन्द्र और कर्मचन्द्र थे। डूंगरसी (डूंगरसिंह) को राणा अमरसिंह ने सचिव पद पर नियुक्त किया था। स्वामिभक्त डूंगरसिंह सर्वदा उनकी सेवा में तत्पर रहता था।[9]

विद्यानुरागी डूंगरसिंह विद्वानों का सम्मान करने वाला था। उसके अनुराग के फलस्वरूप राणा अमरसिंह की सभा में अनेकानेक शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान्, वैद्य और पण्डित विद्यमान थे। उनमें से एक इस काव्य का रचयिता जीवंधर भी था, जिसने मंत्री डूंगरसिंह की प्रेरणा से अमरसार काव्य की रचना की।[10]

राणा ने राज्य के स्तम्भरूप में पुण्यवान्, गंभीर, सत्पुरुषों में अग्रगण्य, डूंगरसिंह को अनेक सुकृत कार्यों से परीक्षा कर शुभ नक्षत्र व मुहूर्त्त में मुख्य अमात्य पद पर नियुक्त किया।[11]

नीति, विनय और चातुर्यभाव से तीनों लोकों में अत्यधिक शोभा पाने वाला द्वेषलोभादि अवगुणों को तिरंस्कृत करने वाला, गुणगणरूपी मणियों का सिन्धु, सज्जनवृन्द का बन्धु था। वह गरीबों के दुःखमार्ग का विध्वंस करने वाला तथा राणा अमरसिंह से मनोनुकूल फल प्राप्त करने में समर्थ था। अरण्य को नगर में परिवर्तित करने की सामर्थ्य वाला, एक क्षण भी धर्म मार्ग से अविचल वह यश का सागर था। मधुर वचनों से मनुष्यों को वश में करने वाला डूंगरसिंह विद्वज्जनों से साक्षात् इन्द्र तुल्य ही समझा गया।[12]

डूंगरसिंह ने अपनी उदारता और दानशीलता से समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर निवास करने वालों को अपने वश में कर लिया। विधिविधानपूर्वक सर्वदा सबका हित करने वाला सुख प्रदाता था। अपने बुद्धि–वैभव से संपूर्ण नीति को निर्धारित करता था। अतुल ऐश्वर्य से युक्त जानकर म्लेच्छ नृपों ने भय से अपना देश छोड़ कर कानून का आश्रय ले लिया। उद्धत म्लेच्छ राजाओं को अपने ऐश्वर्य का मान छोड़ना पड़ा। डूंगरसिंह ने अपने नयबलरूपी वज्र से उनके अभिमान को चूर्ण–चूर्ण कर दिया। मंत्रबल से जैसे सर्प और देवता वश में हो जाते हैं वैसे ही अपने पुनीत कार्यों से सम्पूर्ण प्रजा को वशीभूत कर लिया। दानमूर्त्ति डूंगरसिंह ने अनेक दानशालाएं खुलवाईं। युद्ध और कोश में डूंगरसिंह साम, दान, दण्ड और भेद बल के प्रयोग में सफल हुआ।[13]

ऐसे उदार चरितवाले गुणों के सागर, न्याय के दीप डूंगरसिंह का कवि ने वर्णन किया है। कलिकाल में विद्वज्जनों के आश्रय डूंगरसिंह की प्रेरणा से इस अमरसार की रचना की। डूंगरसिंह पुरुषों का अभीष्ट फलदाता है, उसकी कीर्त्तिकौमुदी इस धरा पर विस्तीर्ण हो, इसी कामना के साथ कवि ने यशवर्णनाधिकार समाप्त किया है।[14]

राजपुरोहित काशीदास

राणा अमरसिंह के राजपुरोहित पद पर काशीदास प्रतिष्ठित थे, जो पल्लिवाल वंश में उत्पन्न पुरोहित 'सरसल' के वंशज थे। काशीदास सर्वदा धर्ममार्गगामी, कला और शास्त्रों के मर्मज्ञ, यज्ञकर्म को विधिविधान पूर्वक संपन्न कराने वाले तथा पौरोहित्यविद्या में पारंगत थे। अपनी स्थिरचित्तता एवं ध्यानावस्था के कारण योगियों को चमत्कृत कर देते थे। देवों के अभीप्सित यज्ञ–होमादि से और राजाओं को भी आनन्दित करते रहते थे। शास्त्रोपदेश के द्वारा धर्म और न्याय–मार्ग के दर्शक थे, दर्शनशास्त्र और अध्यात्म–विषय के अद्वितीय प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे तथा वे सर्वदा शुद्धान्तःकरण से विद्वज्जनों की सेवा में रत रहते थे। ऐसे सुयोग्य राजपुरोहित काशीदास के निर्देशानुसार धार्मिक वृत्ति का आचरण करते हुए राणा अमरसिंह अपने शासन–सूत्र का संचालन करते थे। उनकी राजाज्ञा को देवता भी मानते तो मुनष्यों का कहना ही क्या? पापों का नाश करने वाली काशी के समान ही साक्षात् काशीदास का दर्शन था।[15]

धन्वन्तरि वैद्य

राणा अमरसिंह के धन्वन्तरि नाम का वैद्य था, जो रोग–रूप हाथियों को नष्ट करने के लिए सिंह के समान था। राज्य में कोई भी रोग–ग्रस्त नहीं था। उसका ऐसा प्रभाव था कि जैसे स्वामी राणा अमरसिंह के प्रताप से तस्करों का निर्मूल नाश हो गया, वैसे ही रोगों का भी उच्छेद हो गया।[16] यह वर्णन राज्य की प्रजा के स्वस्थ होने तथा चोरों आदि के भय से मुक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

सेनापति हरिदास

राणा अमरसिंह ने अगणित हस्ति, अश्व, पदाति और रथों से सुसज्जित सैन्य–युक्त, शौर्य में सिंह के सदृश राजा हरिदास को अपना सेनापति नियुक्त किया। सैन्य का समस्त भार हरिदास पर छोड़ कर राणा अमरसिंह का क्षत्रियोचित सदाचार से सुखपूर्वक रहने लगे। हरिदास अपने वचनामृतों से सम्पूर्ण सेना को प्रसन्न रखता हुआ, सूर्य और चन्द्र की तरह अपने तेज एवं यश से सत्पुरुषों को हर्षित करने वाला हुआ। मन्त्र में, रण में, शस्त्रास्त्र विद्या में तथा शास्त्रों में कुशाग्रबुद्धि वाला वह गज, अश्व और मानवों के परीक्षण में निपुण था। वह शिल्पशास्त्र एवं कला का मर्मज्ञ तथा पुण्यवान् था।[17]

वह मर्यादा में सागर के समान था। अपने मन अनुकूल राणा ने उदारता में सुमेरु पर्वत और धीरवृत्ति से युक्त हरिदास को पाया। विक्रम और शक्ति में इसके समान वसुन्धरा पर इतर कोई नहीं हुआ।

अमरसार का खण्डानुसार संक्षिप्त–वृत

यशोवर्णनाधिकार

कवि ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण स्वरूप तीन श्लोकों में भगवान् एकलिंग का स्मरण करता है।[18] इसके पश्चात् कवि राणा अमरसिंह के वैभव का वर्णन करने में अपने को असमर्थ बतलाता हुआ अपने गर्व का परिहार करता है, जो कवि के विनय एवं शालीनता का परिचायक है। इस वर्णन में कवि पर कविकुलगुरु कालिदास का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कालिदास जिस प्रकार से अपने महाकाव्य रघुवंश में सूर्यवंश का वर्णन करने में अपनी असमर्थता बतलाता है, उसी शैली का अनुसरण कवि ने अपनी कृति के प्रारम्भ में किया है।[19]

इसके अनन्तर बारहवें श्लोक से कवि सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन प्रारम्भ करता है। इस चराचर विश्व के रचयिता ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्वरूप धारण किया। उर्ध्वलोक के लिए देवेन्द्र, अधोलोकार्थ शेषनाग और मृत्युलोक के लिए यशस्वी राजाओं की उत्पत्ति का निर्देश किया गया है। प्रभु एकलिंग ने राजा की सेवा–सुश्रूषा से प्रसन्न हो मेदपाद (मेवाड़) देश का स्वामित्व दिया और उसके लिए महादुर्गराज चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) को स्थापित किया।[20]

इसके पश्चात् कवि चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) दुर्ग का वर्णन करता है। जम्बूद्वीप के भारतीय आर्यखण्ड में देशों का अध्यक्ष मेदपाट (मेवाड़) देश है जो सर्वदा वापी, कूप, तड़ाग, क्षेत्र एवं सुन्दर नगरियों की रमणीयता से सुशोभित है। उसी देश में भगवान् नीलकण्ठ के आदेश से यक्षों ने सुन्दर भव्य चित्रकूट दुर्ग का निर्माण किया।[21]

इसके अनन्तर कवि ने मेवाड़ का वर्णन भुजंगप्रयात छन्द से प्रारम्भ किया है। भगवान् एकलिंग अभीष्ट वस्तु के प्रदाता हैं और सर्वदा अपने भक्तों के चित्त में विराजमान हैं। उनमें दुःखों का लवलेश भी नहीं है।[22]

इसके आगे मेवाड़ाधिपति के वंश का वर्णन है, जिन्होंने अपने प्रताप एवं बल से वैरिवर्गों पर विजय प्राप्त कर ली है जो एकलिंग महादेव की अनुकम्पा से मेवाड़ के ऐश्वर्य का उपयोग करते हैं। वे सूर्यवंशी राजा लोग 'राणा' पदवी से अलंकृत हैं। वे नक्षत्रों में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु पर्वत और देवों में इन्द्र के समान हैं।[23] महाराणा उदयसिंह के पुत्र उज्ज्वलकीर्त्तिमान वीरवर पराक्रमी महाराणा प्रतापसिंह हुए, जिन्होंने अखिल वैरिवर्गों को दास बनाया, जिसकी प्रतापरूपी दीपशिखा में अगणित म्लेच्छाधिपति पतंगों की भांति भस्मीभूत हो गये।[24]

कवि ने मानधनी महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र राणा अमरसिंह (प्रथम) का वर्णन 61वें श्लोक से प्रारम्भ किया है, जिसको कवि ने अपने काव्य का नायक चुना है, जो धैर्य, स्थैर्य, दानशीलता और करुणा का एकमात्र अवलम्बन है। अपनी नीति से अनेक राजाओं से अर्चनीय, अमृतरूपी वाणी से सेवक–जनों को संतुष्ट करते हुए उत्साही राणा अमरसिंह भूमण्डल के

आभूषण हैं। याचकगण कल्पतरु को, रुग्णावस्था में वैद्य को, नवोढ़ायें कामवश जैसे कामदेव को स्मरण करती हैं वैसे ही राणा अमरसिंह को अन्य देश के मनुष्य प्रतिक्षण अपनी स्मृति–पथ में बनाये रखते थे। वह राजा प्रजा के अनुरञ्जन में दत्त–चित्त, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में निरन्तर उत्तम रीति और शक्ति से लगे हुए थे।[25] उन्होंने सुकृत कार्यरूपी सागर के मंथन से लक्ष्मी को प्राप्त किया। दुर्म्लेच्छवंश का संहार करने में सर्वदा सन्नद्ध रहे, भगवान मधुसूदन की तरह मेवाड़मण्डल की रक्षा की। वे इन्द्र के समान शत्रुओं का दमन करने वाले थे। अहर्निश मानवों को अभीप्सित वस्तु प्रदान करते हुए तथा सर्वदा आश्रित जनों के दुःखों का क्षय करने वाले हुए। विद्वानों को विद्या से, वीरों को उत्साह युक्त वचनों से तथा आर्यजनों को धर्म से राणा अमरसिंह अपने वश में करते रहे।[26]

कवि ने घुणाक्षरन्याय का प्रयोग करते हुए सुन्दर कल्पना की है कि ब्रह्मा ने अमरसिंह के अतिरिक्त अन्य राजाओं का निर्माण घुणाक्षर–न्याय के रूप में किया है। राणा अमरसिंह के पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिये कवि ने बतलाया कि अपनी शैशवावस्था में ही तुरुष्कराज को जीत लिया था।[27]

भूमण्डल का सारभूत मेवाड़ देश है, उसमें चित्रकूट (चित्तौड़नगर) और डूंगरसिंह मंत्री से युक्त अमरसिंह का राज्य ही एक मात्र सार है। विश्व में चार ही रत्न हैं–चित्तौड़ दुर्ग, नागौर नगर, राणा अमरसिंह और मंत्री डूंगरसिंह।[28]

राणा अमरसिंह के सौभाग्यवान् कर्णसिंह (प्रथम) पुत्र हुआ। उन्हीं को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया। अमरसिंह के द्वितीय पुत्र भीमसिंह और तृतीय सूर्यमल्ल था। अंग, बंग, कलिंग, चौड़, गौड़, मरहट्ठ, मलिन्द्र, गुर्जर, अश्ववर, गोड़वाड़, वाग्वर के नृप अमरसिंह के चरणारविन्द की सेवा किया करते थे।[29]

नेपाल, गोपाचल (ग्वालियर), जालंधर, तैलंग और शूरसेन देशवाले राणा अमरसिंह की सेवा सुश्रूषा में निरत रहते थे। नागर चाल, बुगलाण, बहराम मालव और तौलव देश में उत्पन्न राजपुत्र तथा सोरठ आदि के ख्यातिप्राप्त योद्धा राणा अमरसिंह की सेवा में रहते थे।[30]

असंख्य मत्त मातंग उसके प्रांगण की शोभा बढ़ाते थे। अगणित हाथी, घोड़ों रथों और भृत्यवर्गों से विद्याधरों का मार्ग अवरुद्ध दृष्टिगत होता था। अपने पराक्रम से रिपुदल पर विजय प्राप्त कर गुंडवाण, (1) मुलतान के वीरगण अमरसिंह की सेवा में तत्पर रहते थे।[31]

दशों दिशाओं के राजा, रत्न, हाथी, घोड़े, मोती आदि बहुमूल्य वस्तुएं लाकर उपहार स्वरूप अर्पण करते थे। समुद्र पार से आकर फिरंगी अमरसिंह को जल–क्रीड़ा करवाते। कच्छ, सिन्धु सुहलार (1) और झालावाड़ के राजा उसे प्रमुदित करते थे। इस प्रकार अजेय शक्तिमान्, अपने शौर्य एवं तेज से अभिमंडित अमरसिंह सुखपूर्वक अपना कालयापन करता था।[32] इन वर्णनों से राणा अमरसिंह के करदाता एवं मित्र राजाओं का पता चलता है।

राणा अमरसिंह अच्छे योद्धा, हाथी, घोड़े, रथ, मंत्री गुरु और गुप्तचर इन सातों राज्य के सप्तांगों से युक्त होकर सुखपूर्वक ऐश्वर्य का उपभोग करता था। उसके अनेक सुन्दरातिसुन्दर रानियां थीं, जो कवि के लिए मातृवत् हैं तथा इस यशखण्ड में शृंगार वर्णन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, अतएव उनका वर्णन कवि ने नहीं किया है।[33] यहां से सुखवर्णन प्रारंभ होता है। प्रातः काल मांगलिक कार्यों से बन्दीजन स्तुति करते तथा राजन्य वर्ग नतमस्तक होकर अमरसिंह का यशोगान किया करते थे।[34]

रत्नों से जड़ित पादुकाओं को धारण कर द्वार पर स्वर्ग के सिंहासन पर बैठ कर वे भृत्यों को दर्शनों से लाभान्वित करते। शरीर शुद्धि के अनन्तर सुगन्धित तेल से शरीर का मर्दन करवाकर कुशल सेवक स्वर्ण कुम्भों द्वारा आवश्यकतानुकूल शीतोष्ण जल से एवं गंगादि तीर्थ जलों से स्नान करवाते, पश्चात् राणा अमरसिंह शिवालय में प्रवेश कर कर्पूर, केशर, चन्दन से शिवजी की पूजा करते थे। श्रीपति व्यास से धर्मार्थ से सारभूत पुराणों की कथा का श्रवण करते। श्रीपति व्यास को राणा अपना गुरु मानते थे। श्रीपति व्यास चारों वेद, शब्द–शास्त्र, तर्क, आगम, धर्मशास्त्र, भागवत, महाभारत, पुराणादि, नीतिशास्त्र, जाप्य होम विधि के अच्छे ज्ञाता थे।[35]

राणा अमरसिंह शास्त्रोक्त पद्धति के अनुरूप प्रातःकाल सुवर्ण और सौ गायों का दान कर परम्परानुसार नित्य माता के चरणारविन्द में प्रणाम करने के पश्चात् उसकी आज्ञा से राज्य सभा में जाकर राजाओं के अभिवादन स्वीकार करते थे।[36] प्रधानामात्य से आय व्यय का श्रवण करते। हाथी, घोड़ों और सारथियों को छुट्टी देते। घण्टा नादन से भोजन वेला के समय भाई, मित्रादि सहित भोजनालय में जाकर नाना प्रकार के सुस्वादु षड्रसों ये युक्त भोजन करते थे। बहुविध मिष्ठान्न एवं रसपान से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते रहते थे। फेणी, मण्डक, बड़े घेवर, दाड़िम, दाख, खजूर, आम, नींबू कूष्मांडादि से भोजन सुख का विस्तार होता था।[37]

नौकर द्वारा पूड़ी, खाजा, लड्डू, पूए और गोरस से युक्त भोजन थाल को तैयार किया जाता था। चन्द्रवत् धवल चावल, स्वर्ण सदृश गोघृत, सर्वदोप्यमुक्तादाल, सुसंस्कृत शाकादि का भोजन कर राणा इलायची आदि सुगन्धित पदार्थों से युक्त तीर्थ जल से आचमन लेने के पश्चात् ताम्बूल, सुपारी आदि से मुखशुद्धि कर राणा अपने सौख्य स्थान को गमन करते।[38]

मध्याह्न में शयनान्तर अन्तःपुर की अधिकर्त्री से अन्तःपुरी की व्यवस्था विषयक जानकारी प्राप्त करते थे।[39] तृतीय प्रहर में सैन्य का निरीक्षण होता और उसकी दक्षविशेषता की अनेक प्रकार से परीक्षा ली जाती थी।[40]

सायंकालीन आचार विधि का विज्ञ अमरसिंह राजद्वार पर पहुंच दीपों को प्रणाम करते थे। नारियों द्वारा मोतियों से युक्त आरती उतारी जाती थी।[41] स्वेच्छानुसार राजसभा में ठहरकर राजाओं को मुक्त करते और प्रासाद की ओर प्रस्थान होता जहां सब प्रकार के भोगोपकरण तैयार रहते थे। अप्सरा सदृश वेश्याएं नृत्य करतीं। विविध वाद्यों की ध्वनि के

निनाद से राजप्रासाद मुखरित हो उठता। नाटक खेले जाते। ताम्बूल, चन्दन, कर्पूर, अगरु आदि सुगन्धित पदार्थों से महल सुवासित रहता था। अपने पूर्व जन्मोपार्जित पुण्य से इस सुख का उपभोग करता हुआ राणा अमरसिंह अपनी दिनचर्या व्यतीत करता था।[42]

राणा अमरसिंह ने पट्टाभिषेक से पूर्व अनेक सुन्दर रूपवती लावण्यमयी राजकुमारियों के साथ विवाह किया, जो उसके लिए सुखदायिनी हुईं, यथा शची इन्द्र के लिये, रमा हरि के लिये, रोहिणी चन्द्र के लिये और रति कामदेव के लिये हुईं थी।[43]

राणा अमरसिंह सम्यक् प्रकोरण पारिवारिक जनों से प्रवर्धित सुख का, विभिन्न दिशाओं से आई हुई समृद्धि से एवं छात्र चामरादि राज्य लक्षणों से युक्त धरा पर धवल चन्द्र कौमुदी के सुख का अनुभव करते थे।[44]

कभी–कभी राणा मस्त हाथियों का युद्ध, मल्लों की कुश्ती एवं काव्यशास्त्रविनोदेन के अनुसार प्रचीनाख्यानों से मनोविनोद कर समय व्यतीत करते। बसन्त ऋतु में गजराज पर आरूढ़ होकर वन में भ्रमणार्थ जाते, कभी घोड़े की सवारी, शिविका (पालकी) में बैठना, ग्रीष्म ऋतु में जल क्रीड़ा, वर्षा ऋतु में अगरु धूप से सुवासित, राज प्रासाद में ललनाओं के साथ रमण करते थे। शरद्हेमन्त और शिशिर ऋतुएँ भी इसी हर्षोल्लास में व्यतीत होती थी।[45] उपर्युक्त वर्णनों का दूसरे शास्त्रों में वर्णित राजा की आदर्श दैनिक चर्या से साम्य प्रकट होता है।

नीतिखण्ड :

नीति खण्ड के प्रारम्भ में कवि परमात्मा और गणपति का स्मरण कर राणा अमरसिंह की नीति का वर्णन करता हैं। इस नीतिखण्ड में युक्ति, शास्त्राभ्यास, सदाश्रय, विचार और साधारण नीति नाम से पृथक् प्रकरण दिये हुए हैं। इन प्रकरणों में एतद् विषयक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है कि जीवन में नीतिज्ञ को ही सफलता अधिगत होती है, कवि ने अनेकोदाहरणों से इसकी पुष्टि की है।[46]

भृत्य जनों से अनीतिमान् राजा छोड़ दिया जाता है। गुरु और राजा भी विनयी पुरुष से प्रसन्न रहते हैं। सद्युक्ति और विवेक के आधार पर ही वटवृक्ष विशालता को प्राप्त होता है, अन्यथा उसका स्वल्पबीज कहां और उस वटवृक्ष की विशालता कहां ? रत्नाकर सागर कहां ? देवनदी मन्दाकिनी कहां ? स्तनपायी वत्स कहां ओर पीवरस्तनी गौ कहां ? इन सभी के मूल में सत् पुरुषों की सद्नीति का ही फल निहित है। ऊष्मा कहां? तपनोष्ण धरा कहां ? वर्षा का बरसना कहां ? गर्भ का संस्थान कहां और बालक की उत्पत्ति कहां से ? गगनमार्ग में सूर्य विचरण करता है। अपने पंखों से विहग शनैःशनैः उड़ने की शक्ति प्राप्त करते हैं। यथावसर वृक्ष फलों से युक्त हो जाते हैं, यह सब कुछ सदाशय का ही फल है। मदोन्मत्त गजराज के कुंभ स्थल को विदीर्ण करने वाला सिंह मृग की तरह वश में कर लिया जाता है, एक मात्र सद्युक्ति संगत बुद्धिमत्ता का ही परिणाम है।[47]

विवेकपूर्ण सत्पात्र को दिया गया दान यशस्कर होता है। नीति पूर्वक कही गई वाणी निश्चय ही विजयदायिनी होती है। नियमानुकूल युक्ति निर्दिष्ट आसन वीर्यवर्धक होता है, युक्ति रहित ये सभी अनर्थकारक होते हैं। कहां से लाया गया जल और मिट्टी इन दोनों के संयोग से स्निग्ध मृत्तिका द्वारा घट का निर्माण होता है। पराङ्मुख राजा सामने स्थित क्रुद्धशत्रु और युक्ति से व्यवहृत अपनी स्त्री भी अनुगामिनी हो जाती है। स्वभाव से नीचे की ओर जानेवाला जल भी ऊपर की ओर ले जाया जा सकता है, अधिक क्या ? प्राणों का अपहरण करने वाला विष भी विधिपूर्वक सेवन करने से पीयूषवत् गुण को देनेवाला सिद्ध होता है। बलिष्ठ देवता वशीभूत हो जाते हैं। अति कठोर वज्र का भेदन भी संभव है। यह सभी सद्‌युक्ति के फलस्वरूप इस चराचर विश्व में दृष्टिगत होते हैं, जो असाध्य कुछ भी नहीं है।[48]

कवि जीवंधर इस सहायक प्रकरण में सहायता से इच्छित दुर्लभ कार्य की सिद्धि भी होती है, इसका अनेक उदारणों से समर्थ करता है। इस वसुंधरा पर पवन की सहायता से पावक नानाविध धान्य एवं रसों को परिपक्व करता है। राजा हस्ति, अश्व और पदाति आदि के बल से दुर्दमनीय शत्रु को परास्त कर देता है। नौका द्वारा अगाध सागर के जल पर तैरा जा सकता है।[49]

अपनी इष्ट सिद्धि के लिये कभी किसी से विरोध नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की गुरु एवं शास्त्रोक्त बात को मानकर मानव साहाय्य कर अपने सभी अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करें इस तरह से सहायता का महत्त्व अंकित किया गया है।[50] इसके अतिरिक्त मनुष्य को शास्त्राभ्यास सतत करते रहना चाहिए। इस प्रकरण में इस बात पर कवि द्वारा उदाहरण देकर जोर दिया गया हैं। यथा स्वर्ग, पाताल, तल, शिवालय, सिन्धु, चन्द्रमा और पर्वत के मस्तक पर स्थित जो कुछ भी है वह सब कुछ जाना जा सकता है।

शृंगार, हास्य, रौद्र, करुणादि रस शास्त्राभ्यास से ही अवगत होते हैं। चौंसठ कलाओं का विज्ञान एवं तीनों जगत् का विज्ञान एवं तीनों जगत् का परिज्ञान शास्त्रों का चिन्तन करना चाहिये, इससे मनुष्य अपने इच्छित फल को अधिगत करता है और राजा, योगी आदि में निःसंदेह मान्य होता है।

शास्त्रावबोधी पण्डित को यश, वैभव, गुण और वांछित वस्तु का लाभ होता है, इसलिये निरन्तर शास्त्राभ्यास करते रहना चाहिये।[51]

कवि अब सदाश्रय के महत्व को बतलाता है। स्वर्ग, मृत्यु लोक और पातांल में सदाश्रय के बिना कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। राजा का आश्रय बहुत बड़े भय को दूर करने वाला होता है। देवाश्रय से होने वाला अनिष्ट नष्ट हो जाता है। सद्‌गुरु के अवलम्बन से जड़त्व का नाश होता है।[52] जलाश्रय से पद्म और राजाओं की सभा में विद्वान् सुशोभित होते हैं। ग्रामीण लोकरूपी आत से तृप्त इस भूमंडल पर उक्त दोनों दृष्टिगत नहीं होते हैं। अर्थात् सूर्य से संतप्त वसुधा पर कमल और मूर्खों के पास पण्डित नहीं रहते हैं, सदाश्रय से ही सद्‌वस्तु का दर्शन होता है। इस

पृथ्वी पर जो जहां उपयुक्त होता हैं। वही कल्याणप्रद होता है और शोभावर्धक माना गया है, यथा कज्जल नेत्र में न लगाकर भाल पर लगाया जावे और नेत्र में कज्जल लगाने के बजाय कुंकुम लगाना शोभादायक नहीं होता है। कहा गया है कि विपरीत स्थान पर प्रयुक्त पदार्थ सुन्दरता को बढ़ाने वाले नहीं होते हैं। [53]

निपुणता उसकी मानी जाती है और विशिष्ट स्नेह वही प्राप्त करता है जो योग्य स्वामी का आश्रय प्राप्त करता है। विद्या उसी की फलवती होती है, जो सत् प्रयत्न में रहता है। सम्पूर्ण रूप से अपने अनुरूप किया हुआ अभ्यास, गुणों के सागर आचार्यवर्य के तत्वावधान में रहने पर ही इष्ट साध्य की पूर्ति होती है। [54]

दानशीलता, सुजनता, यश, सौभाग्यशाली होना, राज्य, पाण्डित्य, शौर्य, सत्कन्या, कृषि, मंत्र, औषधि और विज्ञान ये सभी अच्छी तरह से परीक्षा किये हुए गुणवान् व्यक्ति के पास इच्छानुसार निश्चित ही अधिगत होते हैं। घने जंगल में रहता हुआ वृक्ष, कुसुमपत्रादि का भक्षण करने वाला शुक सत्संग के आश्रय से गुण को जानने वाला हो जाता है। अत्यन्त कठोर मिट्टी कुम्भकार के अवलम्बन से घड़े आदि में परिणत हो जाती है। जड़ मन शीलवान् व्यक्ति के समाश्रय से निपुण हो जाता है। अशोभनीय भी शोभनीय होता है। रथ्या (गली) का जल मन्दाकिनी के आश्रय से सुरेश्वर के लिये उपयोगी होता है, सारांश यही है कि सर्वदा व्यक्ति को सत्संग और सदाश्रय में रहना चाहिये। [55]

कवि का कथन है कि व्यक्ति सर्वप्रथम विचार करता है तदनन्तर उसे क्रिया का रूप देता है। देवता, राजा और सर्प के विषय में सेवा, वणिक् कर्म और उपचारादि कृत्यों में सर्वत्र पहिले सम्यग् विचार कर ही कार्य किया जाता है, पण्डितों द्वारा अच्छे विचार की प्रशंसा की गई है। बिना विचार किये हुए यदि व्याघ्र और सर्पों युक्त तथा तस्करों से पूर्ण मार्ग में जाता है तो उसकी इष्टसिद्धि में बाधा होती है और दुष्टों से विनाश को प्राप्त होता है। [56]

योजनाबद्ध विचार करने के पश्चात् कुम्भकार घड़े, प्याले आदि पात्र अच्छी मिट्टी से निर्मित करता है किन्तु बिना विचार के मानव सुवर्ण को प्राप्त करके भी कुछ नहीं कर सकता है। तप, जप, मंत्र और अच्छी औषधि का सेवी कृषि शास्त्र एवं सुन्दर चित्रों का बनाना सभी कुछ अच्छे विचारों से ही सम्भव है। धन, बल , बुद्धि, अभीष्ट वस्तु सब कुछ अच्छे तर्क शक्ति से भी प्राप्त होते हैं। राजा और भृत्यगण सत् तर्क के फलस्वरूप ही सुख के कारण सिद्ध हुए हैं। [57]

इन विशिष्ट विषयों पर कवि अपने विचार व्यक्त करने के अनन्तर साधारण नीति की ओर अपने विचार प्रदर्शित करता है। विचारवान् चतुर व्यक्ति नीतिपरक उपदेश सुनकर उसी प्रकार गुण और दोषों को अलग अलग कर देता है यथा हंस दूध और पानी को। दुष्ट हित के वचन कहने पर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता है जैसे सर्प दूध पीकर के विष का वमन करता है। महिष सम्पूर्ण सरोवर को कीचड़ युक्त बना देता है और शिला अपनी कठिनता छोड़कर मृदुभाव को प्राप्त नहीं होती है। मनुष्य, राक्षस, अपनी उत्कृष्ट विद्या, स्वर्ग, ऐश्वर्य सद्वंश ये

सभी उत्तम शील के कारण ही सुखकर होते हैं। इहलोक और परलोक में एक मात्र सुख का कारण सद्बुद्धि और विनय ही है, सर्वदा विनयी व शालीन होना चाहिये।[58]

धान्य की अभिवृद्धि के लिये खेतों को कंटक, वृक्ष और पत्थरों से मुक्त कर अच्छी तरह साफ किया जाता है। वैसे ही चोर, वाचाल और दुष्टों को भी अपनी प्रजा में राजा को नहीं रखना चाहिये। अयोग्य व्यक्ति को अधिकार देने से जन–जीवन क्लेशमय हो जाता है। अतः समर्थ और योग्य पुरुष को ही मुख्य अधिकारी पद देना चाहिये। मंत्री, गुरु और हित चाहने वालों से यदि हितकारक कठोर वचन कहे जाते तो वे औषधि की तरह विपत्तिनाशक होते हैं इसलिये उन वचनों का श्रवण करना चाहिये।[59]

स्वामी प्रतिदिन धर्माचार में परायण जनों की उत्साहदायिनी उत्तमोत्तम भारतीय नीति को जानें। धैर्य, स्थैर्य, सुवीर्य, शक्ति और महिमा से युक्त स्वयं परीक्षा करके बुद्धिमान् व्यक्ति सेवकों को गांव, हाथी, घोड़े, वस्त्रादि देकर संतुष्ट रखें। काम, क्रोध,लोभ, मोह ,मद, मात्सर्य, इन षड्दोषों से युक्त मानव को राजसभा में प्रवेश नहीं देना चाहिये।[60]

रूपवती, लावण्यमयी, कलाप्रवीणा, विनीता, मात्सर्य, राग–द्वेषादि से वर्जित अपने पति में भक्ति रखने वाली, उच्चकुलीना स्त्री का प्रधान पट्ट महिषी पद के लिये राजा को चयन करना चाहिये। कोई नृपति यदि अपने विपक्षीवर्ग पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो अपने अन्तरंग काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओं का नाश क़रना चाहिये।[61]

इसमें कोई संदेह नहीं, मद से उद्धत मिथ्या सम्मान चाहने वाले व्यक्ति के लिये ऐसा जीवन एकमात्र विडम्बना है। सूखे काष्ठ की तरह वे कभी नहीं झुकते हैं। महाक्रोधाग्नि में जलता हुआ मानव अन्ततोगत्वा भस्मीभूत हो जाता है, यह धुव्र सत्य है।[62]

अनेक पुण्य पुनीत मार्गों से भ्रमण किया ज़ाय, प्रचण्ड सूर्य किरणों के आगे तपस्याचरण में रत रहे किन्तु जब तक सुनीति रूपी काम धेनु का अवलम्बन नहीं लिया जावेगा तब तक इस भूतल पर मुक्ति नहीं हो सकती।[63]

निम्बवृक्ष को चाहे मधु से सिंचन करो वह अपनी कटुता नहीं छोड़ता। गौदुग्ध के मिश्रण से चिरायता अपनी तिक्तता दूर नहीं करता, उसी प्रकार दुष्ट का बहुविध उपकार किया जाय तो भी वह कदापि अपनी चित्त विकृति का त्याग नहीं करता है।[64]

जड़ता रूपीं अंधकार को व्याप्त नेत्रों वाले पुरुष के हृदय में शिक्षा रूपी उत्तम मणि का प्रवेश नहीं होता है जब तक हित और अहित से अन्वेषी मंदमति वाले पुरुष को गुरु आदेश रूपी अंजन शलाका नेत्र में नहीं लगाई जावे तब तक उसका जाड्य, अज्ञानान्धकार दूर नहीं होता है।[65]

धन, मान और वासना से यह आशारूपी पिशाची कदापि तृप्ति को प्राप्त नहीं होती है। सदानंद पद को प्राप्त हुए सज्जन पुरुष संतोष के बिना इसका निग्रह नहीं कर सकते, इसलिये संतोष ही परमानन्द का प्रदाता है।[66]

धर्मखण्ड

कवि अपने इस काव्य अमरसार में धर्मखण्ड नामक प्रकरणान्तर्गत सर्वप्रथम शिव और गणेश की वन्दना कर धर्म के महत्व को बतलाता है। धर्म सभी मानव, देवता, शेषनाग और राजाओं के प्रमोद को देने वाला है। द्रव्य, बल, आयु और ऐश्वर्य का प्रदाता है। सद्बुद्धि वाले सुन्दर कला और विज्ञान के वेत्ताओं को अपने अभीप्सित प्रयोजन के लिये धर्माचरण करना चाहिये।[67]

भ्रमर पुष्पित केतकी को, वनगज सल्लकी को, मत्स्य सिन्धु को, मानव असंख्य पुण्यों को देने वाले तीर्थ को, व्यवहारी रत्नादि को, देवता सुमेरु पर्वत को और योगी प्रभु को इस प्रकार की सम्पत्तियाँ वैसे ही धार्मिक पुरुष को अधिगत हो जाती हैं।[68]

किसी भी वैशिष्ट्य का अहंकार नहीं करना चाहिये क्योंकि विद्यावान् जड़ता को, धनवान् दारिद्र्य को, निरोगी व्याधि को, राजा अनुचरत्व को, शूर भीरुता को, धैर्यशाली चंचलता को प्राप्त हो जाता है। अतएव किसी को गर्व नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस पृथ्वी पर अभिमान करने का अवसर ही नहीं है।[69]

वृक्ष पर कितने ही पत्ते और फल उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार वंश में भी बालक, वृद्ध, तरुण, अश्वादि अपने ही कर्म से संसार में आते हैं और चले जाते हैं।[70]

इस असार संसार में मानव, स्त्री, द्रव्य में अभिलाषा रखते हैं। धर्मपालन में इच्छा नहीं रखते। सर्वदा आरोग्य के इच्छुक प्राणी पथ्य और औषधि सेवन में रुचि नहीं रखते और तपस्या में संलग्न रहकर गुरुचरणों में आस्था भी नहीं रखते। यदि इनका पालन करते हुए जगन्नियन्ता जगदीश्वर के ध्यान में मग्न रहे तो सभी वांछित फलों की प्राप्ति हो सकती है।[71]

कान्ता अपने बल को क्षीण करने वाली, पुत्र धन का अपहरण करने वाले, सहोदर भाई संपत्ति में भाग को लेनेवाले, सेवक वित्त का अपहरण करनेवाले, यहां तक कि ये अपनी उपयोगी रसों का उपभोग करने में उत्सुक दृष्टिगत होते हैं। एकमात्र अपना हित करने वाला धर्म ही है; अतः इसके पालन में तत्पर रहना चाहिये।[72]

धन, आयु और प्रभुत्व नदी के प्रवाह सदृश हैं। राजा द्वारा प्रदत्त मान विकसित पुष्प के समान हैं। अखिल बन्धुवर्ग इन्द्रजाल की तरह हैं जो दृष्टिगत होते हुए भी क्षण में अदृष्ट हो जाते हैं अर्थात् सांसारिक सभी पदार्थ नश्वर हैं।[73]

अनेक प्रकार से उपार्जित वित्त व्यर्थ है, देवबल भी निस्सार है। सकल शास्त्रों के अभ्यास से जनित विज्ञान, सत्संग, अथवा दुष्ट संसर्ग सभी कुछ व्यर्थ हैं। यदि प्राणी ने इस मृत्युलोक में ईश्वर का भजन व लोकोपकार, सद्बुद्धिपूर्वक दान पुण्य नहीं किया तो सब असार है।[74]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि अमरसार अमरसिंह का यशोगान होने के साथ ही नीति, धर्म आदि का भी महत्वपूर्ण कोष है। और इस दृष्टि से इसका राजशास्त्र,

नीतिशास्त्र, तथा धर्मशास्त्र आदि से तुलनात्मक अध्ययन भी उपयोगी प्रमाणित होगा। इसकी उक्तियां निश्चय ही मनोहारिणी हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य निश्चय ही मूल्यवान है।

साहित्यिक सौन्दर्य

निम्न श्लोक में कवेल ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग ही कवि ने किया है :–

जयवरनरनिकरनतसुपद अमररिपुवनवरधनदहन,
गणजयनयमयवचनरचन वशिसुजनधनकठिनं सुकरगणसदन।
मदनमददलन कमलसमनयन सबलछलविजित सुगणनिचय,
भवफलगणकरण शरण अनुगत जनशिवपद जनहृदय सुभग ।।120।।

कवि ने बाण की शैली को अपनाते हुए श्लेषालंकार का सुन्दर चित्रण किया है–

सरोग : केवलं हंसो, सगर्वा : केवलं स्त्रियः।
समदाः केवलं नागा :, केशपाशः सबन्धनः ।।38।।

(कवि राणा अमरसिंह के समय की सामाजिक अवस्था का वर्णन करता हुआ लिखता है कि एक मात्र सरोग–सरोवरगामी हंस ही थे, समाज में कोई भी प्राणी रोग युक्त न था। सगर्वा केवल स्त्रियाँ ही थीं, पुरुष अभिमानी नहीं थे। हाथी मद से युक्त थे और कोई भी अहंकारी नहीं था। बन्धन केवल केशपाशों में ही दृष्टिगोचर होता था, अन्यत्र सामाजिक बन्धन किसी भी प्रकार का नहीं था।)

इस श्लोक में 'सरोग' 'समद' सबन्धन शब्द श्लिष्ट पद हैं, इसलिये इस श्लोक में श्लोषालंकार है।

हिन्दुत्वाभिमानी, भारतीय संस्कृति के संरक्षक, मानैकधनी महाराणा प्रतापसिंह के पराक्रम सदृश ही उनके पुत्र राणा अमरसिंह हुए। इस आशय को लिये हुये कवि के विचार उपमालंकार के प्रयोग के साथ निम्नांकित है।

दीपाद्दीप इव द्रुमाद्द्रुम इव प्रायोऽनुरूपो महान्,
शूरोदारगभीरधीरसुगुणैरापूर्णीगात्रशुचि :।
देवैः स्वेश इति नृपैरधिप इत्युथत्फणीन्द्रोरगैः
दृष्ट्वा श्रीपत एव भूमिवलये जात : प्रतापांगज : ।।29।।

(एक दीपक से दूसरा दीपक जिस प्रकार प्रज्वलित होता है। एक विशाल वृक्ष के बीज से दूसरा महान् वृक्ष बन जाता है। प्रायशः एक के पश्चात् एक अनुरूप पदार्थों का होना दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार शूर, उदार, धीर, गंभीरादि गुणों से परिपूर्ण महाराणा प्रताप के पुत्र राणा अमरसिंह हुए, जो साक्षात् विष्णु समान ही इस भूमण्डल पर हो गये।)

इस श्लोक में दीपक के सदृश दीपक, वृक्ष के समान वृक्ष होता है, यहां इन शब्द के

सादृश्यवाचक होने से उपमा अलंकार है और राणा अमरसिंह भगवान विष्णु रूप में ही इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए। अमरसिंह में विष्णु का आरोप होने से रूपक अलंकार प्रयुक्त हुआ है। इस तरह उपमा और रूपक दोनों ही अलंकार इस श्लोक में हैं।[75] कवि ने मंत्री डूंगरसिंह के वर्णन में एक और उदाहरण उपमा और रूपक का प्रस्तुत किया है—

धर्मार्थमूलं सुखमेव कालं बुद्धयाम्भसोपार्ज्य सडूंगरे।
आरामपालीव विचित्रवृक्षं फलं लुनातीष्टकरं सदासौ ।।300।।

(धर्म और अर्थ के मूल सुखमय समय को अपने बुद्धि वैभव से उपार्जित करके वह डूंगरसिंह उद्यानपति की तरह इष्टलाभार्थ अनेक प्रकार के वृक्ष और फलों का उपभोग करता है।)

'सुख रूपी' समय में धर्मार्थमूल सुख का आरोप होने से रूपकालंकार। आरामपाली (माली) के समान इस अर्थ में उपमा का प्रयोग कवि ने किया है।

निम्नलिखित श्लोक विनोक्ति अलंकार का सुन्दर उदाहरण है :

विनाप्यरिगणे सूरा; विनाप्यर्थिजनोऽर्प्पणः।
विना हेतौ सदोत्साहा, सदामरनृपानुगाः ।। 172 ।।

(राणा अमरसिंह के राज्य में अरिगण के बिना भी शूरवीर निवास करते थे। याचकजनों के बिना भी दान देते थे, बिना कारण के भी उत्साह धारण किये हुए थे। इस प्रकार राजा अमरसिंह का अनुगमन करने वाले राजा लोग सर्वदा इन गुणों से युक्त थे।)

श्लोक में बिना शब्द के प्रयोग एवं अर्थ से विनोक्ति अलंकार है।

कवि द्वारा राणा अमरसिंह के प्रताप और कान्ति का वर्णन करते हुए सुन्दर अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

सूर्यः प्रतापस्य शशी सुकान्तेः तद्देहसेवार्थमिहाब्जवृन्दः।
तुल्यत्वमाप्तुं गगने जले च, तपः करोति प्रबलं नितान्तम् ।।78।।

(राणा अमरसिंह के प्रताप की समता करने के लिए सूर्य और कान्ति के लिये चन्द्र ये दोनों आकाश में तथा कमल समूह उनके देह सेवार्थ जल में तपस्या करने में रत हैं।)

कवि का अतिशयपूर्ण वर्णन "अतिशयोक्ति" अलंकार को बतला रहा है।

राणा अमरसिंह प्रथम की दिनचर्या विषयक इस कृति में कवि ने विवेकपूर्ण अनेक युक्तियों का विशद विवेचन किया है। विविध छन्दों में रचित प्रवाहमयी भाषा में निबद्ध यह रचना चित्ताकर्षक आह्लादजनक है। स्थान स्थान पर नीतिपूर्ण पदावली का ज्ञान प्राप्त होता है। इतिवृत्त के वर्णनानुरूप शान्त, वीर एवं शृंगार रस से युक्त यह एक उत्कृष्ट रचना है। कवि ने केवल ह्रस्वमात्रा में ही श्लोकरचना करके अपने अद्भुत कवि कर्म का प्रदर्शन किया

है।(अमरसार यश. श्लोक 120) यह एक प्रसाद गुणयुक्त काव्य–सौष्ठव लिये हुए श्रेष्ठ रचना है। विद्वान् कवि का प्रयास श्लाघ्य, स्तुत्य एवं सफल है।

निदेशक
प्राच्य विद्यापीठ सरदारपुरा, उदयपुर (राज.)

: संदर्भ :

1. अमरसार, धर्मखण्ड, श्लोक सं. 263–265, 427,429,430
2. वही, श्लोक, 266
3. वी. वि. भाग 2, अमरसिंह प्रकरण, पृ. 215, श्यामलदासकृत; उ. रा. इ. भाग–2, पृ. 787, ओझा
4. वी.वि. भाग 2, अमरसिंह प्रकरण पृ– 266, श्यामलदास
5. वही, पृ. 269
6. वही, पृ. 315;
   उ. रा. इ. भाग 2, पृ. 830, ओझा
7. अमरसार खण्ड, श्लोक–265
8. वही, यशवर्णनाधिकार, श्लोक 175,78,79,88
9. वही, धर्मखण्ड, श्लोक 246–249
10. वही श्लोक 426–427, 264–265
11. वही, श्लोक 276–277
12. वही, श्लोक 282, 283, 285
13. वही, श्लोक 286, 287, 293, 294, 296
14. वही, श्लोक 425
15. वही, श्लोक 305–311
16. वही, श्लोक 314–316
17. वही, श्लोक 263–264
18. वही, श्लोक 1 से 3
19. वही श्लोक 4 ; रघुवंश प्रथम सर्ग, श्लोक–2
20. अमरसार, यशवर्णनाधिकार, श्लोक 12,13,15
21. वही, श्लोक 17, 18
22. वही, श्लोक 27, 28
23. वही, श्लोक 40,41
24. वही, श्लोक 55, 57, 58

25. अमरसार, यशवर्णनाधिकार, श्लोक 77, 80, 100
26. वही, श्लोक 108, 114, 153
27. वही, श्लोक 160, 201
28. वही, श्लोक 202
29. वही, श्लोक 214—215, 220—221, 229, 230,
30. वही, श्लोक 231, 234, 236, 238, 240
31. वही, श्लोक 242, 247, 251
32. वही, श्लोक 259—261
33. वही, श्लोक 317—319
34. वही, श्लोक 321
35. वही, श्लोक 322, 324—329
36. वही, श्लोक 330, 332
37. वही, श्लोक 345—347, 350, 352
38. वही, श्लोक 353, 356, 359—360
39. वही, श्लोक 361—362
40. वही, श्लोक 365
41. वही, श्लोक 366—367
42. वही, श्लोक 368—372
43. वही, श्लोक 374—375
44. वही, श्लोक 376
45. वही, श्लोक 377, 382—383, 400—401, 406, 410, 413, 415
46. अमरसार, नीतिखण्ड, श्लोक 1—5
47. वही, श्लोक 7, 14, 19, 28, 32
48. वही, श्लोक 36,38—41
49. वही, श्लोक 54, 55
50. वही, श्लोक 74—75
51. वही, श्लोक 81—82, 85—86, 88
52. वही, श्लोक 90, 98
53. वही, श्लोक 99, 100
54. वही, श्लोक 105
55. वही, श्लोक 108, 109, 110
56. वही, श्लोक 114, 117
57. वही, श्लोक 119, 129, 135
58. वही, श्लोक 143, 146, 169

59. अमरसार, नीतिखण्ड ; श्लोक 171, 176, 183
60. वही, श्लोक 186, 199
61. वही, श्लोक 210, 220
62. वही, श्लोक 268
63. वही, श्लोक 283
64. वही, श्लोक 295
65. वही, श्लोक 304
66. वही, श्लोक 312
67. अमरसार, धर्मखण्डाधिकार, श्लोक–3
68. वही, श्लोक 7
69. वही, श्लोक 25
70. वही, श्लोक 33
71. वही, श्लोक 75
72. वही, श्लोक 168
73. वही, श्लोक 190
74. वही, श्लोक 193
75. यह उपमा कवि ने कालिदास से उधार ली है।
    तु.– 'प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।'

फतहप्रकाश प्रशस्ति : एक दुर्लभ ऐतिहासिक महाकाव्य

डॉ॰ देवी दत्त शर्मा

संस्कृत भाषा में लिखित "फतहप्रकाश–प्रशस्तिः" नामक काव्य की अप्रकाशित पाँडुलिपि महाराणा भूपालसिंह जी के काल में (सन् 1930–1956) रची गयी है। यह महाकाव्य सोलह सर्गों में निबद्ध है। इस काव्य में कुल एक हजार दो सौ पच्चीस श्लोक हैं। इसमें कुल एक सौ पैंतालीस पत्र हैं। छन्दों में अनुष्टुप् और आर्या ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। रचनाकार तथा लिपिकार चारण कवि कर्णीदान हैं। इनका काल महाराणा भूपालसिंह जी का काल रहा है। महाराणा भूपालसिंह जी के राज्याश्रय में रह कर उनकी प्रेरणा से ही कवि ने इस महनीय संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की है। इस पाँडुलिपि की अन्य प्रतियाँ अन्यत्र दुर्लभ हैं। यह एकमात्र प्रति "इंस्टिट्यूट आफ राजस्थान स्टडीज" उदयपुर के शोध पुस्तकालय में संरक्षित है। इस पांडुलिपि का क्रमांक– संख्या 371 तथा ग्रन्थांक संख्या 218 {ई॰} है।

पाँडुलिपि में कवि ने मेवाड़ के महाराणाओं के वंशान्वय का वर्णन करने के अनन्तर "एक सौ तेरह" श्लोकों में अपने वंश सहित स्वयं का परिचय दिया है। कवि परिचय के पश्चात् कवि ने अपने आश्रयदाता भूपालसिंह जी की पन्द्रह श्लोकों में प्रशस्ति गायी है। कवि ने प्रसाद गुण से ओतप्रोत व्यावहारिक संस्कृत में उक्त पाँडुलिपि के माध्यम से मेवाड़ के महाराणाओं का आद्योपान्त वर्णन किया है। परिचयार्थ यहाँ पर ग्रन्थ के प्रारम्भ एवं इति के श्लोक द्रष्टव्य हैं–

ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण के इस श्लोक से किया गया है।

"तत्रादौ मेदपाटदेशस्य स्वयं विष्णुब्रह्मरुद्रात्मकस्य श्रीमदेकलि भगवन्स्तुतिः"
श्रीपति ब्रह्मरुद्राणां यत्तेजस्त्रिगुणात्मकम्।
तद्धरं मेदपाटेशमेकलिङ्गं नमाम्यहम् ।।1।।

इतिः

मृगयायां भूपालेन मृगेन्द्रा बहवो हताः।
तरक्षव स्तब्धरोमाः शूरास्त्वतुलविक्रमाः ।।143।।
ग्राहको रत्नजातस्य राजज्ञो रत्नधारकः।
महीपरत्नमुख्योऽसौ भूपालो भासते नृपः ।। 144।।

कवि परिचयः–

प्रारम्भः–

अस्ति भारतवर्षेऽस्मिन् उत्तरस्यां नगाधिपः।
हिमालयो निर्जराणां वासभूमिश्चिरात् किल ।।1।।

अन्तः—

ख्यातश्चमनसिंहाख्योज्वनम्रस्य ? सुतोऽभवत् ।
परोत्कर्षः प्रसन्नात्मा सत्यवक्ता परोपकृत् ।।113।।
त्रयात्मजा वयं तस्य कर्णिदानोह्यग्रजः ।
भेरुसिंह क्षेमराजौ मत्कनिष्ठौ सुसंहितौ ।।114।।

काव्य की कथावस्तु का सारः—

प्रारम्भ में कवि ने रचना का शुभारम्भ करने से पूर्व काव्यगत अशुद्धियों के लिए क्षमा याचना की है। मूल काव्य मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम भगवान् एकलिंग की स्तुति गायी गयी है। आगे मेवाड़ के अन्य देवी—देवताओं के साथ—साथ पूर्वजों एवं गुरुजनों की स्तुति भी गायी गयी है। इनमें चतुर्भुज, द्वारकेश, श्रीनाथजी, ऋषभदेवजी, शक्ति, सूर्य, चन्द्र इत्यादि प्रमुख हैं। इन सभी सम्मानजनक औपचारिकताओं के पश्चात् महाकाव्य का प्रथम सर्ग प्रारम्भ होता है। सभी सर्गों की कथावस्तु को संक्षिप्त में यहां पर इंगित कर रहा हूँ।

प्रथम सर्गः—

प्रथम सर्ग ग्यारहवें श्लोक से प्रारम्भ होता है। मेवाड़ के सूर्यवंशीय सीसोदिया महाराणा वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी वंश के उदयपुर में राज्य करने वाले महाराणा भूपालसिंह थे। अपने पिता "महाराणा फतहसिंह" जी की स्मृति में आपने चितौड़ में "फतह—प्रकाश" नामक महल का निर्माण करवाया। इनके राज्य में अनेक पण्डित हुए। प्रारम्भ में नारायण की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इससे आगे मेवाड़ राजवंश का वंशानुक्रम इस प्रकार दर्शाया गया है— मरीचि, कश्यप, विवस्वान् आदि के अनन्तर अनेकानेक राजा मानवरूपेण रघु, अज, दशरथ, राम, लव—कुश, कनकसेन, विजय, शील, गुहदत्त, भोज, महेन्द्र, नागादित्य, शिलादित्य, महेन्द्र द्वितीय, कालभोज, (फतहप्रकाश प्रशस्ति के अनुसार यही वाष्य, बाप्पा रावल के नाम से प्रसिद्ध हुए।) खुम्माण, भर्तृभट्ट, नरवाहन, शालिवाहन, शक्तिकुमार, अम्बा प्रसाद, शुचिवर्मा, नरवर्या, कीर्तिवर्मा, योगराज—वैरट—हंसपाल, वीरसिंह, विजयसिंह, समरसिंह, अरिसिंह, चौड़सिंह, विक्रम सिंह, रणसिंह (कर्णसिंह) हुए। इनसे आगे दो शाखायें— "रावल" जो चित्रकूट में बसे तथा राणा राहप जो सीसोदिया कहलाये। आगे चलकर यही 'राहप' कुल मेवाड़ में चला। इसी वंश में आगे जैत्र सिंह—तेजसिंह, समर सिंह, रत्नसिंह राहप का पुत्र नरपति, दिनकर्ण, यशकर्ण, नागपाल, पूर्णपाल, पृथिवीपाल, भीमसिंह, जयसिंह, लक्ष्मणसिंह, रत्नसिंह (प्रथम) (काल भोज से रत्नसिंह तक के महाराणा राहप कहलाये, सीसौद के वासियों ने राणा बन कर मेवाड़ में शासन किया) इससे आगे अजय सिंह, अरिसिंह, जयसिंह और हम्मीर सिंह तक का प्रथम सर्ग में वर्णन मिलता है। प्रथम सर्ग में 85 श्लोक हैं।

प्रथम सर्ग की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"कर्तुं श्रीफतहप्रकाशभवनस्याऽस्य प्रशस्तिर्नवामाज्ञां यः प्रददौ सदा विजयते भूपालसिंहः प्रभुः कर्णीदानकवेः कृते शुभमहाकाव्येऽसत्यसावादिनः सर्गो रावल वीरतागुणैर्युक्तः समाप्तिं गतः।

इति श्रीकर्णीदानविरचिते श्रीफतहप्रकाशप्रशस्तिमहाकाव्ये प्रथमसर्गः समाप्तः ।।1।।

द्वितीय सर्गः– यह सर्ग हम्मीर के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। आगे क्षेत्रसिंह, लक्ष्यसिंह, (चूंड़ा), मोकल, कुम्भकर्ण तक का वर्णन है। इस सर्ग की श्लोक संख्या 57 है।

तृतीय सर्गः– यह सर्ग कुम्भा के कनिष्ठ पुत्र ऊदा (उदयकर्ण) से प्रारम्भ होता है। आगे रायमल्ल, संग्रामसिंह, भोजराज, रत्नसिंह (द्वितीय) तक का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इसमें 62 श्लोक हैं।

चतुर्थ सर्गः– रत्नसिंह के वर्णन को अग्रसरित करते हुए विक्रमादित्य का वर्णन है। यहाँ से ये राजा महाराणा कहलाये। पृथ्वीराज तथा उदयसिंह (द्वितीय) का वर्णन सविस्तार किया गया है।

पञ्चम सर्गः– यह सर्ग उदयसिंह द्वितीय के पुत्र महाराणा प्रतापसिंह से प्रारम्भ होता है। प्रताप का अकबर बादशाह से युद्ध तथा अन्य राजा महाराजाओं का अकबर से मिलकर खमनौर के पास हल्दीघाटी में महायुद्ध का विस्तृत वर्णन है। भामाशाह उदयपुर के समीप चावण्ड ग्राम के पास बण्डौली ग्राम में प्रताप की मृत्यु, अष्टस्तम्भ स्मारक, प्रताप के सत्रह पुत्र, ग्यारह रानियां आदि के साथ–साथ इनके पुत्र सहस्रमल्ल के वंशजों का धरियाबाद के पास प्रसाद गांव में निवास का वर्णन है। आगे प्रत्येक पुत्र के क्रम से उनके निवास आर वंशज प्रदर्शित किये गये हैं।

पुष्पिकाः–

"कर्तुं श्रीफतहप्रकाशभवनस्यास्य प्रशस्तिं नवा–
माज्ञां यः प्रददौ सदा विजयते भूपालसिंहो नृपः।
कर्णीदानकविः कृते शुभमहाकाव्येस्त्वयं पञ्चमः
मेवाडाधिपसद्‌गुणैर्विरचितः सर्गः समाप्तिं गतः।।65।।

इति श्री कर्णीदानविरचिते श्री फतहप्रकाशप्रशस्तिः महाकाव्ये पञ्चमः सर्गः समाप्तः ।।5।।

षष्ठ सर्गः– यह सर्ग प्रताप सिंह के पुत्र अमरसिंह के चावंड में राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। इसका जहाँगीर तथा उसके पुत्र के साथ सन्धि आदि का वर्णन है। युद्ध में मुगल बादशाह अकबर आदि की पराजय, आहड़ ग्राम के पास अमरसिंह का दाह संस्कार, उसका स्मारक, आहड़ में ही अमरसिंह के नौ रानियों की छत्रियाँ, उसकी उदारता, उसके वंशजों के निवास–स्थल, सूर्यमल्ल, भीमसिंह, कर्णसिंह का जहाँगीर से युद्ध, मेवाड़ में खुर्रम को शरण देना, उनकी सन्धि, अनेक प्रकार के दान, प्रासाद निर्माण, इनके सात पुत्र और दो पुत्रियाँ होना, ज्येष्ठ पुत्र जगत्‌सिंह का राज्याभिषेक, चित्तौड़ दुर्ग का जीर्णोद्धार, बीस वर्ष तक राज्य करना, तीर्थों का वर्णन, जगदीश मन्दिर की प्रतिष्ठा, सूत्रधार मुकुन्द, एकलिंगजी में ध्वजारोहरण, पिछौला में जगमन्दिर निर्माण, उदयसागर के पास सुन्दर भव्य भवन, इनके पाँच पुत्र होना, राजसिंह का महाराणा बनना आदि का सविस्तार उल्लेख है।

सप्तम सर्गः— राजसिंह का सिंहासानारोहण, एकलिंग दर्शन, माण्डलगढ़ ग्रहण, शाहपुरा के राजा को दण्ड देना, जहाजपुर, केकड़ी, आदि राज्यों को अपने राज्य में सम्मिलित करना, मालपुरा को लूटना, औरंगजेब और राजसिंह के मध्य युद्ध, कांकरोली में द्वारिकाधीश की मूर्ति का परिस्थापन, श्रीनाथजी की प्रतिष्ठा, दामोदर गोस्वामी का नाथद्वारा के मठी पद पर परिस्थापन, चीखा के समीप अम्बेरी गाँव में औरंगजेब के साथ युद्ध, अमर और उदय नाम के कोठारिया के भाटों को ग्राम दान, राजसिंह के पुत्र भीमसिंह का जन्म, मन्त्री दयालदास, गंगादास को दान, औरंगजेब से सन्धि, राजसमुद्र निर्माण, निर्माण—व्यय, गोमती नदी में बाँध निर्माण, रानी चारुमती द्वारा बावड़ी बनवाना, कुम्भलगढ़ के पास मोड़ा ग्राम में राजसिंह को विष दिया जाना, राजसिंह का दिवंगत होना, ग्राम में स्मारक—निर्माण आदि का इस सर्ग में वर्णन किया गया है।

अष्टम सर्गः— इस सर्ग में राजसिंह के पुत्र जयसिंह तथा उनका कुरज नामक ग्राम में राजतिलक, आबूयात्रा, दान, नर्मदेश्वर मन्दिर निर्माण, फतहसिंह जी द्वारा मूर्ति स्थापना, अमरसिंह का राज्यारोहण, अमरशाही नामक पगड़ी धारण तथा अमरसौध नामक महल का वर्णन है।

नवम सर्गः— मल्हार दुर्ग के पास ससैन्य प्रजा का लुण्ठन, कानोड़ का पति काशीनाथ, महाराष्ट्रियों को खदेड़ना आदि का सविस्तार वर्णन है।

दशम सर्गः— राजसिंह का वर्णन अनवरत है। जगत्सिंह, अरिसिंह, राजसिंह, का औरस पुत्र रत्नसिंह, अल्प समय में शीतला से मृत्यु, अरिसिंह का राजगद्दी से अवरोहण, दुष्ट भटों द्वारा अमरसिंह को रोकना, स्वामीधर्म और अरिसिंह के समर्थकों द्वारा राणा के पक्ष में लड़ना, बड़वा अमर चन्द्र से मन्त्रणा करना, उसका मन्त्री पद स्वीकार करना, सेना की बागडोर अपने हाथ में लेना, बिल्हेर ग्राम में दुर्ग बनवाना, बूँदी के राजा अजीतसिंह का छद्म वेश में माण्डलगढ़ दुर्ग में पहुँचना, छल से भाले के प्रहार से अरिसिंह का वध, अमरगढ़ के पास अरिसिंह की दाह क्रिया, स्मारक निर्माण, इनके दो पुत्र, हम्मीर का राज्याभिषेक, उदयपुर में करजाली और शिवरती हाउस का निर्माण आदि बिन्दुओं का इस सर्ग में वर्णन है।

एकादश सर्गः— चैत्र मास में भीमसिंह का जन्म, राज्याभिषेक, राजकार्य का विस्तृत वर्णन, निर्माण कार्य, भीम पद्मेश्वर शिवालय का निर्माण, भीमसिंह के पुत्र जवानसिंह का आद्योपान्त वर्णन है।

द्वादश सर्गः— जवानसिंह का जन्म, राज्याभिषेक, अंग्रेजों का आगमन, अंग्रेज गवर्नर, गया जाकर पिता भीमसिंह का श्राद्ध करना, तीर्थयात्रायें, दान, कालिका मन्दिर का निर्माण, ब्रिटिश प्रान्तों में महाराणा का सम्मान, जल—निवास महल बनवाना, महाराणा जवानसिंह की मृत्यु, इनके पुत्र सरदार सिंह का राज्यारोहण, पुष्कर में पिता का श्राद्ध, अनेक तीर्थ यात्रायें, जवानसिंह का गया में श्राद्ध, सरदार सिंह का अपने भाई स्वरूपसिंह को बागोर की जागीर देना, आगे युवराज पद पर अभिषेक, सरदार सिंह का देह त्याग, स्वरूपसिंह का राज्यारोहण, स्वरूपशाही

मुद्रा का प्रचलन, ब्रिटिशों से विद्रोह, अंग्रेजों की रक्षा करना, सहायता के लिये सैनिक भेजना, जगमन्दिर में अंग्रेजों की रक्षा, महारानी विक्टोरिया का अधिपति बनना, सती प्रथा निवारण, नारी उद्धार, दत्तक पुत्र शम्भुसिंह को लेना, स्वरूप सिंह का स्वर्गवास, आहड़ में विष्णु और शिव का मन्दिर बनवाना, इन सब बिन्दुओं का कवि ने इस सर्ग में विस्तृत उल्लेख किया है।

त्रयोदश सर्गः–

इस सर्ग में शम्भुसिंह के अभिषेक का वर्णन, सती और दास प्रथा को रोकना, दुर्भिक्ष निवारण, न्यायालय का निर्माण, ब्रिटिश ए॰जी॰जी॰ का सम्मान, शम्भु निवास पैलेस निर्माण, पड़ौसी राज्यों से सम्बन्ध बढ़ाना, कुक्षि पीड़ा से स्वर्गारोहण, निःसंतान होने से सज्जनसिंह की गद्दी नशीनी, अंग्रेजों की सहायता से राज्य सुरक्षित करना, अनेक विषयों में शिक्षा प्राप्त करना, लार्ड लिंटिंन द्वारा दिल्ली उत्सव में आमन्त्रित करने पर जाना, बेदला के राव बख्तर सिंह का राव बहादुर सिंह की पदवी प्राप्त करना, नगर का अनेक प्रकार से परिष्कार करना, श्यामलदास का उल्लेख, बायसराय लार्ड रिपिन द्वारा जी॰सी॰एस॰ आई. की पदवी देना, चित्तौड़ दुर्ग का जीर्णोद्धार, रेलगाड़ी चलवाना, विद्यालय, सज्जन यन्त्रालय, सज्जन औषधालय, वापी विलास नाम की पुस्तक रचना, कवित्व प्रतिभा वाले कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का सम्मान, श्यामलदास द्वारा "वीर–विनोद" लिखना, इतिहास कार्यालय के लिये एक लाख रुपये की धनराशि देना, शिल्प एवं कला को महत्त्व, सज्जनगढ़ के लिये एक लाख देना, सज्जनगढ़ की कोट का निर्माण, जगत् निवास बनवाना, जय समन्द की पाल का निर्माण, सैटलमेन्ट आफिस निर्माण, भाट–चारणों को दान, सज्जन निवास पाठशाला निर्माण, ललित, शिल्प एवं कला–प्रियता, पराक्रम, प्रजावात्सल्य आदि का वर्णन है।

चतुर्दश सर्ग :– दलसिंह से उत्पन्न पुत्र फतहसिंह जी महाराणा बने। शिवरती महल बनवाना, सज्जन सिंह का आसन ग्रहण करना, अन्य कार्यों का विशद् वर्णन, सज्जनगढ़ का निर्माण, कर्णीदान का भूपालसिंह का सेवक होना, मृगया के लिये हौदियाँ बनवाना, नारी चिकित्सालय बनवाना, वाल्टर नामक चिकित्सक रखना, शिलालेख खुदवाना, रानी विक्टोरिया की सिल्वर जुबली पर विक्टोरिया हाल बनवाना, सज्जन पुस्तकालय के सामने विक्टोरिया की मूर्त्ति लगवाना, जय समुद्र का जीर्णोद्धार, वहीं महल बनवाना, उद्यान लगवाना, पुत्र जन्मोत्सव, अंग्रेजों से जी॰सी॰एस॰ आई॰ पदवी प्राप्त करना, फतह सागर का निर्माण, विक्टोरिया के पुत्र के नाम से "कैनाट" नामक पुल बनाना, चित्तौड़ से उदयपुर की तरफ रेल–चलवाना, कोठारी बलवन्तसिंह प्रधान सचिव, सही वाला अर्जुन सिंह, लार्ड एल्गिन को उदयपुर तथा जगदीश मन्दिर दिखाना, कर्जन का दिल्ली में सम्मेलन, फतहसिंह जी का दिल्ली जाना, उत्सव में भाग न लेना, शम्भु निवास के पास दरबार हाल का निर्माण, शाहपुरा को दान देना, सम्राट् जार्ज पञ्चम से मैत्री होना, उदयपुर में स्वागत, जी॰सी॰आई॰ ओ॰ पद प्राप्त करना, जार्ज द्वारा अपने जन्म दिन पर जी॰ सी॰ ई॰ पदवी देना, साथ ही सर्वोच्च पद के॰सी॰ आई॰ ई॰ प्राप्त करना, अंग्रेजों के लिये विभिन्न कार्य करना, जय समुद्र का राजमार्ग निर्माण, सनवाड़ एवं टीढ़ी नामक ग्रामों में धर्मशालाओं का निर्माण, बिजली की व्यवस्था, चित्तौड़ दुर्ग का नये सिरे से जीर्णोद्धार, इनके तीन पुत्र एवं एक पुत्री

होना, ज्येष्ठ भूपाल सिंह, दो पुत्रों का निधन, ओंकार कुँवरी नाम की कन्या का विवाह कृष्णगढ़ के मदन के साथ होना, एकपत्नी व्रत धारण, आस्तिक, देवपूजक, मेधावी, धीर–गम्भीर, मितव्ययी, सदाचारी, कर्त्तव्यपरापण, आदि गुण–मृत्यु तथा दाह संस्कार तक का वर्णन है।

पञ्चदश सर्गः– फतहसिंह जी के बाद भूपाल सिंह जी ने अपने पिता का राज्य ग्रहण किया। भूपाल सिंह जी ने अक्षरों से अध्ययन प्रारम्भ करके अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दी तथा अन्य आंचलिक भाषाओं को सीखा। गहन साहित्य अध्ययन, बचपन में ही व्याधि से पीड़ित होना, इंग्लैण्ड, यूनान, बंगाल, गुजरात तथा अन्य स्थानों के वैद्यों द्वारा उपचार, शमन के लिये अनेकानेक दान, धीरे–धीरे ठीक होना, यज्ञोपवीत संस्कार, प्रथम विवाह मारवाड़ से होना, पत्नी की यक्ष्मा से मृत्यु, दूसरा विवाह जयपुर से, सन्तान न होना, तीसरा विवाह खुडालाधीश की पुत्री से, जार्ज पञ्चम से के॰ सी॰ ई॰ पदवी लेना, अच्छा राज्य प्रबन्ध, नगर के बाहर बिजली लगवाना, लक्ष्मी विलास पैलेस का विस्तार, सरदारों के बच्चों के लिये विद्यालय, नाम भूपाल नोबल स्कूल रखवाना, निर्माण के लिये एक लाख रुपये देना, अतिथि निवास के लिये आनन्द भवन का निर्माण करवाना, जगत् निवास के पास पिछौला में चन्द्र प्रकाश महल बनवाना, सूत्रधार कुन्दन लाल, उसके पूर्व में सर्वऋतुविलास का निर्माण, उसके पास ही दिलारा महल में चित्रकारिता, अनेक फब्बारे लगवाना, शम्भु निवास का जीर्णोद्धार, चतुर्भुज की मूर्त्तिकी स्थापना एवं अलंकरण, भीम नाम का सूत्रधार, जगत् निवास और राज प्रासाद को नूतन रंग, सर्वत्र जीर्णोद्धार नव निर्माण, हरिद्वार यात्रा, मदिरा त्याग, जल स्त्रोतों का प्रबन्ध, अंग्रेजों के माध्यम से रेलगाड़ी की पटरी का नव–निर्माण, भूमि के लिये सैटलमैन्ट आफिस आदि का इस सर्ग में विस्तार से वर्णन मिलता है।

षोडश सर्ग :– बेदला राव द्वारा भूपालसिंह जी को शोक वस्त्र उतरवा कर गद्दी पर बिठाना, अलंकार धारण करवाना, फतहसिंह जी के देहावसान के कारण पड़ौसी राजाओं द्वारा शोक व्यक्त, दान–पुण्य, आदि राज्याभिषेक का विशद वर्णन, सामन्तों का वर्णन, एकलिङ्गजी और कांकरोली के पुजारियों का सम्मान, प्रसन्न होकर कुछ बन्दियों को छोड़ना, देव पूजन एवं प्रजावात्सल्य, प्रति सप्ताह एकलिंग यात्रा, धर्मशाला निर्माण, राजाओं को हस्ति एवं गजदान, योद्धाओं को बन्दूक, कृपाण दान, एकलिङ्ग, को मेवाड़ का अधीश्वर स्वीकार करना, जार्ज पञ्चम का आना, ए॰ जी॰ जी॰ की उपाधि, आवरी माता जाना, मार्ग में अनेक दान, बेदला के राव मनोहर सिंह जी का बाल्यकाल से ही साथ होना, उनके पुत्र को वृत्ति देना, ठिकाना और छोटा महल राव को दान करना, इनके पौत्र मेघराज को पूला ग्राम दान, भैरव के पुत्र को भीलोदा दान, मन्त्रियों को दान, नाथद्वारा के पास आश्रम निर्माण, नाथद्वारा में संस्कृत पाठशाला खुलवाना, ब्राह्मणों को पचास हजार दान, स्वर्ण तुलादान से बचे धन से चम्पाबाग के पास–महाविद्यालय खुलवाना, व्यापारियों को करमुक्त करना, मावली से रेल लाईन ठीक करवाना, साहित्य, संगीत और कला का पुजारी, सम्राट् विलिंगटन का सपत्नीक उदयपुर में स्वागत, लक्ष्मणसिंह को करजाली हाउस दान, दान के लिये विख्यात् फतहसिंह का यह सुपुत्र धीर–वीर, क्षमाशील, सेवक वत्सल, गुणग्राही, देव–पूजक, शिष्ट, निपुण, शिल्पज्ञ, प्रजापालक, विद्वान्, दयालु तथा उद्भट योद्धा होने के साथ ही कवि ने अपने काव्य की इति की है।

कवि परिचय – कवि कर्णीदान ने अपना परिचय ग्रन्थ के अन्त में एक सौ चौदह श्लोकों में दिया है जो इस प्रकार है–

प्रारम्भ में नगाधिराज हिमालय का वर्णन, चारणों का मूल उत्पत्ति स्थल यहीं था। कार्यवश चारणों का राष्ट्र में फैलना, अनन्तर क्षत्रियों के साथ लग्न होना, क्षत्रियों का वर्णन, अन्योन्याश्रित संबंध, राजाओं के साथ युद्धों में जाना, सौराष्ट्र, मारवाड़, मालवा, गुजरात आदि में चारणों की बहुलता–कच्छ प्रान्त वाले "काछोला" चारण कहलाये तथा मारवाड़ वाले मारू चारण कहलाये पठन–पाठन, विज्ञ, क्षत्रियों के साथ वास, काव्य रचना आदि कार्य मारू चारणों द्वारा किया जाना, राजाओं द्वारा ताम्रपात्र तथा नाना प्रकार के दान देना, चबूतरों पर खड़े होकर राजाओं का गुणगान, राजाओं द्वारा "भामा" नाम देना, इन्हीं चारणों में "ऋषि देवल" का होना, उनके द्वारा हिमालय में तपस्या, इनके वंशज साँखला क्षत्रियों के साथ "रूणी" में रहे। क्षत्रियों के विश्वासपात्र, इनको क्षत्रियों द्वारा अपने महलों में रखना, ऐसे चारणों का "बारहठ चारण" कहलाना, देवल चारण कुम्भा के समय दधिवाड़ा ग्राम में रहे, इसीलिये इनका गोत्र 'दधिवाड़ा' हो गया, कुम्भा ने इनको दो ग्राम दान में दिये, ग्राम कोठिया और 'धारता'। जैत्रसिंह के चार पुत्र हुए–महपा, पांडण वरसिंह तथा देवराट्। सांगा द्वारा महपा को 'ढोलकिया' ग्राम देना, द्वितीय को 'शाबर ग्राम' वरसिंह को गोठिया और देवराट् को 'धारता' ग्राम दान में देना, महपा वंश के लोग 'ढोलकिया' चारण कहलाये, मारू वंश के चारण मांडणौ का बलूंदा में निवास, मांडण वालों के भाई कूंपड़ावास में हुए, वरसिंह के वंशज 'गोठिया' ग्राम में रहे। सेवराज चारण का चौथा पुत्र धर्मराज हुआ, उसका पुत्र राजमल्ल क्रमशः क्षेमराज (जो धरियाबाद में आज भी निवास कर रहे हैं), कर्णसिंह द्वारा क्षेमराज को महल में रखना, सहस्रमल का सम्मान करना, जगत्सिंह को राज मिलना, जगत्सिंह द्वारा क्षेमराज को "ठीकरिया" ग्राम दान में देना, ताम्रपत्र भेंट करना, क्षेमराज के भाई को दधियाड़ा ग्राम दान, ठीकरिया ग्राम को क्षेमराज के नाम से "क्षेमपुर" करना, राणा का यहाँ रुकना, इसीलिये आज भी इस स्थान को "राणा मंगरी" कहते हैं। क्षेमराज को उदयपुर में एक महल भी दान दिया गया। अनेक ग्राम भी दान में दिये गये। जगत्सिंह के समय उदयपुर का राज्य प्रबन्ध क्षेमराज द्वारा देखा गया, क्षेमराज के चार पुत्र हुए– क्षेमपुर में आसकर्ण, सिरोही में जगमाल, अजमेर में भागचन्दा राजसिंह के समय में इन्होंने ख्याति प्राप्त की। आगे आसकर्ण का पुत्र 'गोरखदास' हुआ, यह प्रखर बुद्धि का था, अमरसिंह ने ब्राह्मणों को सात लाख रुपये दान दिये, गोरखनाथ ने सभी चारणों के लिये महाराणा से तीन लाख रुपये स्वीकृत करवाये, गोरखनाथ का सहोदर कृष्णदास हुआ। यह अपने पैत्रिक गाँव "अमर ग्राम" में रहने लगा, कृष्णदास का पुत्र अनन्तराम हुआ, इनके तीन पुत्र जोरा, शम्भु तथा पुष्कर नाम से हुए, शम्भु निःसन्तान ही मर गया, अन्य पुष्कर वंश के लोग आगे बढ़े। अनन्तराम का ज्येष्ठ पुत्र जोरावर हुआ, उसका पुत्र राजूराम, इनके पुत्र चामुण्डदास, गोपाल हुए। गोरखदास का दत्तक पुत्र कर्णीदान हुआ जो क्षेमपुर का स्वामी बना। इसका पुत्र कुपुत्र निकल गया; अतः उसे घर से निष्कासित कर दिया गया। कर्णीदान के चामुण्डदास और गोपाल दो भाई हुए, दोनों ने क्षेमपुर में निवास किया, गोपाल का लड़का शेरसिंह हुआ तथा चामुण्डदास का पुत्र भीष्मराज हुआ, भीष्म का पुत्र गुलाबसिंह तथा शेरसिंह निःसन्तान था उसने अपना दायित्व अपनी पत्नी को दे दिया। आगे महपा के पुत्र जेत्रसिंह का उत्तराधिकारी होना, इसके वंशजों का "सांगा ढोलकिया" ग्राम में निवास करना, इनका पुत्र कायमसिंह हुआ।

इनके तीन पुत्र श्यामल, बृजलाल और गोपाल हुए। शेरसिंह का पुत्र श्यामलदास हुआ जिसने महाराणा सज्जनसिंह से कविराजा की उपाधि प्राप्त की और इन्होंने मेदपाट के महाराणाओं का वृत्त लिखा, इनका पुत्र चमनसिंह हुआ। चमनसिंह के तीन पुत्र हुए – इनमें कर्णीदान ज्येष्ठ पुत्र था। कर्णीदान का छोटा भाई भैरूसिंह और क्षेमराज हुए। इसप्रकार कुल एक सौ चौदह श्लोकों में कवि कर्णीदान ने अपने कुल के साथ–साथ अन्त में अपना नाम उल्लेख मात्र किया है।

काव्यगत वैशिष्ट्य :– महाकवि कर्णीदान ने अति दुरूह संस्कृत का प्रयोग न करके व्यावहारिक प्रसाद गुण से ओत–प्रोत कर ग्रन्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह पांडुलिपि संस्कृत महाकाव्यों की शृंखला में एक आदर्श है। कवि ने कथानक को भगवान एकलिङ्ग की स्तुति प्रारम्भ करके अपने परिचय के साथ–साथ अपने आश्रयदाता भूपालसिंह जी की प्रशस्ति गान पर समाप्त किया है। एक अल्पज्ञानी पाठक के लिये भी यह काव्य सुग्राह्य है। इस काव्य में कवि ने द्रविण प्राणायाम न करते हुए रचनाक्रम में स्वाभाविक रूप से निःसृत अनुप्रास, उपमा, रूपक, प्रतीप, काव्यलिंग, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। भाषा प्राञ्जल, गौरवमयी, सुगढ़ तथा सुश्लिष्ट है। अनुष्टुप् और आर्या छन्द में पूर्ण काव्य निबद्ध है। यह एक इतिहासप्रधान शान्त रस का काव्य है। यथास्थान कवि ने अन्य रसों का भी प्रयोग किया है।

काव्य की उपयोगिता एवं महत्व :– "फतहप्रकाशप्रशस्तिः" नामक महाकाव्य ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत साहित्य के परिप्रेक्ष्य में महती देन है। इतिहासविज्ञों एवं अनुसंधित्सुओं के लिये तो इस पाण्डुलिपि की विशेष उपयोगिता है। इसमें मेवाड़ के महाराणाओं का आद्योपान्त विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। रचनाकार का संस्कृत में पूर्ण अधिकार है। कतिपय–व्याकरणिक त्रुटियाँ क्षम्य हैं जिन्हें आगे चल कर एक संस्कृत के विद्वान् ने शुद्ध कर दिया है। पाण्डुलिपि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महाराणा भूपाल सिंह जी ने शिलाओं में उत्कीर्ण कराने के लिये इस ग्रन्थ की रचना करवायी थी। ऐसा अनुमान होता है कि उनके दिवंगत हो जाने के कारण यह ग्रन्थ शिलालेख का रूप धारण न कर सका।

महाकवि कर्णीदान ने सोलह सर्गों में निबद्ध संस्कृत में लिखित "फतहप्रकासप्रशस्तिः" ऐतिहासिक महाकाव्य में मेवाड़ में विभिन्न महाराणाओं के विवाह, नव–निर्माण, युद्ध प्रयाण, शिक्षा, साहित्य–स्थापत्य, कला–संस्कृति, राज्याभिषेक, शासन–व्यवस्था, कृषि कर प्रणाली, धर्म प्रचार, दान–पुण्य, व्यापार, यातायात, विकास, रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, आतिथ्य सत्कार, पड़ौसी राज्यों के साथ सम्बद्ध, सैन्य व्यवस्था, युद्ध नीति, सौन्दर्य बोध, विभिन्न प्रथाएँ आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। मुगलों और अंग्रेजों से संबन्ध तथा उदयपुर के नित्यक्रम एवं नव–निर्माण में तो कवि ने अपनी लेखनी को विराम दिया ही नहीं है।

अतः यह ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थ मेदपाट के लिये ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय एवं अभारतीय इतिहासकारों का मार्ग दर्शन करते हुए इतिहास के क्षेत्र में अद्यावधि गुह्यमान नूतन तथ्यों को उद्घाटित करेगा, ऐसी मेरी अपनी धारणा है।

शोध अधिकारी
इन्स्टिट्यूट आफ राजस्थान स्टडीज (साहित्य–संस्थान)
राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) – 313001

खण्ड – तृतीय

कूर्मवंशावतंस श्रीमुहणसिंहवंश चूडामणि

डॉ॰ ब्रजमोहन जावलिया

देवभाषा संस्कृत आर्य–संस्कृति के गौरवास्पद वाङ्मय वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, दर्शन और परवर्ती आर्ष साहित्य की भाषा है। माँ सरस्वती के वरद पुत्रों ने इस भाषा में महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रशस्तिकाव्य, संगीत, नाटक, शिल्प और वास्तु, आयुर्वेद तथा विज्ञानादि विविध विषयक साहित्य का प्रणयन किया है। राजा–महाराजाओं, सामन्तों और श्रेष्ठियों ने इन साहित्य सेवी मनीषियों को आर्थिक संरक्षण देकर साहित्य–संवर्द्धन में पूर्णयोग दिया है। राजस्थान की पुण्यभूमि प्रमुख रूप से इनकी संरक्षण–स्थली रही है। यहाँ के शासकों ने अपने आश्रित सरस्वती–पुत्रों के द्वारा विरचित प्रशस्तिपरक ऐतिहासिक काव्य–ग्रथों को चिरस्थायी काल तक सुरक्षित रखने की दृष्टि से शिला–पट्टों पर उत्कीर्ण करवा कर सुरक्षित स्थानों पर प्रतिष्ठित कराने का श्रेयस्कर कार्य भी किया है।

'श्री मुहणसिंह–वंश–चूडामणि' जिसकी ऐतिहासिक कथा–वस्तु का परिचय इस आलेख में प्रस्तुत किया जा रहा है, ऐसी ही एक ऐतिहासिक घटना से संबंधित लघु–कृति है। यह काव्य छः अंगों में विभाजित है और 20X16 सेंटीमीटर के आकार के आठ पत्रों में लिखा हुआ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में ग्रंथांक 2546 पर उपलब्ध है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में 10 पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में 19 अक्षर हैं। अतः कुल 162 अनुष्टुप् श्लोकों के लगभग ग्रथित यह काव्य–ग्रंथ है।

इस काव्य के प्रथम अंग में 15 श्लोक, द्वितीय अंग में 7, तृतीय अंग में 28, चतुर्थ अंग में 26, पंचम अंग में 19 तथा षष्ठ अंग में 21 श्लोक प्राप्त हैं। छठा अंग अपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है इस अंग में कतिपय श्लोक और अंतिम पुष्पिका और रहे होंगे, जो अप्राप्त हैं।

प्रथम अंग में प्रथम 4 श्लोक मंगलाचरण के रूप में रचित हैं जिनमें क्रमशः गणेश, सरस्वती, और यदुकुलोद्भव भगवान् कृष्ण की स्तुति के उपरान्त श्लोक सं॰5 में कवि अपनी जाति, अपने दादा और पिता के नामोल्लेख के साथ अपना नाम देकर ईसरदा के राजा मुहणसिंह कछवाहा के अन्वयजों की प्रशस्ति लेखन की घोषणा करता है।

दधीचवंशोद्भव वृद्धिचन्द्रो, तदात्मजो मीसररामचन्द्रः।
तस्यात्मजोऽहं लघुनामनामा, मूहणसिंहान्वयजान् गृणिष्ये।। 1/5।।

कवि ने चतुर्थ अंग में अपने पूर्वज 'उम्मेदलाल' के सं॰ 1887 में विद्यमान होने की सूचना दी है। और उसी क्रम में श्लोक सं. 6 में उक्त कुल में उत्पन्न राजा रघुनाथसिंह के पुत्र रघुवंशी राजा प्रतापसिंह, जो राजाओं में श्रेष्ठ, काव्यरतकवियों में गुणाग्रणी था, के मनोविनोद के लिये इस रचना की ओर संकेत देता है।

प्रतापसिंहो नृपतिर्वरेण्यो गुणाग्रणी काव्यरतो कवीनां।
विनोदनार्थं रघुनन्दस्य व्याख्यां प्रकुर्वे रघुवंशजानाम् ।।1/6।।

तदुपरान्त श्लोक सं. 7 से इस अंग के अंतिम श्लोक पर्यन्त कवि अपने आश्रयदाता राजा प्रतापसिंह की राजधानी ईसरदा तथा वहाँ के पूर्व राजाओं के गुणों का बखान करते हुए कछवाहा वंश की ईसरदा शाखा के उद्भव और इस वंश में उत्पन्न मोहनसिंह के पुत्र कोजूराम के शौर्यादि गुणों की ओर संकेत किया है। कोजूराम की कवि ने अस्त्र–शस्त्रों के संचालन में निष्णात, परम ज्ञानी औेर उदारता आदि गुणों का भंडार कह कर प्रशंसा की है। कोजूराम के वंश को, कवि ने वैवस्वत कुलोद्भूत इक्ष्वाकुवंशीय महाराजा मानसिंह (आमेर) की परम्परा में चली ईसरदा शाखा के रूप में प्रस्तुत किया है।

ईश्वरेण कृतं पूर्वं ईश्वराद् रक्षितं सदा।
ईश्वराद्दीयते वासो, ईश्वर्देति निगद्यते।। 1/7।।
ईश्रदेनृपतिश्रेष्ठाः धार्मिका मतिशालिनः।
तेषां वंशं प्रवक्ष्यामि स्वमतेरनुसारतः ।। 1/8।।
एतेषां दानधारासु खड्गधारासु ये गताः।
ते पुनर्नान्यमिच्छन्ति तृप्ता दृप्ताः पुनः पुनः।। 1/9।।
गांभीर्यौदार्यसौन्दर्यशौर्यधैर्यादि भूषिताः।
वैवस्वतकुलोद्भूताः कीर्तिताः कविभिः पुरा।।10।।
तस्मिन् कुले जातु बभूव राजा, यो न प्रजानां हितकृत् प्रियश्च।
विशेषतः प्रेक्ष्य पितामहानां, वृत्तं महद्वृत्तपरायणानाम् ।। 11।।
इक्ष्वाकुवंशोद्भवमानसिंहस्तस्यान्वये [1] भूपतिरुग्रधन्वा।
भुजेन जित्वा रिपुवृन्दमुग्रं, राजाऽभवत् मोहनसिंहनामा ।। 13 ।।
कोजूराम महीपति रिपुगणान् क्रान्त्वाऽभवत् संस्थितः।
शस्त्रैरस्त्रपरैश्च ज्ञानचलितैर्भीष्मेव संशोभितः।।
यस्यौदार्यगुणान् रटंति गुणिनो किं तत्र चित्रं भुवि।
यस्य शौर्यगुणान् गृणन्ति दिविजा अद्यापि नो शाम्यति।। 14।।
कलिगते कलिपादसमागते यस्तु शरैरधिकृत्य शरासनं।
रिपुगणाननयद्यमसादनं विजयतां जयतां धुरि कोज्विति।। 15।।

द्वितीयाङ्ग में कवि ने महाराजा सवाईसिंह के आश्रित और प्रीतिपात्र 'ईसरदा' नाम के प्रमुख ठिकाने के सामन्त और उसके अधीन भाई बंधुओं के छोटे ठिकानों के सामन्तों के नाम और गुणों का परिचय दिया है। उसके अनुसार ईसरदा प्रमुख ठिकाना था और सारसोप, अँचेर, बुंदान (बुधानी) और नानेड़ (नानतोड़ी) उसके अधीन थे, जिन पर क्रमशः कोजूराम, फतेमल्ल धासीराम, बहादुरसिंह, और अचलसिंह का शासन था। ये सभी शूरवीर, और धैर्यवान् सामन्त थे और हाड़ा चौहान वंश के मानी राजाओं के मान को नष्ट करने हेतु तत्पर

रहते थे। करवर (कारवाड़) का ठाकुर सालिमसिंह (जो स्वयं भी हाड़ा) था, इनके साथ कूर्मवंशियों की विजयश्री चाहता था, के अधीन तेरह हजार सैनिकों की सेना थी। ऐसा कहा गया है।

ईश्रदो राजधानीयं, सारसोपो महद्पुरं।
अंचेरेति च बुंदानं नानेडेति निगद्यते ।।1।।
एते पञ्च पुराणि स्युः देवलोकोपमानि वै।
एतेषु राजते नित्यं, भ्रातारः कूर्म्मवंशजाः।।2।।
कोजूरामः फतमल्लो, घासीरामस्तथैव च।
बाहादरोऽचलसिंहस्सर्वे शूरतरा नृपाः[2]।।3।।
एते धीरतराः सर्वे धीराणां धैर्यवर्द्धनाः।
अस्थिवंशोद्भवा भूपा मानिनो मानतत्पराः।।4।।
तेषां मानविनाशाय भ्रातरो जग्मुरुन्मदाः।
आमेरनृपतेः प्रीत्या जयसिंहस्य चाश्रिता ।।5।
साल्मसिंहो नरपतिः करवराधिपतिर्ययौ।
त्रयोदश सहस्राणि सेनासंख्या निगद्यते ।।6।।
एतेषां कूर्मवंश्यानां जयश्रीमाभिलाषिणाम् ।
.... ।।7।।

तृतीय अंग में जयसिंह की मध्यमा (बिचोली) बहिन के बूंदी के महाराव बुद्धिसिंह (बुधसिंह) के साथ विवाह[3] बुधसिंह के निषेध करने पर भी रानी की स्वेच्छा से आमेर (जयपुर) चले जाने, और कुछेक दिनों या महीना बीतने पर उसके पुत्र के जन्म, धन की प्राप्तेच्छा से दूर्वा और हरे पत्र (हरी) लेकर मागधों (चारण भाटों) का बुद्धिसिंह को भेंट करने हेतु उसकी राजसभा में जाने, और बुद्धिसिंह का क्रुद्ध होकर नवजात शिशु को अपना पुत्र मानने से इन्कार करके मागध बन्दी जनों को राजधानी (बूंदी) से निष्कासित कर देने की ओर प्रथम चार श्लोकों में संकेत है।[4] यथा –

जैसिंहराज्ञो भगिनी तुमध्यमा, श्रीबुद्धिसिंहेन विवाहिता शुभा।
बुन्दीन्द्रनाथेन निषेधिताऽपि, जगाम आमेरपुरं स्वयेच्छया ।।1 ।।
ततः सगर्भा सुषुवे कुमारं, दिवसे या मासगतेषु सत्सु।
धनार्थिनो मागधवन्दिनो जना, जग्मुश्च बुन्दीन्द्रपुरं सुशोभनम् ।।2।।
दूर्वाङ्कुराणि हरितच्छदानि, आदाय दातुं नृपतेः सभां गताः।
निष्कासिता मागध वन्दिनो जनाः, चौहान वंश्याधिप राजधान्याः ।।3।।
श्रीबुद्धसिंहो नृपतिर्रुषान्वितः संजातपुत्रं महिषी न मेने।

कालान्तर में अनेक राजाओं का दिल्ली में समागम हुआ। वहाँ परस्पर वार्तालाप के मध्य जयसिंह के अमात्य ने बुधसिंह को धमकी दी कि वह अपने कुल की कुशलता चाहता है तो गद्दी छोड़ कर पुण्यभूमि वृन्दावन में जाकर रहने लग जाय– उसे पाँच सौ रुपया (प्रतिदिन)

मिलता रहेगा। अन्यथा युद्ध के लिये रणभूमि में आ जावे। सवाईजयसिंह के अमात्य के कथन को बुधसिंह का पक्षधर अभयसिंह चौहान (हाड़ा) सहन नहीं कर सका और उसने उत्तर दिया कि हमारे जीवित रहते हमारे स्वामी पुण्यभूमि वृंदावन में कैसे निवास कर सकते हैं।

तस्यापमानं नृपतिर्निशम्य, क्रोधं समुत्थं स भयं चकार।।4।।
दील्यां कदाचिद् बहवो नृपा गताः, समागमोऽभूत बहुहर्षवर्द्धनः।
परस्परं तेषु ब्रुवत्सु सत्सु च, जैसिंहामात्योबुधसिंहमब्रवीत्।।5।।
भो बुधसिंह! शृणुतां वचो मे, त्यजस्व बुंदीं कुलकौशलाय।
भजस्व वृन्दावन–पुण्यभूमिं, वसुं लभस्व शत–पञ्चसंख्यया।।6।।
भो भो नृपेन्द्र! न हिते वचो मे, न तिष्ठते भिन्नाम्भ घटे यथाम्बु।
तदैव युद्धाय रणस्य भूमिं, पश्यन्तु रम्यां रुचिरां विशालाम्।।7।।
इति ब्रुवाणे जयसिंहमात्ये, वाक्यं न सेहेऽभयसिंह नामा।
अस्मत्सु जीवत्सु कथं निषेवेत्, वृन्दावने पुण्यमतीं च भूमिम्।।8।।

साहिबदान चारणकृत सुजससमंड ग्रंथ में, जिसकी रचना संवत् 1793 में सारसोप के ठाकुर रतनसिंह की आज्ञा से जयपुर में हुई थी, में बुधसिंह से जयसिंह ने सारसोप के ठाकुर फतैसिंह के माध्यम से कहलाया कि वह सालिमसिंह (करवर) के पुत्र (दलेलसिंह) को गोद ले कर बूंदी की गद्दी छोड़ दे। इसके लिये उसे दो सौ रुपये खर्च हेतु दिया जायगा। यथा–

दोहा

सक भुव तपिजे साहरा, गढ उजीण मुकांम।
दिस बूंदी कू नजरि दखी, गढ पलटण दूगाम।।
धर पति आंबोजधर, कथियो एह कहाव।
कूरमं फतौ विदा कियो, राव दिसी वत काव।।
दिस रावां मिसलति दखी, वाचै जो ए वेन।
करिस्यो (वो) ही (जो) कह्यो, जो चाहो सुख चेन।।
देसां रुपयां दोयसै, सो खावो बुध साह।
सालिम सुत झोल्यां सझो, चक्रवत बूंदी चाह[6]।।

इस काव्य में 500 रु. के स्थान पर 200 रु. प्रतिदिन का ही उल्लेख है।

बलवण के ठाकुर ने अपने नगर में लौट कर सेना सजा कर युद्ध की तैयारी कर ली। कूर्मवंशी सामन्त भी दस हजार सैनिकों को लेकर युद्ध के लिये पंचोलासपुर में आ डटे। उधर अभयसिंह और फलोधी का सामन्त देवीसिंह जो अभयसिंह का अनुज था, भी कूर्मवंशियों पर जय की इच्छा से पंचोलास में आ गये।

इति वाक्सायकं दत्वा जयसिंहस्य मन्त्रिणे।
जगाम स्वपुरीं सदयो युद्धं कर्त्तुं समुत्सुकः।।3/9।।

और

बलवणेति पुरी गिरिविन्ध्यजाऽप्यतिकपाट सुतोरणशोभिता।
हयगजैः परितः सुविभाति सा, गिरिगता नगरीव दशाननी ।।10।।
नृपतितयस्तदीयाबलदर्पिताः, यवनवृन्दविमर्दन तत्पराः।
जयत्सिंह नृपादि महाबलाः, बलवतां जयतां च पुरस्कृता ।।3/11।।
इतरवंशतया मनुवंशजान्, स्वकुलवीर्यसमुद्भवगर्वितान्।
दस सहस्रमितान्निज सेनया, पनचलासपुरे सुसमागतान्।।3/12।।
तदन्वये शुद्धमति प्रवीरः, धनुर्भृतां श्रेष्ठतरोऽति मानिः।
अभेजित्नामाऽभयमादधान, श्रीकूर्मवंशजयितुं समेच्छत्।।3/13।।
तस्यानुजो देवमृगेन्द्रनाम, फलोधिनाम्नः स्वपुराज्जगामः।
श्रीकूर्मवंश्यै सह योद्धुमिच्छन्, बुन्दीन्द्रराझे जयदातुकामः।।3/14।।
श्रीकूर्मवंश्यो जयतां वरिष्ठः तदीप्सितं वै मनसा जगाम।
गत्वा स पंचोलपुरस्य भूमौ, राजाऽकरोद्वै स धनुः स चापम्।।3/15।।

युद्ध प्रारंभ हो गया। यहाँ धनुष की टंकार, और प्रत्यंचा की उग्र झंकार से कूर्मवराह, शेषनाग आदि में भय व्याप्त होने और प्रलय की स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही युद्ध प्रसंग में काव्यों में वर्णित शकुनापशकुनों की ओर भी संकेत है, जिनके निवारणार्थ कवि ने अथर्ववेद के आचार्यों द्वारा मांत्रिक प्रयोगों का भी वर्णन किया है।

अपशकुनों[7] को देख कर अभयसिंह की पत्नी ने उसे युद्ध में जाने से रोकना चाहा– पर वह नहीं माना। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, वीर योद्धाओं की हांक, आकाश मार्ग से नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, और गरुड़ आदि के प्रकट होने तथा मनोवांछित वरों के वरण हेतु अप्सराओं के आगमन का वर्णन किया गया है। हाड़ा और कूर्मवंशी वीर योद्धाओं ने सुंदर वाद्य ध्वनि, गीत, स्तुति, उपहास, नृत्य से गूंजते आकाश को आश्चर्यजनक रूप से देखा और वाद्ययंत्रों, आयुधों और सिंहनाद से दिशाओं को व्याप्त करते हुए एक दूसरे पर प्रहार करना प्रारंभ किया।

चतुर्थाङ्ग में दोनों पक्षों के मध्य छिड़े युद्ध और युद्ध में वीरों द्वारा प्रदर्शित शौर्य और स्वर्गप्राप्ति का वर्णन है।

सर्वप्रथम अभयसिंह हाड़ा और फतहसिंह (फतमल्ल) के मध्य युद्ध प्रारंभ हुआ। जब तक दूर रहे, बाणों से एक दूसरे पर आक्रमण किया, तदुपरान्त समीप आ जाने पर तोमर और बरछियों से घात–प्रतिघात हुये। अभयसिंह ने बरछी का प्रहार कर फतमल्ल के घोड़े की पीठ को वेध दिया। फतमल्ल शीघ्रता से दूसरे घोड़े पर सवार होकर युद्ध करने लगा तब अभयसिंह ने कृपाण से प्रहार किया और फतमल्ल मारा गया।

प्रथम युद्धस्तयोः शरवृष्टिभिः अथ तयोस्तदनन्तर तोमरैः।
अभयसिंहनृपफतमल्लयोः, वरछिना रणमण्डल मण्डिनो।।1।।

वरछिना हयपृष्ठविदोरिता, तिरछिनाऽभयसिंह नृपेण ह।
पुनर्हयं द्वितीयं स समारुहत्, रणगतो फतमल्ल हि शीघ्रतः।।2।।
भूयः कृपाणं विधत्स्यतो सतः, चौहानवंश्यो जयतां वरिष्ठः।
सा निस्सरन्ती प्रभोः कराग्रे, यथायनान्ते तडिदेव गामिनी।।3।।
हत्वैव प्रथमं फतमल्लकूर्म्मं, समाजगामाथ हि कोजुरामम्।

फतमल्ल को मारकर अभयसिंह कोजूराम (ईसरदापति) की ओर बढ़ा। वह उस समय शेष–पूजा के लिए आसन जमाये पंडित उम्मेदलाल मिश्र से महाभारत की कर्ण से संबंधित कथा सुन रहा था। कथा समाप्ति पर मिश्र उम्मेदलाल को प्रणाम करके कोजूराम ने युद्ध की इच्छो से प्रसन्नमना रणक्षेत्र में प्रवेश किया। तोपों की गड़गड़ाहट के मध्य वीर अभयमल्ल हाड़ा को सामने खड़े देखा और दोनों ने अफीम भेंट कर एक दूसरे का स्वागत सत्कार किया। यथा–

ततो ददर्शाथ हि कोजुरामं, शेषार्च्चनेष्वासनमादधानम्।
उम्मेदलालाभिधपंडितस्य, मुखस्तु तां कर्णकथां विशृण्वतम्।
श्रुत्वा कथां मीश्रपदं नमित्वा, शेषान्तिके प्रीतमना प्रपेदे।।5।।
हले पदं स्वात्मतया प्रविश्य, रणेच्छया शक्तिमधाच्च शूरः।।6।।
तं शोभ मल्लोग्रं ददर्श वीरं, स विस्फुरन्तं परितो शतघ्नीम्।
परस्परेणाभिमुखौ वरेण्यौ, महाहिफेनेन चकार मान्यम्।।7।।

युद्ध क्षेत्र में युद्ध से पूर्व विरोधी स्वजातीय संबंधी वीरों का एक दूसरे के प्रति जुहार या आदर सत्कार की परम्परा का इस काव्य में भी दर्शन होता है। सगे संबंधियों के मिलन पर अमल (अफीम) ही राजपूतों में मनुहार का सर्वाधिक प्रचलन रहा है। रणछोड़ भट्ट द्वारा विरचित अमरकाव्य में भी भीमसिंह डोडिया द्वारा मानसिंह के जुहार का उल्लेख है,[8] पर अफीम से नहीं, कृपाण से।

युद्ध क्षेत्र में महाभारत की कथा सुनना, शेष की पूजा करना और कथा व्यास को प्रणाम करके युद्धक्षेत्र में प्रवेश करने की कवि की अपनी कल्पना कुछ नवीन सी लगती है। शेष की पूजा संभवतः नागस्वाल प्रदेश में प्राचीन काल से प्रचलित रही हो। अभी भी शेष के मिस शेषशायी विष्णु की पूजा उस प्रदेश में और उसके आस–पास क्षेत्र में प्रचलित है और अभिवादन के रूप में 'जय शेष जी की' वाक्य का उच्चारण होता है सुजससमंड काव्य में कोजूराम द्वारा युद्ध से पूर्व पंचोलासपुर में दरबार करने का वर्णन मिलता है। यथा–

तिसवखति गिलमा चांदणी उप्र गादी तकिया दीया
दीवाण कीया। तिस वखत वीराजमान महाराजा
कोजूराम। सो दो मझिका दुगासा है थटा उप्र हांम।।
दूसरा सिंग्राम...............आदि।

फतमल्ल को मारकर अभयसिंह ने जब उसके मारे जाने की सूचना कोजूराम को दी तो कोजूराम ने अभयसिंह को मारना चाहा। अभयमल्ल ने कोजूराम के सिर पर तलवार का प्रहार

किया। कोजूराम का हाथ कट गया। कटे हाथ से ही उसने भाले का प्रहार कर अभयसिंह के सीने की हड्डी भेद दी। अपने कटे हाथ को तत्काल कपड़े से बांध कर उसने बांये हाथ से अभयसिंह के सिर पर तलवार से प्रहार किया। इस भयंकर प्रहार से तलवार अभयसिंह के शिरस्त्राण (लोहे का टोप) को काटते हुए कमर पर्यन्त चली गयी। अभयमल्ल ने भी उल्टा कोजूराम के सिर पर तलवार का प्रहार किया और कोजूराम मारा गया।

स कोजूरामः स्वकरे निकृन्ते, शीघ्रेण वस्त्रेण निवेष्ठयित्वा।
निकृन्तबाहुर्रविवंशजोनृपः, करेण वामेन दधार चासिम्।।4/11।।
ततोऽतिगम्यातिशयेन कूर्मः, चह्वाणशीर्षे तरसा जघान।
त्राणं भित्वाऽभयमल्लशीर्षं, तिर्यग्गतोऽभजत मध्यदेशम्।।4/12।।
किं त्वां जनित्वा जननी मुमोद, शस्त्र प्रहारैऽनिपुणं च कूर्म।
इत्येव मुक्त्वा असिवरेण तस्य, चह्वाणवंश्यः प्रजहार शीर्षम्।।4/13।।
तदुत्तमाङ्ग नभसि जगाम, श्रीचन्द्रमौलेर्गल कण्ठमालाम्।
अन्तर्हितस्तस्य कबंधचर्मणा, ज्योतिर्विमानेन जगाम सूर्यम्।।4/14।।

कोजूराम को मारकर अभयसिंह ने राजा घासीराम को भी मार गिराया और उसके बाद अपनी गदा चमकाते गदाधर भगवान् विष्णु के दर्शन किये। अभयमल्ल ने घासीराम का सिर उसी तरह काट डाला जिस प्रकार इन्द्र ने वृत्र का शिर काटा था।

कोजूराम नृपं हत्वा घासीराम नृपं तदा।
अपश्यत्तदा गदापाणिं विस्फुरन्तं गदां मुहुः।।4/15।।
बलवनाधिप घासीरामयोः कलिरभूदधि रणमण्डले।
सुरपति वृत्रासुरयोरिव घासिराम शिरो निरकृत्ततः।।4/16।।

अभयसिंह के दो पुत्र, औरस पुत्र साँवळदास और दासीपुत्र फतमल्ल भी युद्ध में मारे गये। उनकी मृत्यु से संतप्त (अनुरक्त) अभयमल्ल के घोड़े को अचलसिंह ने मार गिराया। घोड़े के गिरते ही अभयमल्ल ने तत्काल अचलसिंह को मार कर पुत्र के वैर का प्रतिशोध ले लिया। अचलसिंह को मारते समय उसके हाथ से कृपाण छिटक गई, जिसे उसने नट की भांति लपक कर पकड़ लिया।

अभयमल्लस्य पुत्रौ शत्रुणां भयदायिनौ।
एको महिष्यास्तनयो दासीपुत्रस्तथैव च।।4/17।।
साँवलदास भटाः सूरा फतमल्ल भटास्तथा।
अभमल्ल सुतौ दृष्ट्वा, रणभूम्यां निपातितौ।।4/18।।
पुत्र वैर समासक्तो, अचलो वीर सत्तमः।
अचलेशः महाशूरः अभयमल्ल हयोत्तमम्।।4/19।।
(असिना ताडयत् स्कंधे स हयो निरकृत्ततः।)
तुरगे पतिते सद्य अचलेश शिरोहरत्।
कृपाणं स्खलितं हस्तात् गृहणीतं नटवत् तदा।।20।।

तब बलवन के सामन्त अभयमल्ल ने पुत्रों के बैर का बदला लेकर अपने घोड़े के मारे जाने पर भी बुधानी के सामन्त बहादुरसिंह को मारने हेतु, उसके पास चला गया। पर बहादुर सिंह ने वेग के साथ घोड़े को खींच कर अभयमल्ल के हृदय को बंदूक से बींध दिया। हृदय के बिंध जाने पर भी अभयमल्ल ने बुधानीनाथ बहादुरसिंह का सिर काट डाला। उसके साथ ही अनेक कछवाहा वीरों को भी बाणों से बींध डाला। रणक्षेत्र में बाण, तलवार, भाले आदि से उस वीर ने मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों और रथों को मार गिराया। शवों और रक्त मांस से सने घायलों के मध्य खड़े होकर हाड़ा वंशी अभयमल्ल ने हर्ष युक्त होकर युद्ध रूपी समुद्र को मथ डाला। मथते –मथते जब वह शान्त हो गया तो उसमें निकले रत्नों का लाभ कछवाहा अजितसिंह को मिला। युद्ध समाप्त हो गया और विजयश्री अजितसिंह कछवाहा को मिली।

पुत्रयोर्वैरमादाय बलवनाधिपस्तदा।
बुंदानिपतिना सज्ज वाजिना रहितोऽपि हि ।।4/21।।
वीर बहादुर बेगेन हयमाकृष्य वेगतः।
अभमल्ल हृदि सद्यः शतघ्न्या प्रोतमाकरोत् ।।4/22।।
शतघ्नि भिन्नाथ शरीरयष्टिः चौहानवंश्योऽभयमल्ल शूरः।
रणाङ्गणे सर्वजनैर्निरीक्ष्यः दण्डस्य स्तंभोऽथ कृतस्तुलायाः ।।4/23।।
उरः प्रविद्धोऽभयमल्लशूरो बुन्दानिनाथस्य शिरोजहार :।
बुन्दानिनाथेन सहैव वीरः प्रोते स्म हत्वा शरकूर्म्मवंश्यान् ।।4/24।।
नराश्वमातङ्ग रथाकुलं तदा शरांसिशक्त्येष्टि निपातदुस्सहम्।
अभित जुष्टं हतदेहसंकुलं रणाजिरं लोहितमद्बभौ तदा ।।4/25।।
प्ररूढ हर्षोऽभयमल्ल अस्थिः रणोदधिं वै मथयाञ्चकार ।
मथन्मथन्वै स्तमितः प्रशान्तः रत्नानि लेभेऽजितसिंहकूर्मः ।।4/26।।

कवि ने इस काव्य ग्रंथ में अंदम्यवीर अभयमल्ल के हाथों कछवाहा पक्ष के अनेक वीरों के मारे जाने का उल्लेख किया है, पर उक्त पाँच प्रमुख वीरों के अतिरिक्त अन्यों के नाम नहीं गिनाये हैं। 'सुजससमंड' काव्य ग्रंथ में कवि ने लगभग 35 वीरों का नामोल्लेख किया है जो कछवाही सेना में सम्मिलित थे और जिनमें से लगभग 25 नाम ऐसे व्यक्तियों के हैं जिन्होंने वीर–गति प्राप्त की। ये नाम है–

राजावत क्रिपाराम (सूरतराम का पुत्र)–काम आया
गौड़ दोला या दला (जोतिराम का पुत्र)–काम आया
धीरावत सुरतांण (रावत कुसला का पुत्र)–काम आया
नरूका मोहणराम और सिंघा (सांवळदास का पुत्र)–काम आया
सेरसिंह चौहान (खेम या पेमा चौहान का पुत्र)
कन्हीराम चौहान (स्यामसिंह का पुत्र)–काम आया
किसोर चौहान
राव हठमल्ल मेड़तिया

कछवाहा रावत सवाईराम (जोगीवंशी परसराम का पुत्र)
भरथसिंह गौड़ (नाथूराम का पुत्र)
कछवाहा कान्हा (छाजूराम का पुत्र)
सोलंकी लिखमीदास (भावसिंह का पुत्र)—काम आया
सदाराम चौहान खीची (रघुपति का पुत्र)
रामजी धायभाई—काम आया
सवाई ईसर (सांगा का पुत्र) बागड़ी वंश का
गौड़ उग्रसिंह (थानसिंह का पुत्र)
डूंगरसिंह
सिंह चौहान (हरिदास का पुत्र)
सुरताण शेखावत (रघुनाथ का पुत्र)
बकसीराम (जोरावरसिंह का पुत्र)
किसनसिंह राजावत (कला, कल्याण का पुत्र)
गौड़ बखतसिंह (किसोरसिंह का पुत्र)—काम आया
गोधू धायभाई सुखावत—काम आया
गिरधारी भाट लाखणोत
सवाई जीवराज
मुकुंदसाह सोलंकी (पृथ्वीराज का पुत्र)
धायभाई अचलराम
धायभाई पेमा (गोरधन का पुत्र)—काम आया
तेजा खवास (सुखा का पुत्र)—काम आया
हयायत खान (महमद खाँ का बेटा)—काम आया
मियां रोशन खाँ—काम आया
सवाई जीवराज—काम आया
हाड़ा सालिमसिंह
पृथ्वीराज (भावसिंह का पुत्र)—काम आया
आतमराम गौड़—काम आया
रघुपति गौड़—काम आया
पेमाराम चौहान—काम आया
धीरावत भारतसिंह (वजा का पुत्र)—काम आया
तेजा (ज्योतिराम का पुत्र)—काम आया

पांचवे अंग के प्रारंभ में अभयमल्ल के भाई फलोधी के राव देवीसिंह द्वारा युद्ध क्षेत्र में प्रदर्शित वीरता का वर्णन किया गया है। उसने अनेक कछवाहा सरदारों को मार गिराया। उसी प्रकार हाड़ा वंश के भी अस्त्र शस्त्रों से कटे शूरों के शव युद्ध क्षेत्र में पड़े हुए थे।

नरवर के मंत्री खण्डराय (खाण्डेराम) ने अनेक वीरों को धराशायी कर दिया। अंत में फलोधी के राव देवीसिंह से युद्ध करते हुये वह भी वीरगति को प्राप्त हुआ। विजयलक्ष्मी ने अस्त्रशस्त्रों के अठारह घाव खाये हुये अजितसिंह का वरण किया।

नरवर सचिवोऽपि खण्डरायेतिनामा
रणभट प्रति शूरान् खण्डशः कर्तयित्वा।
फलधिपति देवात् योधयित्वा चिरेण,
रणगतभटयाजौ शेरते शान्तदृष्टिः ।।5/4।।
एवं प्रशान्ते रणरङ्ग मण्डले
जयस्यलक्ष्मीः परितोऽभिपश्यति।
साष्टादशास्त्र व्रणाङ्कितांङ्ग
अजितसिंहं वरयां चकार ।।5/5।।

अभयसिंह का पुत्र नाथूराम अपने नगर बलवन को भयभीत होकर चला गया, पर उसके कामदारों (अमात्यों) ने उसे पारितोषित किया। फलोदी का राव देवीसिंह शस्त्रों के तीन घाव खाकर युद्ध भूमि में पड़ा तड़फड़ा रहा था। करवर (कारवाड़) का राव सालिमसिंह उसे पालकी में डाल क़र अपने शिविर में ले आया।

अभयसिंहस्य तनयो नाथुरामेति नामतः।
जगाम स्वपुरं भीतो स्वमात्यैः परितोषितः ।।5/6।।
करवरपतिना दृष्टो देवसिंह फलोधिपः।
धूयमान– स्वशरीरेण त्रिशस्त्रक्षत पीड़ितः ।।5/7।।
शिविकायां निवेश्याऽथ देवसिंहं प्रपीडितं
जगाम शिविरे स्वीये करवराधिपस्तदा।।5/8।।

आमेरपति सवाई जयसिंह अपने कुल के वीरों की विजय के समाचार सुन कर पंचोल कुसथल में आया और रणक्षेत्र को चारों ओर से देखा। उसने शस्त्रघातों से आहत कुमार अजितसिंह को, युद्ध के प्रत्यक्षदर्शी उपस्थित सभी लोगों के सामने देखकर प्रेमपूर्वक बधाई दी तथा बूंदी को जीत कर अधीन किये गये गाँवों में से रत्नसिंह (सारसोप के कुमार) को पंचोलास (ईसरदा के कुमार) अजितसिंह को कुंभस्थल (कुशस्थल)– कुसतला, सौभाग्यसिंह (सिवाड़ के आनंदसिंह के.पौत्र और सांवलसिंह के पुत्र) को फलोधी, शिवसिंह (संभवतः सौभाग्यसिंह का भाई या मानतोड़ी (नानेड) के अचलसिंह का पुत्र को आठ गांव और बहादुर सिंह के पुत्र को दस गाँव दिये।[10]

आमेरनाथः स्वकुलोद्भवानां, जयाभिधानं प्रतिश्रुत्य हर्षात्।
जगाम पंचोलकुशस्थलेषु, संग्रामक्षेत्रं परितो विपश्यत्।।9।।
उत्पन्न हर्षो जयसिंहनामा, असह्यतेजो रिपुसङ्घटानाम्।
दृष्ट्वा कुमाराजितसिंह नामं, शस्त्र प्रहारांकित सर्वगात्रम्।।11 ।।

पश्यत्सु सर्वेषु जनेषु तत्र, महाहवं प्रेक्षतमेषु सत्सु।
संवर्द्धयामास अतीव प्रीत्या कौमारभावे परिवर्तमानम्।।12।।
पंचोलं रत्नसिंहाय अजिताय कुंभस्थलं।
फलोधि सौभाग्यसिंहे शिवसिंहे वसूनि हि ।।13।।
तथाऽपराणि ग्रामाणि पंक्ति संख्यानि यानि च।
बहादुरसिंह तनये प्रददौ राजसत्तमः।।

चौहानों से जीते गये सभी गाँव अपने सामन्तों में बांट कर जयसिंह ईसरदा चला गया। विजय के चि ह्नों को स्फुरित करके वह अपनी राजधानी (जयपुर) गया और अजितसिंह का कुल की परम्परा के अनुसार राज्याभिषेक किया। तब ईसरदा का राजपुत्र अजितसिंह जयचिह्नों से अलंकृत होकर दुंदुभि घोष के साथ अपनी अलंकृत राजधानी में गया यथा–

एवं सर्वाणि ग्रामाणि चह्वाणानां जितानि च।
विभज्य सर्वदायादेवेश्रदाय जगाम ह।।15।।
जयस्य चि ह्नानि पुरः स्फुराणि,
कृत्वा जगामाथ ह राजधान्याम्।
अजितसिंहस्य कुलोचितस्य,
राज्याभिषेकं रचयां बभूव।।16।।
ईसरदाधिपतेः पुत्रो जयचिह्न समन्वितः
ययौ दुन्दुभिघोषेण राजधानीमलंकृताम्।।17।।

काव्यप्रणेता लघुमिश्र ने इस अंग के अंत में दो श्लोकों में युद्ध की तिथि और अवधि की सूचना दी है। उसके अनुसार यह युद्ध सं. 1787 की बैसाखी अमावस्या को 11 घड़ी (ग्यारह घड़ी) दिन चढ़ने पर उग्ररूप में हुआ और उसी दिन दो घड़ी पश्चात् शान्त भी हो गया।[11]

संवत्सरे सप्तदशाभिधाने सप्ताशिवर्षे परिवर्तमाने,
वैशाखमासे सुतिथोह्यमायां दशैक संख्या घटिका गते दिने।
तस्मिन् दिने ह्याहवमुग्रजातं, बुन्द्रीन्द्रह्यायामेर वंश्ययोः परम्
तस्मिन् दिने द्विघटिकावसाने प्रशान्तमासीद्रणरंगमण्डलम्।।5/19।।

छठे अंग में अजितसिंह के पश्चात् ईसरदा की गद्दी पर बैठने वाले अजितसिंह के वंशजों का वर्णन किया गया है। वे हैं–

1. समस्त कलाओं में प्रवीण, गुणीजनों के लिये कुबेर पृथ्वीसिंह।

2. शस्त्रबल पर प्रजा के भय का निराकरण करने वाला वीर अभयसिंह।

3. अपनी कीर्त्ति को दिग्दिगन्त में फैलाने वाला नीतिनिपुण शत्रु विजेता केहर (शेर) सिंह।

4. केहर सिंह (शेरसिंह) का पुत्र रघुनाथसिंह जिसने एक चौहानवंश की और दूसरी हाड़ा वंश की कन्याओं और तीसरी मारवाड़ की राठौड़ वंशी एक कन्या से विवाह किया। राठौड़ वंश की सबसे छोटी रानी से उसको माधवसिंह नाम के भाग्यशाली पुत्र की प्राप्ति हुई। रघुनाथसिंह के

बड़े पुत्र का नाम प्रतापसिंह था। वह बड़ा होने के कारण ईसरदा की गद्दी पर बैठा और छोटा माधवसिंह जयपुर के महाराजा रामसिंह के गोद जाकर जयपुर का राजा बना।[12]

यहाँ कवि ने ईसरदा की गद्दी पर बैठाने हेतु रघुनाथसिंह की रानियों में छिड़े विवाद व्यास फतेहचन्द्र मिश्र, रोडूराम गर्ग द्वारा की गई भविष्यवाणियों और आमेर (जयपुर) के महाराजा रामसिंह द्वारा प्रतापसिंह को ईसरदा का सामंत घोषित कर माधवसिंह को आमेर (अंबर > जयपुर) का राज्य सिंहासन प्राप्त होने का वर्णन किया है।

चौहानवंशभयदो विजिताप्रतापी, धनुभृतां श्रेष्ठतरोति मान्यः।
अजित (सिंहेति) नृपाग्रणीरभूत, स्वराजधानीं रमयाञ्चकार ।।1।।
(कला) समस्तासु प्रवीणचेता, कुबेरमूर्त्तिः गुणधारकेषु।
पृथ्विसिंहो नृपति गुणाग्रही दानाधिदो श्रेष्ठतरां बभूव ।।2।।
यो वैस्वर खड्गेन भयार्द्दितानां भयं प्रजानां सु निराकरोत्प्रभुः।
भयार्द्दिता यस्य तु वैरिवृंदा सुखं न लेभेऽभयसिंह नामतः।।3।।
तस्यात्मजो केहरिसिंह नामानति प्रवीणो नयतत्त्ववेत्ता।
पश्य सुकीर्तिं गुणिनो गृहीत्वा, विस्तारयामासु दिगंतरेषु ।।4।।
तस्मिन् प्रयाते परलोक यात्रां, जेतर्य्यरीणां तनयं तदीयं।
उच्चैः शिरत्वार्ज्जित पारिपात्रं, लक्ष्मिसि शिवे रघुनाथसिंहम्।।5।।
रघुनाथसिंहेन विवाहिता स्त्रियो, कुलोद्भवाचारुविशालनेत्रा।
चौह्वानवंश्या प्रथमा बभूव, तथापरा चास्थिजवंशजा च ।।6।।
ताभ्यां कनिष्ठा मरुदेशसंभवा, राठौड़ वंश्याद्युति वामनेत्रा।
तस्याभवत्माधवसिंहनामा,[13] भाग्यशालीवनृपो दिलीपः।।7।।
रघुनाथसिंहस्य बभूव तु द्वौ पुत्रौ प्रभावात् बलिनां वरिष्टौ।
जेष्टस्तुजेष्टत्वमुपागतो वै तथा परोऽमेर नृपो बभूव ।।8।।
व्यासस्य मूर्त्तिः फतेचन्द्रमीश्रो गर्गावतारो रोडूरामनामा।
इत्यादि विद्वत्परिदृष्ट योगैः शीघ्रं विलबं फलदा कुमारं ।।9 ।।
औत्तानपादितनयो कनिष्ठः तपः प्रभावान त्रि(दि)वस्यमूर्ध्नि।
राज्यं लेभे रघुनाथजोऽपि आमेरनाथास्तु दिव्यमुग्रम।। 10 ।।
सा वै कनिष्ठा रघुनाथकांता, स्वयैव जात–तनयं लघिष्टं।
राज्याभिषेकार्थ चकार यत्नं या दैवकृत्यं न विजानतीह।। 11 ।।
इक्ष्वाकुवंशे तनुजो वरिष्ठः, राज्यं करोत्येव परंपरायाः।
सा वै स्वपुत्राय ददातुमिच्छन् राज्ञी यथा दाशरथेः कनिष्ठा ।। 12 ।।
इतीव वादं परमं विदित्वा आमेरनाथो नयतत्त्ववेत्ता।
प्रतापसिंहं नृपतिं चकार श्रीरामसिंहो नृपतिवरेण्य।। 13

श्लोक सं॰ 14 से कवि ने प्रतापसिंह के जन्म की तिथि और नामकरण का उल्लेख करते हुए उसके गुणों का बखान और मृत्यु की ओर संकेत किया है –

तस्याग्रराज्ञी च य भामि सस्ता शुभे मुहूर्त्ते सुसुवे कुमारं।
संवत्सरे सप्तदशाभिधाने चैत्रे शुभे विष्णु दिने स कृष्णे ।।14 ।।
विप्रै प्रयुक्तानि ग्रहाणि ज्ञात्वा असूर्यगैसूचित संपदानि।[14]
ततः पिता विप्रजनैः प्रयुक्ताः प्रतापनामा तनयं चकार ।।15 ।।

प्रतापसिंह स्वभाव से दयालु, कमलदलों की वृष्टि करने वाला, कुंद के समान दंत पंक्तिवाला, शत्रु रूपी हाथियों के लिये सिंह, कुलरूपी कुमोदिनी के लिये चन्द्रमा के विशेषणों से विभूषित किया गया है–

प्रताप इत्युद्‌गतनामधेय दयान्वित पद्‌मदलाभिवृष्टिः।
कुंदाग्रदंतो रिपुदंतिसिंहः पति पृथिव्याः कुलकैरवेन्दु ।।16 ।।

राजा के मंत्रियों ने राजा के बड़े पुत्र तथा राजा की सेवा की और उस बालक राजा के साथ उन्होंने राजस्व में वृद्धि की। मानव गोत्रीय अपने अग्रज राजाओं, पिता और पितामह के समान राज्य किया। तब उस राजा के मन्त्रियों ने राजा के प्रति शत्रुतापूर्ण कष्ट देने की इच्छा की (या राजा को मार डाला)।

अथैव ते तस्य नृपस्य मंत्रिणः सुतं वरिष्ठं नृपतिं सिसेवे।
स बाल (ए) वार्यपतिनृपोत्तमः सहैवतैर्म(धुरा)गमैस्तदा ।17 ।।
चकार राज्यं मनु पुंगवाग्रजो यथास्य तातो प्रपितामहस्तथा।
ततस्तु राजनममित्र तापनं समीहते तस्य नृपस्य मंत्रिण :।। 18 ।।

प्रतापसिंह के गुणों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वह कांति में कामदेव की मूर्त्ति था, काव्यरचना में कुशल, दानी, मानी और अपने आदमियों के लिये कृपालु था। वह पंड़ितों को धन देने वाला, मल्लक्रीड़ा का लोभी, प्रतिदिन महाभारत की कथा में रुचि रखने वाला, पारम्परिक अस्त्र–शस्त्रों के चलाने में दक्ष, शत्रुओं का दमन करने वाला और स्वजनों की सुनने वाला था। इसकी अद्‌भुत कीर्त्ति संसार को धवल करती हुई सहृद्‌जनों को अनुरक्त कर रही है और शत्रुओं को मलिन बना रही है।

अत्यद्‌भुता श्रीप्रतापकीर्त्ति, सा धवलयत्यपि जगं(अ)ति।
रक्तान् करोति सुहृदो मलिनयति वैरिवृंदानि।। 20 ।।
कान्त्या कंदर्पमूर्त्तिः कविगतिं कुशलो श्रीप्रतापो बभूव।
दानी मानी कृपालुर्निजजनमुखकृत् ऋद्धिदो पंडितानाम्।।
मल्लक्रीड़ाभिलो(भी) प्रतिदिन रुचिकृत् भारतस्य कथायां।
अन्योन्यं शस्त्रयानं रिपुदलनं श्रूयते निज्जनेऽपि।। 21 ।।

ग्रंथ का अंतिम पत्र अप्राप्त है। उसमें ग्रंथ की अंतिम प्रशस्ति और पुष्पिका रही होगी। रचनाकाल का उल्लेख उसमें रहा होगा। पर जैसा कि रचना के प्रारंभ में ही कहा गया है उसने प्रतापसिंह के विनोदार्थ यह रचना की थी, अतः प्रताप सिंह के अंतिम काल में ही यह रचना की गयी होगी।

ज–4, सेक्टर 5, (उदयपार्क) हिरणमगरी
उदयपुर (राज.) 313 001

: संदर्भ :

1. कोजूराम मोहनसिंह कछवाहा का पुत्र और आमेर के महाराजा मानसिंह का वंशज था। उसका वंशक्रम निम्न प्रकार है। मानसिंह > जगत्सिंह > झूंझारसिंह > संग्रामसिंह > गजसिंह > विजयसिंह > मोहनसिंह > कोजूराम।

2. उक्त पाँचों ही वीर मोहनसिंह के पुत्र थे। मोहनसिंह का एक अन्य पुत्र भवानीसिंह था, जो सरस भागिना का ठाकुर था। उसका काव्य में उल्लेख नहीं है। (कछवाहा मानसिंह की वंशावली)

   सुजस समंड– साहिबदान कृत में अचलसिंह को आणंदसिंह के पुत्र तिलोकसिंह का पुत्र कहा है। यथा–

   पंचमौ बंधव पाण, अचलेस जोध जुवाण।।

   आराणिपाण अजन, तिलोकसिंघ सुतन।।

   आणंद जेम अचळ दइवाण पाण दुझळ।। (पत्र 21 वां)

3. महावीर भवन जयपुर, में ग्रंथ सं० 2 के पृष्ठ 64–65 पर उल्लेख है कि सवाई जयसिंह का भाई विजयसिंह अपनी बहिन बख्तावरबाई का विवाह बादशाह बहादुरशाह से करना चाहता था। अतः जयसिंह ने गुप्त रूप से उसका विवाह सामोद ले जाकर बूंदी के राव बुधसिंह से कर दिया। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के ग्रंथांक 3073 में रानी का नाम आनंदकंवरी दिया गया है।

4. कछवाहां री वंशावली–श्यामसिंह रत्नावत कृत दस्तूर कोमवार में जिल्द 24 (राजलोक सगाई (महाराजकुंवर) में उक्त पुत्र का नाम भवानीसिंह कहा गया है। इसके अनुसार अप्रैल 1728 में भवानीसिंह 8 वर्ष का था। उस समय मेवाड़ की ओर से सलूंबर ठाकुर केसरीसिंह आदि जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह के लिये सगाई का नारियल लाये, तब बुधसिंह की रानी अमर कुंवर यहीं थी। वंशभास्कर जि० 4, पृ० 4096–4100 के अनुसार रानी के कहने से जयसिंह ने भवानीसिंह के लिये भी नारियल स्वीकार कर लिया। इससे रुष्ट होकर बुधसिंह ने पुत्र को अपना बताने से इन्कार कर दिया। (सवाई जयसिंह– डॉ वीरेन्द्र स्वरूप भटनागर– 1984, पृष्ठ 137

5. सुजस समंड में उल्लिखित फतहसिंह ही जयसिंह का उक्त अमात्य प्रतीत होता है।

6. और भी–

   सो ही म्हैं करस्यां जो चास्या, दिन रुपया सै दोय दिरास्यां।
   खूबी करो'र बैठा खाओ, चित मैं बूंदी देस न मानौ।
   लंखि वचन जो बूंदी लीजै, क्रत सालिमसुत सुत न करीजै।।

7. अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में स्वप्नों के रहस्यों और उनके निवारण से संबंधित मंत्र उपलब्ध हैं। संभवतः इन्हीं मंत्रों और विनियोगों का प्रयोग बुरे स्वप्नों के फल के निवारण हेतु किया जाता रहा होगा। अथर्ववेद षष्ठ काण्ड सू. 46 के 3 मंत्र, 6/21/1; 7/84/4; 7/100/1; 7/101/1 में इस प्रकार के बुरे स्वप्नों के पापों से बचने हेतु प्रार्थना की गयी हैं। उदाहरणार्थ–

पर्यावर्ते दुःस्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्न मुखा शुच ः ।।1।। अथर्व– 7/100/1

(मैं बुरे स्वप्न से उत्पन्न पाप से परे रहूं। अनिष्ट संकल्प के पाप से भी परे रहूँ। मैं दोष अपने बीच में ईश्वर स्मरण और पवित्र मंत्र से असत्संकल्पों से उत्पन्न होने वाली ह्रदय की संतापजनक प्रवृत्तियों को दूर कर दूं।)

8. भवांस्तत्र समायातु, मया घोर रणे तदा।
जुहारस्तत्र कर्तव्यः पूर्वोक्तं वाक्यं इत्यहो ।।79।।
विशिष्ट कट्टारकमुत्कटाक्षः चिक्षेप पादे क्षत कारितस्य।
एवं विधायैव जुहारशब्दं, स्वस्या जगादेतिजगत्प्रसिद्धम् ।।73।।

9. विदुरनीति में भी ऐसा ही वर्णन है–

द्वावेव पुरुषौ राजन् सूर्यमण्डल भेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः।।

10. पं. मधुसूदन ओझा कृत 'मत्स्यदेश का इतिहास– पृष्ठ 477 पर जयसिंह के द्वारा सारसोप के रतनसिंह का पांचोल्लास, ईसरदा के कोजूराम के बेटे अजितसिंह को कुसथला, नानेड़ के ठाकुर अचलसिंह के बेटे हरिसिंह को आठ गांव, बुधानी के बहादुरसिंह के बेटे को दस गाँव तथा रसोरपति घासीराम के बेटे को पांच गाँव देने का उल्लेख है। (काव्य में उल्लिखित शिवसिंह ही सुजससमंड का हरिसिंह (हरसिंह) प्रतीत होता है। सौभागसिंह सिवाड़ के आनंदसिंह के तीसरे पुत्र सांवलसिंह का पुत्र था, जिसे फलौदी मिला।

11. श्री देवीसिंह, मंडावा, ने "राजस्थान के कच्छवाहा", पुस्तक में युद्ध की तिथि 6 अप्रैल 1730 दी है। श्री मधुसूदन ओझा ने मत्स्यदेश का इतिहास, पृष्ठ 322 पर युद्ध की यही तिथि वैशाख कृष्ण अमावस्या दी है। यह ग्रंथ पोथीखाना जयपुर में पाण्डुलिपि रूप में उपलब्ध है।

12. महाराजा मानसिंह की वंशपरम्परा से संबंधित एक वंशावली में माधवसिंह का जन्म नाम कल्याणसिंह दिया है। कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद में कायमसिंह नाम दिया है।

13. म. माधवसिंह का जन्म भादवा बदी 9 सं. 1978 (29 अगस्त 1861) में हुआ।

14. रघुवुंशमहाकाव्य की छाया–

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंस्थितैरसूर्यगैः सूचित भाग्यसम्पदः ।। रघुवंश, 3

जयनगरपंचरंगमनुशीलनम्

डॉ॰ दामोदर शास्त्री

'जयनगरपंचरंगम्' खण्ड–काव्य कविमल्ल पं॰ हरिवल्लभ भट्ट (वि॰सं॰ 1923 श्रावण शुक्ला 5 से सं॰ 1977 पौष शुक्ला 3) जयपुर निवासी द्वारा रचित है। यह निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से 1894 ई. में प्रकाशित किया गया है। इसमें पाँच रङ्ग हैं, कुल श्लोक संख्या 294 हैं।

प्रथम रंग में 49 पद्य हैं जिनमें मंगलाचरण, गुरुवन्दना, खलनिन्दा, सज्जनप्रशंसा, कविप्रशंसा और अन्त में गीतिछन्द से कविमल्लजी ने इष्टदेव का स्मरण करते हुये कामना की है कि लेखक की कुशल बनायी रखें। इस रंग का अन्तिम पद्य कवि परिचयात्मक है जिस पर नैषधकार श्रीहर्ष की छाया है।[1]

द्वितीय रंग के 74 श्लोकों में जयपुर नगर का आलंकारिक वर्णन किया गया है। कछवाहा राजवंश द्वारा शासित ढुण्ढार देश कविमल्लजी के अनुसार 100 कोस में विस्तृत है। इसकी अग्रिम राजधानी के रूप में जयपुर नगरी का वर्णन किया है।[2] इतिहास के मतानुसार ढुण्ढार देश की पूर्व राजधानी 'आमेर' रही है।

तृतीय रंग के 59 श्लोकों में जयपुर नगर के प्रमुख स्थानों का वर्णन है। जिनमें स्वः शूली (सरगा शूली), हवामहल, त्रिपोलिया, राजप्रासाद, चतुष्पथ (चौपड़), तालकटोरा नामक तालाब, सुदर्शनगढ़ (नाहरगढ़), रामनिवास उद्यान, चित्रशाला (म्यूजियम), पुराना घाट, मानसागर एवं नगर के अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन किया है, जिनमें उत्सवविशेष पर इस नगर की साज–सज्जा का मनोरम व हृदयहारी चित्रण है।

सम्पूर्ण रंग का लगभग तृतीयांश में स्वः शूली (सरगाशूली) का वर्णन है। यह सरगाशूली ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'विजयस्तम्भ' माना जाता है। यह 'ईश्वरलाट' के नाम से भी इतिहास प्रसिद्ध है, क्योंकि इसको जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र सवाई ईश्वरसिंह ने अपनी मराठा विजय पर बनाई थी। इसके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ भी हैं, जिनका संबंध तत्कालीन मंत्री अथवा प्रधानमन्त्री हरगोविन्द नाटाणी की पुत्री के साथ जोड़ा जाता है। कविमल्ल जी वैमात्रेय ज्येष्ठ भ्राता श्री कृष्णराम भट्ट ने इस विषय में अपने 'कच्छवंशमहाकाव्यम्' में संकेत किया है।[3]

कविमल्लजी ने अपनी कवित्वशक्ति से इस सरगाशूली के संबंध में अनेक उद्भावनायें की हैं; जिन्हें विभिन्न अलंकारों के माध्यम से यहाँ प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह उनकी कल्पना शक्ति पाठकों के लिए आह्लादकारिणी है।

जिन 20 पद्यों में कविमल्ल जी ने सरगाशूली का वर्णन किया है उसमें प्रथम श्लोक में

उन्होंने इसे सवाई ईश्वरसिंह द्वारा निर्मित बतलाया है। इसका संकेत उन्होंने पहले श्लोक की पाद टिप्पणी में किया है। इससे इस घटना की ऐतिहासिक सम्पुष्टि होती हैः–

"पूर्वैः श्रीजयपत्तनस्य पतिभिर्नाकौकसः प्रोत्सुकान्
सर्वान्दर्शयितुं स्वकीयनगरस्याभोगशोभां नवाम्।
आकाशाभिमुखं महोन्नतमिदं मन्ये विनिर्मापितं
स्वः शूलीत्यभिधानतः पृथुतरं निः श्रेणिकामण्डलम् ।।3/1।।

इस पद्य की पाद टिप्पणी में कविमल्लजी ने 'पूर्वैः' का स्पष्टीकरण करते हुये "ईश्वरसिंह वर्मभिः" लिखा है, चूंकि कविमल्लजी सवाई रामसिंह द्वितीय के समय में हुये थे, जिनका समय 1835 से 1880 ईस्वी माना जाता है और इस सरगाशूली का निर्माण सवाई ईश्वरसिंह ने करवाया था, जिनका समय 1743 से 1750 ईस्वी रहा है। इसीलिये उन्होंने 'श्रीजयपत्तनस्य पूर्वैः पतिभिः' वाक्य से सवाई ईश्वरसिंह को स्मरण किया है। उनकी यह कल्पना है कि मानों ईश्वरसिंह ने अत्यन्त उत्सुक देवताओं को अपनी नगरी की शोभा दिखाने के लिये ही आकाशाभिमुख, अत्यन्त उन्नत, सीढ़ी के आकार वाली इस सरगाशूली का निर्माण करवाया है। इसकी ऊंचाई और आकृति से कविमल्लजी की कल्पना साकार सी प्रतीत होती है, क्योंकि किसी वस्तु की शोभा को देखने के लिये ऊँचे स्थान से देखना आवश्यक होता है। चूंकि उनके पिता सवाई जयसिंह द्वितीय (1699 से 1743 ईस्वी) ने सन् 1728 में इस नगरी का निर्माण प्रारम्भ किया था। अतः इसका पूर्ण विकसित रूप सवाई ईश्वरसिंह के समय में बन सका होगा, इसीलिये कविमल्लज़ी ने "स्वकीय नगरस्याभोग शोभां नवां सर्वान्दर्शयितुम्" आदि शब्दावली का प्रयोग किया है, जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

कविमल्लजी की सरगाशूली के संबंध में कल्पनायें चरमोत्पादक हैं। सन्देह के रूप में यह पद्य दर्शनीय है –

"वृद्धिं प्राप्य पतन्नधः किमु वियद् गंगाप्रवाहो महा–
न्किंवा स्यन्दनविश्रमाय सवितुः स्तम्भः समुत्तम्भितः ।
मूर्धा वा नगरस्य किं त्रिजगतीं संद्रष्टुमुत्कन्धरः
स्वः शूलीं समवेक्ष्य चेतसि चलत्येषा विकल्पावली ।।3–2।।

श्वेत आकार वाली सरगाशूली जल बढ़ जाने से नीचे की ओर पृथ्वी पर गिरता हुआ आकाश से गंगा का प्रवाह मात्र है, अथवा क्या सूर्य के रथ के विश्राम के लिये स्तम्भ रूप में इसे खड़ा किया गया है, जो शायद ऊपर उठकर तीनों लोकों की शोभा को देखने का प्रयास कर रही है। इस प्रकार एक ही सरगाशूली में नाना कोट्यवगाही ज्ञान होने से सन्देह अलंकार है।

लोकमान्यतानुसार यह पृथ्वी 9 खण्डों में विभक्त है। उन सभी खण्डों को अलग–अलग रूप में एक ही स्थान से देखने के लिये मानो जयपुर महाराजा ने अपनी दक्षता का प्रजा में प्रदर्शन करने की दृष्टि से इस सरगाशूली का निर्माण किया है जो 9 खण्डों में विभक्त है।[4]

कविमल्लजी की एक अन्य कल्पना अत्यन्त विस्मयोत्पादक है। उनके अनुसार यह

सरगाशूली मानों अत्यन्त क्रुद्ध हुये रसातल के अधिपति महाराजा बलि द्वारा स्वर्ग में रहने वाले इन्द्र के प्रति छोड़ा गया उनका बाण है, जो वर्षा ऋतु में मेघ गर्जना को सुनकर फेंका गया है।[5] यह भ्रांति उन लोगों को होती है जो सरगाशूली को नीचे खड़े होकर देखते हैं। आज के युग में यदि कविमल्लजी होते तो शायद वे तो इसे रॉकेट से उपमित करते, क्योंकि उसकी भी आकृति सरगाशूली के समान ही होती है, उसका ऊपरी भाग भी बाण के समान तीक्ष्ण है।

इस जयपुर नगर की सौन्दर्य प्रशंसा को लिपि बद्ध करने के लिये मानों यह विश्वकर्मा की लेखनी हो, जिसे उन्होंने सीधी खड़ी कर रखी है। कविमल्लजी के अनुसार विशिष्ट लेखनी के रूप में शोभित हो रही है–

लिखितुं जयनगरनुतिं कारुभिरभ्युन्नतीकृता गगने।
किमु लेखिनीव काचित् स्वः शूली परिलसत्येषा ।। 3/13 ।।

जयपुर के संस्थापक महाराजा ने अनेक विभिन्न महलों का निर्माण करवाया है, जिसमें हवामहल, बादलमहल, जलमहल आदि प्रसिद्ध हैं। कविमल्लजी ने वह कल्पना की है मानों यह सरगाशूली नहीं अपितु आकाशमहल है। उन्होंने लिखा है–

"इदं स्वःशूलिकादम्भाज्जयपत्तनभूभुजा।
आकाशहर्म्यं प्रोत्तुङ्गं कारितं सुविलक्षणम्।"

यद्यपि सरगाशूली का वर्णन कुछ अन्य कवियों ने भी किया है परन्तु वह वर्णन न तो इतना विस्तृत है और न इतना सूक्ष्म ही। कविमल्लजी ने जयपुर की सरगाशूली का हृदयग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है।

जयपुर नगर के जिन अन्यान्य स्थलों का कविमल्लजी ने वर्णन किया है उनमें रामनिवास उद्यान महत्वपूर्ण है। पन्द्रह पद्यों में इस बगीचे का वर्णन मिलता है।

रामनिवास उद्यान नगर द्वार के बाहर है। कविमल्लजी ने उसका स्वाभाविक आकर्षण रूप में वर्णन किया है। इस उद्यान को देखने पर आँखों की पलकें स्थिर हो जाती हैं।[6]

प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही स्थलकमलों के खिलने से क्यारियाँ मालाओं के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत इस वर्णन से प्रतीत होता है कि उस समय इस उद्यान में स्थलकमल एवं जलकमल के अतिरिक्त अन्यान्य फूलों की भी भरमार थी। परन्तु अब यह शोभा दृष्टिगोचर नहीं होती। पुष्पों से वायु उनकी सुगन्ध को चारों ओर फैलाती रहती है। वृक्षों की पंक्ति एवं लतासमूह के हरित रंग की समानता के कारण हरा रास्ता बनाया गया सा प्रतीत होता है।[7]

उद्यान के मध्य स्थित तालाब के स्थिर जल का वर्णन करते हुये कविमल्लजी ने लिखा है–

'दर्पणो वनदेव्येव स्थापितो मुखमीक्षितुम्।
उद्यानमध्ये तदिदं भाति स्थिरजलं सरः" ।। 3/42 ।।

उनके अनुसार यह तालाब का स्थिर जल नहीं, अपितु दर्पण है, जो वनदेवी मुखावलोकनार्थ यहाँ स्थापित किया गया है।

कविमल्लजी ने एक स्थान पर धारायन्त्र (फब्बारे) से उत्पन्न जलबिन्दुओं के सफेद शिलाओं के स्तम्भ से गिरते हुये के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना की है कि मानो भूतभावन व भवानी शंकर महादेव के जटाजूट में भागीरथी की तरह जलबिन्दु सुशोभित हो रहे हैं।[8]

इस उद्यान के मध्य भाग में महाराजा के सुन्दर प्रासाद का निरूपण करते हुए कविमल्लजी ने लो कोत्तर शिल्पियों द्वारा बनाये गये इस महल में चित्रित समस्त देवताओं के चित्रों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें यहाँ उतारा गया हैं।[9] उद्यान के आकाश मण्डल में उड़ती हुई चीलों को देवताओं के विमानों के रूप में उत्प्रेक्षित किया है।

हवा महल का वर्णन पाँच पद्यों में किया है। हवामहल के ऊपरी विषम भाग के सम्बन्ध में कविमल्लजी ऐसी कल्पना करते हैं कि मानों पर्वतों की चोटियों को उत्खनन करके यहाँ एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है। इस हवा–महल के ऊपरी भाग की विषमता को पर्वत शृंखलाओं के समान माना है।[10]

हवामहल में अनेक कांच खण्ड लगे हुये हैं– उनमें सूर्य का बिम्ब प्रतिबिम्बित होकर असंख्य सूर्यों के चमकने का भ्रम उत्पन्न करता है। इससे मन में यह विचार स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि सूर्य आकाश में 12 नहीं, अपितु असंख्य हैं। इस हवामहल के कारण बारह सूर्यों की मान्यता के प्रति सन्देह उत्पन्न होता है:–

"परः शता यज्जयपत्तनीय–
समीरसौधे बहुकाचजाले।
स्फूर्जन्ति सूर्या इदमेव चित्रं
ते सन्ति खे द्वादश नेति किञ्चित्" ।। 3/22 ।।

कविमल्लजी के अनुसार इस हवामहल के गोलाकार मुख्य द्वार जयनगर (जयपुर) रूपी शिल्पदेवी के बैठने के लिये गद्दी तकिये के समान है। यहाँ बैठकर जयनगर शिल्पदेवी सुशोभित हो रही है।[11]

त्रिपोलिया का वर्णन कविमल्ल जी ने इस प्रकार किया है–

"यस्यां त्रिपोलाह्वय गोपुरस्य कैरप्यवैषम्यमिदं न बुद्धम्।
सिंहस्थितिर्यस्य यदेकतोऽस्ति तथैवसिंहस्थितिरन्यतोऽपि ।।3/26।।
त्रैपोलपार्श्वयुग्मे नक्तं जयपुरिसमुज्ज्वलद्दीपौ।
राज्याधिदेवताया जाग्रत्या लोचने इवोल्लसतः" ।।3/27।।

इस प्रकार नाहरगढ़, पुरानाघाट, मानसागर तथा नगर का सामान्य वर्णन किया है। एक पद्य में अर्थान्तरन्यास के द्वारा जयपुर नगर की नीति वैचित्र्य का उल्लेख करते हुए

कविमल्लजी ने स्पष्ट किया है कि संसार में जो अपराध करता है, उसे दण्ड दिया जाता है। परन्तु जयपुर में इस नीति का यथावत् पालन दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका स्पष्टीकरण करते हुये कहा है कि यहाँ राजमार्ग अश्वसमूह द्वारा अपनी खुरों की टापों से खण्डित किये जाने पर भी उन्हें दण्डित नहीं किया जाता है।[12]

एक स्थान पर जयपुर में दीपावली उत्सव का वर्णन करते हुये कविमल्लजी सन्देह अंलकार के रूप में दीपपंक्ति को स्वर्ग के शासक इन्द्र की रत्नों की वृष्टि के रूप में, सर्वत्र राजा के प्रताप रूप मयूर की मोरपंखों के रूप में तथा राज्यलक्ष्मी रूपी सरिता के जल में दीपकों को बुद्बुदों के रूप में चित्रित करते हैं।[13]

इस प्रकार तृतीय रंग में कविमल्लजी ने जयपुर के तत्कालीन प्रमुख–प्रमुख स्थलों का वर्णन किया है।

चतुर्थ रंग में 52 श्लोक हैं, जिनमें 6 श्लोकों में विष्णु, शक्रानुज, त्रिविक्रम, अधोक्षज, शौरि और पद्मापति की स्तुति की गई है। तदुपरान्त सरस्वती को प्रणाम कर कछवाहा वंश के प्राचीन शासकों का इतिहास प्रस्तुत करते हुये मूलपुरुष के रूप में इन्होंने 'नृवर' नामक राजा का उल्लेख किया है, जिसने मध्यप्रदेश में विद्यमान 'नरवर' नामक नगर का निर्माण किया था और जहाँ से यह राजवंश इस ढूंढार प्रदेश में आया था। इनके पुत्र का नाम ईशदेव था। इसे कविमल्लजी ने ईश्वरीसिंह नाम से संकेतित किया है।[14] ईश्वरीसिंह के पुत्र सोढ़देव थे और कछवाहा शासकों की वंशावली तथा इतिहास ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि ये कछवाहा वंशी शासकों के मूलपुरुष थे। इस वंशावली का प्रारम्भ ढूंढार प्रदेश के शासन से माना जाता है। इनके पुत्र दूलहराय (दुर्लभराय) ने सर्वप्रथम अपने श्वसुर चौहानवंशी मोरा के राजा श्रीकान्ह के सहयोग से आदिवासी बड़गूजर अथवा मीणों की अधिशासित भूमि पर शक्तिपूर्वक अधिकार प्राप्त किया था। सर्वप्रथम उन्होंने जिस क्षेत्र को अपने अधिकार में लिया था उसका नाम था "द्योसा" (दौसा)। इसके पश्चात् इन्होंने धीरे–धीरे इसके आसपास के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व जमाया और खोह, माची, जमुवा– रामगढ़ आदि स्थानों को अधिकार में कर लिया। इनके पुत्र काकिलजी ने इस कार्य को आगे बढ़ाया और सर्वप्रथम आमेर को, जिसका नाम अम्बावती या अम्बानगर था अपनी राजधानी बनाया।[15] पुरानी ख्यातों में स्पष्ट लिखा है "काकिलजी आमेर बसायो"। यह आमेर अरावली पर्वत शृंखलाओं से घिरा हुआ अत्यन्त सुरक्षित स्थान रहा है।

इसलिये लगभग 700 वर्षों तक अर्थात् 1735 ई॰ तक आमेर ही कछवाहा शासकों की राजधानी के रूप में विख्यात रही। इसके बाद सवाई जयसिंह द्वितीय ने जयपुर नगर बसाया और उसे राजधानी घोषित किया, जो वर्तमान काल तक कच्छवाहा वंश के शासकों की राजधानी रही है। यद्यपि यह कछवाहा क्षत्रिय मध्यप्रदेश के नगर नरवर से आये थे और दौसा, खोह, मांची, जमुवा, रामगढ़ आदि स्थानों पर शासन करते हुये आमेर और जयपुर के शासक रहे तथापि इनका शासनकाल आमेर और जयपुर पर अधिक समय तक रहने के कारण इस राजवंश को

जयपुर–आमेर के कछवाहा शासक शब्द से अभिहित किया गया है। यह वंश एक ही है।

जिस जयपुर–आमेर के कछवाहा वंश की वंशावली का कविमल्लजी ने उल्लेख किया है, उसका सारगर्भित विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. महराज सोढदेव – ढूंढार प्रदेश में कछवाहों के वंश प्रतिष्ठापक महाराजा सोढ़देव ही थे, जिन्होंने सर्वप्रथम दौसा पर अधिकार किया था। कविमल्लजी ने 'गुणाग्निनन्दोन्मितविक्रमाब्दे' (गुण=3, अग्नि=3, नन्द 9 अर्थात् 933 विक्रमाब्द) माना है और यह लिखा है इन्होंने 40 वर्ष (व्योमाब्धि वर्षाणि) तक राज्य किया था, परन्तु यह वर्ष इतिहास प्रमाणित नहीं है। श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर जी ने जयवंश के प्रथम सर्ग में विक्रम संवत् 1023 में सोढ़देव का शासनाधिरोहण माना है–

"वह्नि द्विशून्येन्दुमिते कुमारः संवत्सरे कार्त्तिककृष्णपक्षे।
तिथौ दशम्यां पदमत्रपित्र्यं समृद्धमारादधितिष्ठतिस्मः ।। जय.वं. 1–14 ।।

श्रीकृष्णराम भट्ट ने कच्छवंश महाकाव्य में इसी विक्रम संवत् का समर्थन किया है, वे लिखते हैं–

"नवम्यां कार्त्तिके कृष्णे वर्ष रामाक्षिखेन्दुके।
सोढदेवं सुतं तत्र स निवेश्य दिवंगतः ।। 3/10 ।।

राम=3, अक्षि 2, ख=0, इन्द्र 1 के अनुसार सं॰ 1023 होता है। ठाकुर हरनाथसिंह ने वंशावली में कार्तिक बदी 10 वि॰ सं॰ 1023 तदनुसार दिनांक 14 अक्टूबर सन् 966 ई॰ का उल्लेख किया है। इस प्रकार तीन ऐतिहासिक प्रमाणों से यह पुष्ट होता है कि महाराज सोढदेव का शासनकाल सं॰ 1023 से प्रारम्भ हुआ था और इन्होंने 40 वर्ष तक शासन किया था। कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत सं॰ 933 भ्रान्तिमूलक है। नाथावतों के इतिहास में पं॰ हनुमान शर्मा, चौमूं ने लिखा है कि कुछ प्राचीन वंशावलियों में यहाँ के राजाओं का जो शासनकाल प्राप्त होता है, वह अन्य शिलालेखों व प्रमाणों से मेल नहीं खाता। अलवर के इतिहास लेखकों ने इन भ्रान्तिमूलक वर्षों को 'आनन्द' संवत् माना है। उनका कथन है कि 'इतिहास राजस्थान' के लेखक श्री रामनाथ रत्नू ने इस 'समय निर्धारण' पर विचार किया है और कछवाहों के इस प्रदेश में आकर शासन करने का समय जो संवत 933 माना है, वह विक्रम संवत् नहीं 'आनन्द' संवत् है। सामान्यतया आनन्द संवत्सर में 90 वर्ष मिला देने पर वह विक्रम संवत् बन जाता है, और इस प्रकार न केवल सोढदेव का अपितु उनके पुत्र दूलहराय और काकिल का समय भी इतिहास से प्रमाणित हो जाता है। इस प्रकार कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत शासनकाल की अवधि स्थूल दृष्टि से प्रमाणित ही है।

2॰ दुर्लभराय– वंशावली में ये दूलहराय नाम से विख्यात हैं। कविमल्लजी ने इनका शासनकाल 'त्रिसप्तग्रहहायने' लिखा है अर्थात् सं॰ 973 में शासन प्रारम्भ किया और "अब्दांस्त्रयस्त्रिंशतम्" 33 वर्ष राज्य किया। इसकी भी पुष्टि नहीं होती। वंशावली के अनुसार

इनका राज्यारोहण माघ शुक्ला 7, सं॰ 1063 तदनुसार 29–1–1006 से प्रारम्भ हुआ जो माघ शुक्ला 7, 1093 तदनुसार 27–1–1036 ई॰ तक रहा। कविमल्लजी ने 30 वर्ष के स्थान पर 3 वर्ष अधिक लिखा है। शासनारम्भ के अंकित संवत् को आनन्द संवत् मानकर 90 वर्ष जोड़ने पर समस्या का समाधान स्वतः ही हो जाता है।

3॰ काकिल

कविमल्लजी ने लिखा है कि 'शास्त्राभ्रशून्येन्दुमिते' अर्थात् 1006 में शासन प्रारम्भ किया और 'सार्धचतुर्दशाब्दान्' अर्थात् साढ़े चौदह वर्ष शासन किया। परन्तु वंशावली में काकिलजी का शासनाधिरोहण माघ शुक्ला 8 सं॰ 1093 तदनुसार 28–1–1036 ई. लिखा है तथा मृत्यु तिथि वैशाख कृष्ण 10 सं॰ 1096 बतलायी है, जिसके अनुसार इनका शासन काल 2 वर्ष 2 माह 18 दिन मात्र था। कच्छवंश भी इसी बात की पुष्टि करता है।[16] इस प्रकार उनके दिवंगत काल का उल्लेख करते हुये लिखा है–

रसनन्दखकावब्दे वैशाखस्यासिते दले।
दशम्यां दशमी राजा लोकान्तरमलोकत ।। कच्छवंश 4/33 ।।

अर्थात् वैशाख कृष्णा 10 सं॰ 1096 को काकिलजी का देहान्त हुआ।

इस प्रकार कविमल्लजी द्वारा लिखित शासनारम्भ सं॰ 1006 में आनन्द संवत् मानकर विक्रम संवत् बनाने के नियमानुसार 90 वर्ष जोड़ देने पर भी 3 वर्ष का अन्तर तो स्पष्ट ही है, परन्तु कविमल्लजी द्वारा लिखित काकिल जी की शासनावधि साढ़े चौदह वर्ष का कच्छवंश महाकाव्य के निम्न पद्य से खण्डन हो जाता है जिसमें काकिल जी का शासनकाल 3 वर्ष 2 मास और 11 दिन बतलाया है।

"वर्षाणि त्रिणि मासौ द्वौ दिनान्येकादशैव हि।
राजा राज्यासने रेजे चारुचर्या चणोरुजा।।" 4/34।।

यद्यपि वंशावली के अनुसार इनका शासनकाल 2 वर्ष 2 माह 18 दिन ही सिद्ध होता है परन्तु साढ़े चौदह वर्ष शासन करना तो किसी भी प्रमाण से पुष्ट नहीं होता।

4॰ हनुदेव

कविमल्लजी ने लिखा है कि इन्होंने 1021 सं॰ (एक–द्वि–खेन्दून्मितहायने) में शासनाधिकार प्राप्त किया था और 'पृथ्वीगुणाब्दान्' अर्थात् 31 वर्ष राज्य किया था। वंशावली में इनका गद्दी पर बैठना वैशाख बदी 10 वि॰ सं॰ 1096 में बतलाया गया है अर्थात् 22 मार्च 1039 ई. को गद्दीनसीन हुये थे। इनकी मृत्यु कार्तिक शुक्ला 13 वि॰ सं॰ 1110 में हुई थी। इस प्रकार इन्होंने कुल 14 वर्ष 6 माह 17 दिन शासन किया था। कच्छवंश में केवल इनकी मृत्यु तिथि का उल्लेख है–

उत्पाद्य जानडं राजा खेन्दुक्ष्मा चन्द्रवत्सरे।
कार्तिकस्य त्रयोदश्यां शुक्ले पक्षे दिवंगतः।। 4/36।।

इस प्रकार कच्छवंश द्वारा प्रदत्त तिथि वंशावली से मिलती है, परन्तु कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत न तो वर्ष ही मिलता है और न शासनावधि ही। इसमें आनन्द सं. की विधि से 90 वर्ष जोड़ दिये जायें तो सं. 1111 आता है जो हनुदेव का शासनारम्भ काल न होकर जानड देव महाराज का शासनारम्भ काल स्थूल दृष्टि से सिद्ध होता है।

5. जानडदेव

कविमल्लजी ने इन्हें जान्हवदेव के नाम से प्रस्तुत किया है और इनका शासनारंभ काल 1052 संवत् माना है तथा शासनावधि 27 वर्ष। ये दोनों ही तिथियां वंशावली व कच्छवंश से प्रमाणित नहीं होती, क्योंकि वंशावली के अनुसार जानड़देव ने कार्तिक शुक्ला 13 वि. सं. 1110 तदनुसार 30 सितम्बर 1053 ई. को शासन प्रारम्भ किया था। और चैत्र शुक्ला 7 वि. सं. 1127 तक शासन किया था। इस प्रकार इनका कुल शासनकाल 17 वर्ष 4 मास 23 दिन रहा। चूंकि कविमल्लजी ने शासन काल में स्थूल दृष्टि से 9 वर्ष 8 मास का अन्तर प्रस्तुत किया है। अतः समय मिलाना सम्भव नहीं।

6. पज्जवनजी— कविमल्लजी ने इन्हें यजनदेव के नाम से प्रस्तुत किया है। कच्छवंश महाकाव्य में इनका नाम प्रद्युम्न मिलता है। कविमल्लजी इनका शासनकाल सं. 1079 में मानते हैं शासनकाल की अवधि 'वेदगुणाब्दमानम्' अर्थात् 34 वर्ष लिखते हैं। वंशावली के अनुसार ये चैत्र शुक्ला 7, सं. 1127 में गद्दीनसीन हुये और ज्येष्ठ कृष्णा 3 सं. 1151 में दिवंगत हुये। इस प्रकार इनका शासन 24 वर्ष, 1 महीना, 11 दिन रहा। जबकि कविमल्लजी ने इसे 34 वर्ष माना है, जो सर्वथा अपुष्ट है।

7. मलयसिंह— इतिहास इन्हें मलेसी के नाम से जानता है और ज्येष्ठ कृष्णा 3 सं. 1151 से फाल्गुन कृष्णा 3, सं. 1203 तक शासक रहे। इस प्रकार इनका शासनकाल 52 वर्ष 9 मास 15 दिन सिद्ध होता है। कविमल्लजी ने शासक वर्षों का उल्लेख तो स्थूल दृष्टि से ठीक कर दिया 'नयनाशुगाब्दम्' अर्थात् 52 वर्ष। परन्तु शासन काल का प्रारम्भ 1113 वि. सं. माना है। आनन्द संवत् के अनुसार यदि 1113 में 90 वर्ष जोड़ दिये जायें तो सं. 1203 आता है, जो मलेसी देवकी मृत्यु तिथि का संकेत करता है।

8. उज्वलदेव— वंशावली में इन्हें वीजल देव के नाम से अंकित किया है। इनका शासनकाल फाल्गुन शुक्ला 3, विक्रम सं. 1203 से प्रारम्भ होता है और 'आषाढ शुक्ला 14 सं. 1236 तक माना गया है। इस प्रकार वंशावली के अनुसार 32 वर्ष 4 मास, 1 दिन शासन किया है। कविमल्लजी ने स्थूल दृष्टि से इनका शासनकाल 33 वर्ष बताया है, परन्तु शासनारम्भकाल सं. 1165 वर्ष लिखा है। यह समय भी इतिहास से पुष्ट नहीं होता।

9. श्रीराजदेव— वंशावली के अनुसार आषाढ़ शुक्ला 14 सं. 1236 को गद्दी पर बैठे थे और पौष कृष्णा 6 सं. 1273 को शांत हुये। इन्होंने 37 वर्ष 4 मास 16 दिन शासन किया। कविमल्लजी ने इनका शासन 37 वर्ष (त्रिंशतसमाः सप्तच) माना है और शासनारम्भ का सं. 1198

(मातङ्गनन्देन्दु सुधांशुवर्षे) इस संवत् की संगति भी नहीं बैठती।

10. कीलनदेव– कविमल्लजी जी इन्हें कीलनसिंह के नाम से प्रस्तुत करते हैं तथा स्थूल दृष्टि से इनका शासनकाल 59 वर्ष मानते हैं। यों सूक्ष्मदृष्टि से इन्होंने 59 वर्ष, 10 माह, 3 दिन शासन किया था, ऐसा वंशावली का संकेत है। कच्छवंश महाकाव्य में लिखा है कि इन्होंने 58 वर्ष 33 दिन शासन किया। पद्य उद्धृत है–

समाः स्थित्वाऽष्टपञ्चाशत्त्रयस्त्रिंशत् दिनानि सः।
त्रि त्रि त्रिक्ष्माब्दके कृष्णनवम्यां बाहुले मृतः।। 5/37।।

यहाँ कच्छवंश और वंशावली के समय में 1 वर्ष 9 मास का अन्तर मिलता है, परन्तु मृत्यु तिथि कार्तिक कृष्णा 9 सं. 1333 दोनों समान हैं। कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत वर्ष 1235 है जो आनन्द संवत् की विधि से भी अनुकूल नहीं पड़ता।

11. कुन्तलदेव– कविमल्लजी ने लिखा है कि सं. 1924 (पयो–राशिनवाक्षिचन्द्रे) में उत्पन्न हुये अर्थात् इन्होंने पिता की मृत्यु के बाद राज्य प्रारम्भ किया। उनके अनुसार इन्होंने 41 वर्ष (विधुवेदसंवत्सर) राज्य किया। कच्छवंश महाकाव्य में लिखा है कि इन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद आश्विन कृष्णा 9 सं. 1333 से शासन प्रारम्भ किया–

"कुन्तलो वीरतिलकः किल तस्य सुतोग्रजः।
पितर्युपरते पृथ्वीं प्रशशासोऽग्रशासनः"।।5/37 ।।

इनकी मृत्यु तिथि का उल्लेख करते हुये इस महाकाव्य में लिखा है–

माघ कृष्णा दशम्यां स चतुः सप्तत्रिभून्मिते।5/47।।

अर्थात् माघ कृष्णा 10 सं. 1374 को इनका देहान्त हुआ और इन्होंने 41 वर्ष 3 मास (भूदेवशरदोमासां स्त्रीन्) शासन किया। वंशावली के अनुसार इन्होंने कार्तिक कृष्णा 9 सं. 1333 से राज्य करना प्रारम्भ किया, माघ कृष्णा 10 सं. 1374 को दिवंगत हुये। इस प्रकार इन्होंने 41 वर्ष, 3 मास, 1 दिन शासन किया। कच्छवंश और वंशावली में इनके शासन प्रारम्भ करने की तिथि में जो एक मास का अन्तर प्रतीत होता है वह भ्रान्तिमूलक है। वास्तव में यह अमान्त मास के अनुसार है जिसमें शुक्ल पक्ष के बाद कृष्ण पक्ष माना जाता है। निष्कर्ष यह है कि कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत शासनकाल तो स्थूल दृष्टि से सही है परन्तु वर्ष का क्रम पूर्ववत् अव्यवस्थित ही है।

12. जवनसिंह– इनका प्रचलित नाम 'जोणसी' था जिसे कविमल्लजी ने जवनसिंह के रूप में शुद्ध कर प्रस्तुत किया है। इन्होंने परम्परानुसार अपने पिता की मृत्यु माघ कृष्ण 10 सं. 1374 को शासनसूत्र संभाला और माघ वदी 3 सं. 1423 तक शासन करते रहे। इस वंशावली के उल्लेख कच्छवंश ने "माघकृष्ण तृतीयायां समाक्ष्यब्धीन्दुवत्सरे 5/57 से समर्थन प्रदान किया है। वंशावली के अनुसार इन्होंने 48 वर्ष, 11 महीने, 23 दिन शासन किया था, जब कि कच्छवंश के लेखक ने 49 वर्ष, 7 मास समय माना है। कविमल्लजी ने स्थूल दृष्टि से 49 वर्ष शासनकाल स्वीकारा है,

परन्तु शासन–प्रारम्भ समय 1335 वि॰ सं॰ (शराग्निरामेन्दुमिते) माना है।

13. उदयकरण– वंशावली के अनुसार आपने माघ कृष्णा 3, सं॰ 1423 में राज्याधिकार प्राप्त किया था और फाल्गुन कृष्णा 3 सं॰ 1445 को दिवंगत हुये थे। इन्होंने 22 वर्ष व 1 मास शासन किया था। कच्छवंश में लिखा है–

"द्वाविंशत्यब्दकान् मासमेकं स्थित्वा स फाल्गुने।
मृतः कृष्ण तृतीयायां शराब्ध्यब्धीन्दु हायने" ।।5/64।।

अर्थात् 22 वर्ष 1 मास शासन कर फ़ाल्गुन कृष्णा 3 सं॰ 1445 में इनका देहान्त हुआ। कविमल्लजी ने इनका शासनकाल 1384 वि.सं.(समुद्रवस्वग्निनिशाधिपाब्दे) लिखा है और 22 वर्ष शासनकाल माना है। इस प्रकार शासनारम्भ काल में असंगति स्पष्ट है।

14. नरसिंह देव– इन्होंने फाल्गुन कृष्णा 3 सं॰ 1445 से शासन करना प्रारम्भ किया था और भाद्रपद कृष्णा 6 सं॰ 1485 तक शासन करते रहे थे। इस प्रकार 39 वर्ष, 6 महीने, 2 दिन तक शासन किया था, ऐसा उल्लेख वंशावली में मिलता है। कच्छवंश महाकाव्य इनकी मृत्यु तिथि का उल्लेख करते हुये लिखता है–

"प्रौष्ठेकृष्णे दले षष्ठ्यां बाणाष्टाब्धीन्दुवत्सरे।
नन्दाग्न्यब्दान्मासषट्कं ह्यहं स्थित्वा नृपो मृतः" ।।5/67

इस उल्लेख से वंशावली का कथन पुष्ट होता है। कवि मल्लजी ने इनका शासनकाल 44 वर्ष माना है, जो लगभग साढ़े चार वर्ष अधिक है। इनके द्वारा उल्लिखित शासनारम्भ काल सं॰ 1406 भी असंगत है।

15. बनवीरसिंह– कच्छवंश में बनवीर का निधनकाल आश्विन कृष्ण 12 सं॰ 1496 (द्वादश्यामाश्विने कृष्णे रसाङ्काब्धीन्दुवत्सरे 5/76) लिखा है। इन्होंने 11 वर्ष 6 महीने शासन किया था। (रुद्रवर्षाणि मासान् षट) वंशावली में यह दोनों तिथियाँ यथावत् हैं परन्तु उन्होंने शासनकाल 11 वर्ष 1 मास 6 दिन माना है जो वंशावली से 4 मास 24 दिन न्यून है। कविमल्लजी ने इनका शासनकाल 22 वर्ष लिखा है (दृगरोदसीसम्मितहायनानि) जो सर्वथा अंसगत है। शासनकाल 1450 सं॰ (खबाण– सिन्धुक्षितिवत्सरे) लिखा है। इस प्रकार 46 वर्ष का अन्तर स्पष्ट है)

16. उद्धरण– वंशावली के अनुसार इनका राज्याधिरोहण आश्विन् वदी 12 सं॰ 1496 को सम्पन्न हुआ। मार्गशीर्ष कृष्णा 14 सं 1524 को आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार 28 वर्ष 2 मास 2 दिन तक आपका शासनकाल रहा। इसी मत का सर्मथन कच्छवंश में मिलता है।

वस्वक्षिसंमितसमाः कमठाधिराजो
मासद्वयं दिवसमेकमिलां प्रशस्य।
शम्भोस्तिथौ शितिदले किल मार्गशीर्षे
वेदाक्षिबाणधरणीशरदि स्वराय ।।5/81।।

इससे वंशावली का मेल करने पर शासनकाल 28 वर्ष 2 मास 1 दिन तथा मृत्यु तिथि फाल्गुन कृष्णा 14 सं॰ 1542 ही आता है। परन्तु वंशावली में और कच्छवंश में 1 दिन का अन्तर है। जबकि कविमल्लजी ने इनका शासनकाल सं॰ 1472 (द्विशैलाम्बुधिभू समायां) लिखा है जिसमें 24 वर्ष का अन्तर स्पष्ट है। इनकी शासनावधि कविमल्लजी ने 23 (आरामदृग्वत्सरमाधिपत्यम्) वर्ष लिखी है। इसमें 5 वर्ष 2 मास का न्यूनकाल स्पष्ट होने की असंगति प्रतीत होती है।

17॰ चन्द्रसेन– उद्धरण के पुत्र का नाम 'चन्द्रसेन' था। इन्होंने मार्गशीर्ष कृष्णा 14 वि॰ सं॰ 1524 में शासन प्रारम्भ किया था और फाल्गुन कृष्ण 5 सं॰ 1559 को दिवंगत हुये थे। वंशावली के अनुसार इन्होंने 35 वर्ष, 2 महीने 25 दिन शासन किया था। कच्छवंश ने इस समय को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

बाणाक्षिवत्सरान् मासद्वयं बाणाक्षिवासरान्।
चन्द्रसेनश्चन्द्रकीर्तिः कुर्वन्राज्यमिह स्थितः ।।6/13।।
पंचम्यां फाल्गुने कृष्णे नन्दबाणशरेन्दुके ।।6/14।।

यहां 'बाणाक्षिवत्सरान्' का आशय यदि 25 वर्ष लगाया जाय तो श्री उद्धरण की मृत्यु तिथि से इनकी मृत्यु तिथि का मिलान नहीं होता। उसमें 10 वर्ष का अन्तर आता है। अतः 'बाणाक्षि' का अर्थ 35 वर्ष मानना ही उपयुक्त होगा। कविमल्लजी ने इनका शासनारम्भ सं॰ 1495 (पृषत्कनन्दाब्धिधराख्यवर्षे) माना है और 38 वर्ष शासन काल लिखा है (द्विरदानलाब्दम्) जबकि शासनकाल 35 वर्ष और मृत्यु तिथि 1559 वि.सं॰ है)

18॰ पृथ्वीराज– यह अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त फाल्गुन कृष्णा 5 सं॰ 1559 को गद्दी पर बैठे और कार्त्तिक शुक्ला 11 सं॰ 1584 को फौत हुये। इनका शासनकाल 24 वर्ष, 8 मास और 20 दिन वंशावली के अनुसार माना गया है। कच्छवंशकार लिखते हैं– "अब्धिदृग्वत्सरानष्टौ मासान् विंशति वासरान्।" 6/66 अर्थात् 24 वर्ष, 8 मास, 20 दिन शासन किया। इनकी मृत्यु का उल्लेख इस प्रकार है–

"बाहुलस्य वलक्षैकादश्यां स्मरगुरूं स्मरन्। वत्संरेऽब्धयष्टबाणोन्दौ भूपः प्राप परं पदम्।" 6/67 अर्थात् कार्तिक शुक्ला 11 वि॰ सं॰ 1584 में इन्होंने शिवपद प्राप्त किया। यह तिथि वंशावली से अक्षरशः मिलती है, जबकि कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत शासनारम्भकाल सं॰ 1533 (त्रिरामबाणावनि नाम्नि) तथा शासनावधि 25 वर्ष (बाणनेत्राब्दम्) है। शासनकाल 25 वर्ष स्थूल रूप से मान्य हो सकते हैं, क्योंकि इन्होंने सभी शासकों का शासनकाल वर्षों में ही लिखा है।

19॰ पूर्णमल्ल– कविमल्लजी ने लिखा है कि "वस्वाशुगेषुक्षिति हायनेऽथ" अर्थात् 1558 वि॰ सं॰ में शासन प्रारम्भ और 'आषोडशाब्दम्' अर्थात् 16 वर्ष शासक रहे। वंशावली के अनुसार इनका शासनकाल केवल 6 वर्ष, 2 मास और 23 दिन प्रमाणित होता है, क्योंकिं इन्होंने कार्तिक शुक्ला 11 सं॰ 1584 से माघ शुक्ला 5 सं॰ 1590 तक शासन किया था। कच्छवंश में

भी इनका शासनकाल 6 वर्ष 2 मास 23 दिन लिखा है–

स षड्वर्षाणि मासौ द्वौ रामदृग् दिवसावपि।
धुरं दधार ढुण्ढारदेशस्य गुणपेशलः ।।6/70।।
माघस्य शुक्लपंचम्यां स्वांकबाणधराब्दके।
पूर्णमल्लः सपूर्णश्रीसरणं प्राणानमूमुचत् ।।6/71।।

इस प्रकार यहाँ कविमल्लजी ने शासनकाल में लगभग 10 वर्ष आधिक्य लिखा है।

20. भीमजी– कविमल्लजी के अनुसार भीमसिंह ने वि.सं. 1574 (वेदर्षिबाणेमिते) से शासन प्रारम्भ किया और 8 वर्ष (वोढाष्टवर्षावधिराज्यभार) तक शासनारूढ़ रहे। परन्तु वंशावली इनका शासनकाल 2 वर्ष, 6 मास, 10 दिन ही मानती हैं, क्योंकि ये माघ शुक्ला 5 सं. 1590 में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा 1593 तक ही शासक रहे थे। कच्छवंश में भी मिलता है–

'मृते भ्रातरि भूपोऽभूद् भीमो भीमपराक्रमः।
योऽस्थादब्दद्वयं मासषट्कं किं च दिनानि षट्।।
पूर्णिमायां सिते पक्षे श्रावणस्य धराधवः।
संवत्सरे कृशान्वङ्क बाणचन्द्रमिते मृतः।।6/72–73।।

अर्थात् 2 वर्ष 6 मास 6 दिन शासनकर श्रावण शुक्ला पूर्णिमा सं. 1593 को शान्त हो गये। कविमल्लजी द्वारा प्रस्तुत समय में लगभग 5 वर्ष का स्थूल दृष्टि से आधिक्य प्रतीत होता है।

21. रतनसिंह– कविमल्लजी के अनुसार रत्नसिंह ने सं. 1582 से शासन प्रारम्भ किया था (दृगष्टाशुगभूमिवर्षे) और 22 वर्ष (आनेत्रहस्ताब्दम्) शासक रहे। जबकि वंशावली इनका शासन करना केवल 10 वर्ष, 9 मास, 17 दिन ही मानती है क्योंकि श्रावण शुक्ला पूर्णिमा सं. 1593 से ज्येष्ठ शुक्ला 8 सं. 1604 तक शासन किया था। कच्छवंश में इनका शासन 11 वर्ष 6 मास 23 दिन लिखा है परन्तु मृत्यु दिन ज्येष्ठ शुक्ला 8 सं. 1604 लिखा है।

क्ष्मामेकादश शरदोऽथ मासषट्कं
रामाक्षिप्रमित दिनान्यद्य राजा।
अष्टम्यां सितशकले सशुक्रमासे
दाव्यादैर्युगखरसेन्द्रके धृतेऽब्दे।।6/75

22. आशकरण– इनका शासन काल कविमल्लजी ने बिल्कुल सही लिखा है, क्योंकि इन्होंने सं. 1604 में ही शासन करना प्रारम्भ किया था। वंशावली के अनुसार इन्होंने केवल 16 दिन ही शासन किया था। ज्येष्ठ कृष्णा 8 सं. 1604 से ज्येष्ठ शुक्ला 9 सं. 1604 तक ही शासक रहे थे। कच्छवंश में भी इनका शासन काल एक पक्ष ही माना है।

"स्थित्वाशाकरणनृपः पदे जुगोप, क्ष्मां पक्षावधि बत रत्नशे (?) स्तनूजः।
निष्कास्य द्रुतमथ यं प्रसह्य पृथ्वीराजस्य क्षितिपति राज भारमल्लः ।।6/76।।

यद्यपि कविमल्लजी ने इनका शासन वर्ष तो शून्य लिखा है, परन्तु शासनकाल स्थूलदृष्टि से 1 मास बताया है–

"पुनश्च जातो धरणीभृदाशा, कर्णोऽर्णवव्योमरसेन्दुवर्षे।
रोगेण केनाऽपि स मासमात्रे संत्यक्तवान्संहननं स्वकीयम्।। ज. प. ।।4/31।।

23. भारमल्ल– भारमल्ल का शासनकाल कविमल्लजी ने सं. 1604 लिखा है जो सही है। वंशावली के अनुसार इन्होंने 25 वर्ष 7 मास और 12 दिन शासन किया था, जिसे कविमल्लजी ने स्थूल दृष्टि से 26 वर्ष माना है। इस समय में कोई विशेष असंगति नहीं है। कच्छवंशमहाकाव्यकार ने इनकी मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में लिखा है:–

"तपोऽवलक्षपञ्चम्यां खाग्निषड्व्योमवासरे।
भारमल्लाह्वयो देवो देव भूपं गतोऽभवत्" ।।7/28।।

यह कथन इतिहास प्रमाणित है।

24. भगवन्तदास– कविमल्लजी ने इन्हें 'भगवद्दास' लिखा है इनके इस कथन को कच्छवंश के लेखक ने भी प्रमाणित माना है–

भारमल्ले दिवं याते भगवद्दासभूपतिः।
अम्बावतीमधिष्ठाय व्यनैजीत् सुप्रजाः प्रजाः ।।7/30।।

परन्तु वंशावली में इनका नाम भगवन्तदास है। उनका शासनकाल कविमल्लजी के अनुसार स्थूल दृष्टि से 16 वर्ष (आषोड्शाब्दम्) है, जबकि वंशावली इनका शासनकाल 15 वर्ष 10 मास और 1 दिन मानती है जो लगभग व्यवस्थित है। इन्होंने माघ शुक्ला 6 सं. 1630 से मार्गशीर्ष शुक्ला 7 सं. 1646 तक शासन किया था। कच्छवंश में इनकी मृत्यु तिथि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है:–

"अथ स भगवद्दासो राजा प्रजाः प्रतिपालयन्
धरशशिसमाः किं च श्रीमान् दश प्लयहमस्थितः।
रसयुगरसक्ष्माब्दे मार्गेसिते दिनकृत्तिथा–
वतिथिरभवद्वीरो वैरिद्वयौघहरिर्हरेः ।।7/138।।

25. मानसिंह (प्रथम) – कविमल्लजी ने इनका शासनारम्भकाल विक्रम सं. 1646 (रसाब्धिशास्त्रामृतरश्मिवर्षे) लिखा है, जो इतिहास प्रमाणित है, परन्तु शासनावधि 24 वर्ष (वेदाक्षिवर्षम्) लिखा है, जो इतिहास प्रमाणित है, परन्तु शासनावधि 24 वर्ष (वेदाक्षिवर्षम्) बतलाई है। वंशावली के अनुसार यह शासन काल 25 वर्ष, पाँच मास और बीस दिन है। तदनुसार इन्होंने मार्गशीर्ष शुक्ला 7 सं. 1646 से आषाढ़ शुक्ला 10 सं. 1671 तक राज्य किया। कच्छवंश में भी यही तिथि मिलती है।

26. भावसिंह– जयपुर–आमेर के इतिहास के अनुसार मिर्जाराजा मानसिंह के पुत्र का नाम जगत्सिंह तथा पौत्र का नाम महासिंह था। महासिंह के पुत्र का नाम जयसिंह प्रथम था। जगत्सिंह का देहान्त मानसिंह के ही सम्मुख हो गया था। उसके बाद महासिंह को उत्तराधिकार न देकर मानसिंह ने अपने कनिष्ठ पुत्र भावसिंह को राज्याधिकारी बनाया था,

परन्तु भावसिंह के निस्सन्तान दिवंगत होने पर पुनः महासिंह के पुत्र मिर्जाराजा जयसिंह प्रथम को ही उत्तराधिकार मिला था। इस इतिहासक्रम में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि कविमल्लजी ने मानसिंह के बाद भावसिंह और उसके बाद मिर्जाराजा जयसिंह का उल्लेख किया है। यह उल्लेख तो सत्य है परन्तु भावसिंह के पुत्र जयसिंह नहीं थे, अपितु वे महासिंह के पुत्र थे, यही ध्यातव्य है। भावसिंह के शासनकाल का प्रारम्भ कविमल्लजी ने 1670 वि॰ सं॰ (व्योमर्षिशास्त्रेन्दु) लिखा है और मानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र बताया है, जबकि ये दोनों ही कथन असंगत हैं। वंशावली के अनुसार ये मानसिंह के कनिष्ठ पुत्र थे और इन्होंने सं॰ 1671 आषाढ़ शुक्ला 10 को शासन करना प्रारम्भ किया था। इनका शासनकाल फाल्गुन शुक्ला 4 सं॰ 1678 तक रहा था। इस प्रकार इन्होंने, 7 वर्ष, 6 माह शासन किया था। कविमल्लजी ने इनकी शासनावधि 6 वर्ष (षडब्दराज्यम्) बतलाई है। कच्छवंश का मिलान वंशावली से होता है।[17]

27॰ मिर्जाराजा जयसिंह प्रथम– कविमल्लजी ने इनका शासनकाल सं॰ 1676 (रसर्षिशास्त्रद्विजराजवर्षे) से प्रारम्भ कर 40 वर्ष (अभ्रश्रुतिसंवन्दतम्) तक का शासन समय माना है। जबकि वंशावली फाल्गुन शुक्ला 4 सं॰ 1678 से आश्विन कृष्णा 5 सं॰ 1724 तक राज्यकाल मानती है। इस प्रकार इन्होंने 45 वर्ष, 8 मास और 10 दिन शासन किया जो कविमल्लजी के निर्दिष्ट समय से 5 वर्ष 8 मास 10 दिन अधिक है। कच्छवंश का कथन वंशावली के समय से मिलता है।[18]

28॰ मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम– जयसिंह प्रथम के पुत्र का नाम मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम था। यह सभी इतिहास ग्रंथों से व अन्यान्य प्रमाणों से प्रमाणित है, परन्तु कविमल्लजी ने इनका नामोल्लेख ही नहीं किया। वंशावली के अनुसार इनका शासनकाल आश्विन कृष्णा 5 सं॰ 1724 से आश्विन शुक्ल 5 सं॰ 1746 रहा है। इनके शासनकाल की अवधि 22 वर्ष, 4 मास और 1 दिन वंशावली में अंकित है। ये एक प्रतापी राजा थे।

29॰ विष्णुसिंह– कविमल्लजी ने इनका शुद्ध नाम विष्णुसिंह लिखा है जबकि वंशावली में इनका नाम बिशनसिंह मिलता है। वंशावली के अनुसार इन्होंने आश्विन शुक्ला 5 सं॰ 1746 से शासन प्रारम्भ किया था और माघ कृष्णा 5 वि॰ सं॰ 1756 तक शासनारूढ़ रहे थे, परन्तु कविमल्लजी ने इनकी इस 10 वर्ष 4 माह की शासनावधि को 18 वर्ष (अष्टा–दशाब्दावधि) माना है तथा इनका शासनकाल 1746 (रसाभ्रवर्षरसाख्यवर्षे) सं॰ लिखा है। इस पद्य की टिप्पणी में उन्होंने स्वयं लिखा है– "अत्र विंशतिवर्षाणि यद्वर्धन्ते तन्निर्णयं नो विद्मः लोकास्तु कृष्णसिंहाख्यो राजा मध्येऽजनीति वदन्ति, एवमग्रेऽपि रामसिंहनिश्चये वर्षत्रयं वर्धते तस्यापि।" इसके अनुसार वे यहाँ वास्तविक समय से कुछ वर्षों के अन्तर का अनुभव करते हैं। उनके अनुसार 20 वर्ष की समय में वृद्धि है। उन्होंने लिखा है कि बीच में कोई कृष्णसिंह नामक राजा हुआ था, जबकि सत्य यह है विष्णुसिंह के पिता कृष्णसिंह थे, जो अपने पिता मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम के सामने दिवंगत हो गये थे। उन्हें शासनाधिकार प्राप्त नहीं हो सकता था। ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्णसिंह का उल्लेख करना तो आवश्यक नहीं था, किन्तु मिर्जा रामसिंह

का उल्लेख आवश्यक था, जिनका शासनकाल 22 वर्ष रहा था। इन्होंने इस वर्णन में मिर्जा राजा जयसिंह के बाद इनके पुत्र रामसिंह के शासनकाल का उल्लेख न कर एक भयंकर भूल की है और इस भूल का एहसास होने पर भी उन्होंने रामसिंह का उल्लेख न कर कृष्णसिंह का उल्लेख किया है। उनके द्वारा उल्लिखित विष्णुसिंह का न शासनारम्भ काल मिलता है और न शासन समय की अवधि ही। वंशावली के उल्लेख से कच्छवंश का अंकित समय मिलता है।[19]

30. सवाई जयसिंह द्वितीय– कविमल्लजी ने सवाई जयसिंह का उल्लेख करते हुये उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का 3 पद्यों में वर्णन किया है, जिनमें उनका सवाई पदवी प्राप्त करना, उनके द्वारा जयपुर नगर का निर्माण, अश्वमेध यज्ञ का विधान और जयसिंहकल्पद्रुम प्रभृति ग्रंथों का निर्माण करने वाले विद्वानों को अपने राज्य में आश्रय प्रदान करना आदि उल्लेखनीय कार्य रहे हैं। उन्होंने इनका शासनारंभ काल वि. सं. 1754 (समुद्रनाराच मुनिक्षमाब्दे) लिखा है और इनका शासन काल 47 वर्ष (मुनिवर्णवर्षम्) बतलाया है। वंशावली के अनुसार यह असंगत प्रतीत होता है, क्योंकि इन्होंने माघ शुक्ला 7 वि.सं. 1756 से शासन प्रारम्भ किया था। आश्विन शुक्ला 14 सं. 1800 तक शासन किया था। इस सम्बन्ध में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनके समसामयिक विद्वान् कवि कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट ने 'ईश्वरविलास' महाकाव्य में इनकी मृत्यु तिथि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'जयवंश' और 'कच्छवंश' महाकाव्य में भी इसका उल्लेख है।[20] इन सब उल्लेखों से यह प्रमाणित होता है कि इन्होंने 43 वर्ष, 8 मास और 7 दिन शासन किया था।

31. ईश्वरसिंह– सवाई जयसिंह के दो पुत्र थे, सवाई ईश्वरसिंह तथा सवाई माधवसिंह। परम्परानुसार ज्येष्ठ होने के नाते सवाई ईश्वरसिंह ही युवराज थे और इन्हें ही जयपुर का शासनाधिकार प्राप्त होना था। राजनैतिक दृष्टि से महाराज जयसिंह ने एक भूल की थी और उदयपुर के महाराणाओं से अपने सम्बन्ध अच्छे बनाने की दृष्टि से वहां की राजकुमारी से सशर्त विवाह कर लिया था कि उससे जो सन्तान होगी उसे जयपुर का शासनाधिकार प्राप्त होगा। उनके दिवंगत होने पर तत्कालीन सामन्तों ने परम्परानुसार ईश्वरसिंह को उत्तराधिकारी बनाया था, परन्तु इनका शासनकाल अशान्त रहा, क्योंकि उदयपुर की ओर से माधवसिंह को राज्य प्राप्त कराने की दिशा में निरन्तर प्रयास चलते रहे और ऐसा माना जाता है कि अन्त में ईश्वरसिंह को आत्महत्या करनी पड़ी थी। कविमल्लजी ने अपने इस एक पद्य में इस घटना की ओर संकेत भी किया है। उन्होंने लिखा है– "भ्रातुर्भयाद्योऽभ्यगमत्कुमृत्युम्"[21] 'कुमृत्युम्' पर पादटिप्पणी करते हुये इन्होंने लिखा है– "आत्मात्मघातम्" इन्होंने इनका शासन सं. 1801 (क्ष्मांखवसुक्षमाब्दे) से 7 वर्ष (आसप्तवर्षम्) माना है। वंशावली के अनुसार इन्होंने आश्विन शुक्ला 14 सं. 1800 से पौष कृष्ण 12 सं. 1807 तक शासन कर सके थे, अर्थात् इनका शासन 7 वर्ष, 2 मास और 11 दिन रहा था। स्थूल दृष्टि से कविमल्लजी का इनके सम्बन्ध में किया गया संकेत संगत माना जा सकता है।[22]

32. सवाई माधवसिंह प्रथम – सवाई माधवसिंह ने सं. 1808 में शासन प्रारम्भ किया और 17 वर्ष अर्थात् सं. 1825 तक सिंहासनाधिरूढ रहे। कविमल्ल जी द्वारा प्रस्तुत यह समय स्थूल दृष्टि से स्वीकार्य है। वंशावली में इनका शासनकाल 17 वर्ष, 2 मास और 21 दिन लिखा है अर्थात् इन्होंने पौष शुक्ला 14 सं. 1807 से चैत्र कृष्णा 3 वि. सं. 1824 तक शासन किया था। इस विषय का कच्छवंश महाकाव्य में भी स्पष्ट उल्लेख है–

संवत्सरे जलधि दृग्वसुशीतभानौ
चैत्रे तमिस्रशकलेऽहनि किं च गौर्याः।
श्रीमाधवस्मृतिविमुद्रितमोहमुद्रः
श्रीमाधवो वत मुमोच शरीरबन्धम्।।[23]

33. पृथ्वीसिंह– सवाई पृथ्वीसिंह महाराज माधवसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त चैत्र कृष्णा 3 सं. 1824 में इन्होंने शासन सूत्र संभाला था और वैशाख कृष्णा 3 सं. 1835 तक शासन किया था। अंग्रेजी तिथि के अनुसार इन्होंने 11 वर्ष, 1 मास और 5 दिन राज्य किया। कविमल्लजी ने इनका शासनकाल 9 वर्ष (नवाब्दपर्यन्तम्) माना है अर्थात् सं. 1825 (कुन्त्यात्मजद्वि द्वीपभूमितेऽब्दे) से सं. 1825 से 1834 तक जयपुर के शासक रहे। स्थूल दृष्टि से शासन समाप्ति वर्ष में 1 वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है, परन्तु शासनकाल में दो वर्ष का अन्तर स्पष्ट है। समय की दृष्टि से कच्छवंश व वंशावली में समानता है।

34. सवाई प्रतापसिंह– महाराजा माधवसिंह प्रथम के कनिष्ठ पुत्र के नाते अपने ज्येष्ठ भ्राता के निस्संतान दिवंगत होने पर जयपुर का शासनाधिकार प्राप्त किया। आपने वैशाख कृष्ण 4 सं. 1835 से लेकर श्रावण शुक्ला 13 सं. 1860 तक शासन किया। वंशावली के अनुसार आपके शासनकाल की अवधि 25 वर्ष 3 मास 25 दिन सिद्ध होती है। कविमल्लजी ने इनका शासनकाल 1834 सं. (चतुस्त्रिहस्तिक्षिति हायने) लिखा है और 24 वर्ष (चतुर्द्विवर्षाणि) शासनकाल मानकर सं. 1858 तक इन्हें शासनाधिकारी बताया है। यहाँ निश्चित अवधि के लगभग 2 वर्ष कम प्रतीत होते हैं।

35. सवाई जगत्सिंह– कविमल्लजी ने इनका शासन काल सं. 1858 से (नागाशुगाष्टक्षिति वत्सरे)1873 लिखा है, अर्थात् इन्होंने कुल 15 (भूतावनिवर्षमानम्) वर्ष शासन किया था, ऐसा उल्लेख किया है। वंशावली इनका शासनकाल 19 वर्ष, 4 मास और 9 दिन मानती है तथा श्रावण शुक्ला 13 सं. 1860 से पौष कृष्णा 9 सं. 1875 तिथि का संकेत करती है अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य द्रष्टव्य हैं।[24]

36. सवाई जयसिंह तृतीय– ऐसा इतिहास में प्रसिद्ध है इनका जन्म इनके पिता जगत्सिंह की मृत्यु के बाद हुआ था। अतः इनका जन्म दिनांक ही शासनारम्भकाल माना गया है। इनका जन्म वैशाख शुक्ला 1 सं. 1876 को हुआ था। इन्होंने माघ शुक्ला 8 सं. 1892 तक शासन किया। इस प्रकार इनका कुल शासनकाल 16 वर्ष 9 मास 7 दिन रहा। कविमल्लजी ने इनका

शासनकाल स्थूल दृष्टि से 14 वर्ष (चतुर्दशाब्दावधि) माना है तथा सं॰ 1873 (लोकर्षिनागावनिसंमितेऽब्दे) से शासनारम्भ का संकेत किया है।

37॰ सवाई रामसिंह द्वितीय – सवाई जयसिंह तृतीय के पुत्र के रूप में आपका जन्म भाद्रपंद शुक्ल 14 सं. 1891 में हुआ था और आपने माघ शुक्ला 8 सं 1892 में शासनारम्भ किया था तथा भाद्रपद शुक्ला 14 सं. 1937 तक शासक रहे थे। अँग्रेजी तिथि के अनुसार इन्होंने 6 फरवरी, 1835 ई॰ को राज्य करना प्रारम्भ किया और 30 सितम्बर 1880 तक शासक रहे। इस प्रकार इनका शासनकाल 44 वर्ष, 7 मास और 7 दिन माना जाता है। कविमल्लजी ने इनका शासन काल 46 वर्ष (आशास्त्रवेदाब्द) लिखा है। इस प्रकार 1937 वर्ष तो सही रूप में प्रस्तुत हो गया है, परन्तु शासनकाल में अन्तर रहा ही है।

38॰ माधवसिंह द्वितीय – महाराजा माधवसिंह द्वितीय कविमल्लजी के आश्रयदाता थे अतः इन्होंने उनके शासनारम्भ काल का सही उल्लेख किया है। इनके द्वारा निर्दिष्ट शासनारम्भकाल वि. सं. 1937 (सप्तत्रिनन्दक्षिति नाम्नि वर्षे) इतिहास प्रमाणित है। वंशावली में लिखा है इन्होंने आश्विन कृष्णा 11 संवत् 1937 तदनुसार दिनांक 30 सितम्बर 1880 ई. से शासन प्रारम्भ किया था और आश्विन कृष्णा 2 सं. 1979 अर्थात् 7 सितम्बर 1922 ई. तक ये शासक रहे थे। चूँकि कविमल्ल का देहान्त वि॰सं॰ 1977 (1920 ई.) में हो गया था, अतः इनकी मृत्यु तिथि अथवा शासन समाप्ति का संकेत कविमल्लजी द्वारा किया जाना संभव नहीं था। यों वंशावली के अनुसार इन्होंने 42 वर्ष, 11 मास और 23 दिन तक शासन किया था।

पंचमरंग में कविमल्लजी ने अपने आश्रयदाता सवाई माधवसिंह द्वितीय का विस्तार से वर्णन किया है। इनके द्वारा प्रस्तुत 60 पद्य कवि की काव्य प्रतिभा के अच्छे उदाहरण माने जा सकते हैं। इसमें कवि ने अनेक सत्यानुप्राणित घटनाओं की ओर भी संकेत किया है। कुछ पद्यों में अतिरञ्जना भी प्राप्त होती है। इन सब वर्णनों को देखकर 'निरंकुशाः कवयः' की उक्ति सत्य चरितार्थ होती है।

इस प्रकार जयनगरपंचरंगम् जयपुर नगर के तत्कालीन दर्शनीय स्थलों, यहाँ के पूर्ववर्ती शासकों तथा अपने आश्रयदाता का काव्यमय वर्णन से ओतप्रोत खण्डकाव्य है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास मात्र है। ऐतिहासिक तथ्यों से विशिष्ट कवित्व शक्ति का चमत्कार ज्यादा दिखाई देता है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान

चित्तौड़गढ़ (राज॰)

–संदर्भ–

1. कविमल्ल जी का स्वपरिचयात्मक पद्य है–

श्रीकुन्दननन्दन–हरिवल्लभ–कविमल्लपल्लविते।
जयनगर–पंचरंगे काव्येऽगात् प्रथमरंगोऽयम्।।

जयनगरपंचरंगम्, 1/49

श्री हर्ष ने भी–
'श्रीहर्षकविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतम्।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।।

2. कच्छान्वयिच्छत्रधरानुशिष्टा चञ्चच्छतक्रौशिकसीमचक्रा।
वर्षोस्ति काचिज्जयपुर्यमुष्मिन् ढुण्ढारदेशाग्रिमराजधानी।

ज. प. 2/1

3. 'कच्छवंश महाकाव्य' (अप्रकाशित) के द्वादश सर्ग में महाराज ईश्वर सिंह के ज़ीवन वृत्त का वर्णन करने के उपरान्त कवि श्री कृष्णराम भट्ट ने स्वर्ग–शूली के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्ति का उल्लेख किया है।

"सुखेन् वर्तमानोऽपि द्वारैर्नवभिरीश्वरः। चकमे हरगोविन्द दुहितारं प्रसह्ययः ।।197।।
तदर्थमेव निरमायि स्वः सूची–सौध उच्चकैः। धूव्य धक्षमूर्द्धा यो यौगिकीं ख्यातिमृच्छति।।198।।
तमारूढः कदाप्येनं पश्यन्तीं स्वकुचौरहः। दृष्टा संबोधयन्नुच्चैशर्यामेतां पपाठ सः ।।199।।
अक्षिभ्रुवं नततया तुंगतया निस्तलौ स्तनौ सुतनोः।
चिकुराविचकिल रुचिभिर्व्यतिराते दीप्तिमयरिमिताम् ।।200।।
बाले द्विफाल लम्बित चिकुर – दशाचारुचूचुकौ स्वकुचौ ।
उत्फणफणीन्द्र पुच्छत्छन्न मुखाविव निबोध निधिकुम्भौ ।।201।।
क्रुद्धोऽ जनि तदारभ्य श्रीश्वरे राज्ञि तत्पिता।
माधवेन्द्रेण निभृतं चक्रे सन्धिमिति श्रुतम् ।।202।।

4. "एकरस्थानत एव लोकविदिताँस्ताँन्दविष्ठानहो
द्रष्टुं मङ् 'खु पृथक्पृथक्किमुभुवः खण्डान्नवाऽपि क्रमात्।
स्वः शूल्यामिह चक्रचारुरुचयः खण्डा नवैवात्मनौ
दाक्ष्यं व्यञ्जयितुं प्रजां जयपुरक्षोणीभुजाकारिताः।" ज. प. 3/4 ।।

5. "वाहानां निजवैरिणः सुरपतेः पाथोमुचामुच्चकै–
रागत्योपरि गर्जतां चिरतरं दृष्टावलीं प्रावृषि।
संक्रुद्धेन रसातलाधिपतिना मुक्तोऽस्त्यसौ किं शरः
स्वः शूलीयमिति भ्रमं वितनुते चेतस्सु संपश्यताम् ।।" ज. प. 3/6 ।।

6. 'अथो बहिर्गोपुरमस्ति तस्या

मुख्यं परिच्छेदिषु कौतुकानाम्।
दृङ्निर्निमेषीकरणस्य हेतु--
रुद्यानमेकं भवदम्बुसेकम्।। जं. पं. 3/33।।

7॰ एकत्र वासादिक यत्र बाढं
नानाविधायाः स्वसमानजातेः।
विभाति वीथिर्हरितानितान्तं
पृथ्वीरुहाणां च तथा लतानाम् ।। वही, 3/34।।

8॰ धारायन्त्रसमुत्पतिष्णु सलिलैराप्लावितं सर्वतः
स्तम्भं पश्य वयस्य शिल्पबहलेकुण्डेऽत्र गौराश्मनः।
उच्चैर्बद्धकपर्दमध्यनिपतद्भागीरथीस्नापितः
शम्भोर्देह इवाऽभिलग्नभसितः संभाव्यते यः सदा ।।वही, 3/44।।

9॰ तत्राऽस्ति हर्म्यं। क्षितिपस्य सुन्दरं नवं च लोकोत्तरकारुनिर्मितं।
सत्यं समस्ता अपि चित्रिताः सुरा बभूवुरासेचनकं निरीक्ष्य यत् ।। वही, 3/45।।

10॰ नानाविधोच्चावचशृङ्गवृन्दां दृष्ट्वाकृतिं मारुतमन्दिरस्य।
उत्खातशृङ्गाकिमु सर्व शैला : संजायते धीः क्षणमात्रमेषा।। ज॰ पं॰ 3/21।।

11॰ गन्धवह हर्म्यमेतत्सुवर्तुलम् तुलित गोपुराकारम्।
जयनगर शिल्पदेव्या भाति समुपवेशनोपधानमिव।। वही, 3/24।।

12॰ लोके दण्ड्यः सा भवति मुहुर्योऽपराधं विधत्ते
चित्रं चित्रं बत जयपुरे नीतिरेषा न दृष्टा।
नित्यं गत्या नृपपथगतान्कुट्टिमाखण्डयन्तो
दण्ड्यन्ते नो यदिह गणशः संप्रयान्तुस्तुरङ्गाः ।। वही, 3/51।।

13॰ एतद्धन्यमितीव नाकपतिना रत्नानि वृष्टानि किं
सर्वत्राऽथ नृपप्रतापशिखिनः स्फूर्जन्ति वार्चीषि किम्।
राज्यश्रीतटिनी प्रवाहसलिले किं बुद्बुदा इत्यमी।
कुर्वन्ति भ्रमकल्पना जयपुरे दीपावलीदीपकाः ।। वही, 3/54।।

14॰ बभूव राजा नृपराख्ययादौ यो वासयामास पुरीं स्वनाम्ना।
तस्येश्वरीसिंह इतिप्रसिद्धो वार्धक्यकालेऽजनि सूनुरेकः ।। वही, 4/8।।

15॰ शास्त्राभ्रशून्येन्दुमितेऽथ वर्षे तदात्मजः काकिलदेव भूपः।
सामन्तमेकं विनिहत्य दम्भा– दम्बावतीं तन्नगरीं जहार ।। वही, 4/11।।

16॰ रामांकखविधावब्दे माघे पक्षे तमो भुवि।
सप्तम्यां तप्तहेमाभोभूपोऽभूत्किल काकिलः ।। कच्छवंश, 4/1

17. भावः स्वभावचतुरश्चतुरस्त्र–कीर्ति, वर्षाणि सप्तपृथिवीं पृथुधीः प्रशास्य।

वस्वाद्रि–षड्विधुशरद्यधितैब्यमच्छे, खण्डेतिथौपितृपतेः पितृलोकमाय।। क. म. 8/224

18. आश्वयुकृष्णपञ्चम्यामब्धि दृक्कुध्रकौ नृपः।

वत्सरे वत्सरे क्वाहं जल्पन्निति तनुं जहौ।। क.म. 9/145।।

19. "स्व प्रयाणतिथिर्विष्णोर्वलक्षामाघसप्तमी।

सा तु षड्बाणशैलेन्द्र– संवत्सर परिश्रुता।।" कच्छवंश , 10/191।।

20. "------ खखवसुविधावब्दे पक्षे तथाश्वयुजेऽर्जुने।

स्वरुषसि चतुर्दश्यां पुण्यैरपद्यत विष्णुजः। कच्छवंश ,11/121।।

21. जयनगरपंचरंगम्, 4/41, पृष्ठ 25

22. सप्तैव वर्षाणि विमर्शकोविदो

द्विषष्टिमन्हामवनीमवत्सुखम्।

अब्देऽद्रिखाष्टेन्दुमितेऽथ कृष्णगां

स द्वादशीं प्राप्य विषेण संस्थितः।। कच्छवंश ,12/251।।

23. कच्छावंशमहाकाव्य सर्ग 14, श्लोक –18

24. बाणाद्रिवसुचन्द्राब्दे पौष कृष्णावलंबनीम्।

नवमीं प्राप्य पुण्यात्मा त्रिविष्टयमपद्यत।। कच्छवंश, 16/36।।

कर्णकुतूहल का राजनीतिक एवं सामाजिक पर्यालोचन

डॉ॰ ठाकुर दत्त जोशी,

उक्त रचना महाकवि भोलानाथ द्वारा रचित है। इस कृति को राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने सन् 1957 में प्रकाशित किया था। इसके सम्पादक प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता श्री गोपालनारायण बहुरा (भूतपूर्व उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान) हैं। यद्यपि कवि भोलानाथ ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, किन्तु संस्कृत भाषा में उन्होंने जिन दो ग्रन्थों का निर्माण किया था वे हैं– कर्णकुतूहलम् तथा कृष्णलीलामृतम्।

कर्णकूतूहल तीन कुतूहलों में विभक्त ग्रन्थ है। प्रथम कुतूहल में अपने आश्रय दाता, जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंह का तथा उनके पिता जयपुर नरेश राजा माधव सिंह, तथा माधवसिंह के पिता राजा श्री जयसिंह का यशोगान एवं वीरता आदि का वर्णन किया गया है। दूसरे कुतूहल में सम्भोग शृंगार का वर्णन प्राञ्जल शब्दों में किया गया है। तृतीय कुतूहल में आख्यायिका वर्णन के माध्यम से राजकुमार के भ्रमण एवं उसके स्वागत में जनता के द्वारा कृत स्वागत एवं प्रजाजनों की उत्सुकता को भी विस्तार से विवेचित किया गया है।

समस्तराजसमूह के शिरोमणिरूप महाराजाधिराज जयसिंह के विषय में कवि का कथन है:–

दीनों के अन्धकार रूपी द्रारिद्रय को नष्ट करने में चतुर, जिस राजा के प्रतापचिह्न से त्रस्त शत्रुराजगण, जिनकी रांत–दिन स्तुति करते हैं, ऐसे मित्ररूपी कमलों को विकसित करने वाला तथा सूर्य की किरणों के समान शोभायमान कीर्तिवाला वह श्रेष्ठ महाराजाधिराज श्रीजयसिंह राजा हुआ। यथा–

यस्य क्षोणिपतेः प्रतापतपनस्त्रस्तारिभूभृत्परं
दीनध्वान्तदरिद्रदारणपटुः संस्तूयतेऽहर्निशम्।
मित्राम्भोजविकाशकारि विलसद्भास्वत्करः कीर्तिदः
सोऽयं श्रीजयसिंहभूपतिरभूद्राजाधिराजोऽनघः।।1/31।।

अन्यच्चः–

श्रीरामचन्द्र के समान विजय योगवाले, श्रीकृष्ण के समान अत्यधिक भोग करने वाले, अपने भक्तजनों के लिए नरसिंहरूप रघुवंश के तिलक, राजा जयसिंह हुए। यथा–

श्रीरामचन्द्रसमविजययोग, श्रीकृष्ण सदृशकृतभूरिभोग।
रघुवंशतिलकजयसिंहभूप, निजभक्तपाल नरसिंहरूप ।।1/14।।

अन्यच्चः–

स्वर्णदान करके कर्ण को जीतने वाले, धर्मराज के समान धनद, सूर्य के समान तेज पुञ्जरूप, शरद ऋतु के समान चन्द्रमा को जीतने वाले ऐसे राजा जयसिंह हुए। यथा—

कृतहेमदान जितकर्णदेव नृपधर्मराज इव धनध (द) एव।
दिनकरसमतेजः पुञ्जरूप, जितशरच्चन्द्रजयसिंहरूप ।। 1/15।।

अन्यच्चः—

कमल में लक्ष्मी के समान, शत्रुओं में जो एकमात्र तेजरूप, नीलकमलों के समूह के लिए उत्सवश्री के समान प्रीति देने वाला तथा नेत्ररूपी चकोर के द्वारा सेवित, अत्यन्त निर्मलमूर्त्ति स्वरुप राजा जयसिंह ही दूसरा चन्द्र था।

रिपुजलरुहलक्ष्मी हारिधामैकधामा
कुवलयकुलचक्रप्रीतिदत्तोत्सवश्रीः।
परमविशदमूर्तिर्दृक्चकोरैकसेव्यो
नरपतिजयसिंहश्चन्द्र एवापरोऽभूत्।। 1/16।।

इन्हीं राजाधिराज श्री जयसिंह के पुत्र, मत्स्य देश में महाराजाधिराज श्री माधवसिंह (प्रथम) राजा हुए। ये अत्यन्त दानी, गुणी, योद्धा एवं प्रतापी थे।

इनके विषय में कवि का कथन है कि ये समस्त अधीनस्थ राजारूपी शत्रुसमूह को विदीर्ण करने वाले साक्षात् इन्द्र के समान प्रचण्ड पराक्रम वाले हैं। इनके पराक्रम का वर्णन कवि ने निम्न प्रकार से किया है।

समस्त पाखण्डों को जानने वाले, अत्यन्त प्रतापशाली, प्रचण्ड अग्नि के तुल्य अथवा दावाग्नि के समान तेजस्वी तथा बलशाली भुजाओं से दुष्टरूपी अरण्य को शीघ्र ही विनष्ट कर देने वाला उस राजा का प्रताप था। यथा—

प्रचण्डदोर्भ्यामतिदरिता रणे
खला अखण्डानलतुल्यतेजसा।
समस्तपाखण्डविदाहिताटवी
नृपेण येनाशु महत्प्रतापिना ।। 1/8।।

तलवार लिए हुए कुपित यम को देखने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है। अर्थात् कोई नहीं हो सकता, उसी प्रकार युद्ध में उस राजा के आगे शत्रुसैनिक एवं शत्रुराजा खड़े भी नहीं हो सकते हैं। यथा—

यस्याग्रे नहि तिष्ठन्ति भटभूपाश्च संगरे।
सखड्गं कुपितं द्रष्टुं कः सहेत यमं नरः।। 1/9।।

अत्यधिक प्रतापी इस राजा के विषय में कवि पुनः कहता हैः— जो दूसरों के नगरों को सद्यः जलाने में साक्षात् परशुराम के समान समर्थ है, दुष्टरूपी अन्धकार को नष्ट करने में जिसका प्रतापरूपी सूर्य पूर्ण समर्थ है तथा शोभासम्पन्न चन्द्रमा की कला के समूह के समान जिसकी

निर्मल कीर्त्ति दिशाओं में फैल चुकी है, ऐसा वह माधवेश राजा, राजकुलों में अत्यधिक सुशोभित होता है। यथा—

साक्षाद् भर्गः इव प्रभुःस दहने तूर्णं परेषां पुरां (न)
दुष्टध्वान्तविदारणे विभुरसौ यस्य प्रतापो रविः।
श्रीमच्चन्द्रकलाकलापविशदा कीर्त्तिर्दिगन्तं गता
सोऽयं राजकुलेषु भाति नितरां श्री माधवेशो नृपः।। 1/10।।

पुनः कवि माधव सिंह के विषय में कहता है कि वेदों के समान राजा की कीर्त्ति दिग्दिगन्त में फैली हुई है, क्योंकि प्रत्येक दिशा में हंसी अर्थात् उज्ज्वल श्वेतवर्ण की होकर फैलती हुई विद्वानों के मुखकमल में रहती हुई, जिह्वा के अग्रभाग से निकलती हुई समस्त सुरमुनि समुदाय द्वारा वन्दनीय होकर भासित होती हुई तत्तत् मन्त्रों को पढ़ती हुई, सद्यः परपद प्राप्ति की सिद्धि को कहती हुई, सभी कामनाओं को पूर्ण करती हुई श्रुति (वेद) के समान माधवेश की कीर्त्ति जानी जाती है।

हंसी भूत्वा व्रजन्ती दिशि दिशि विदुषां पङ्कजास्ये वसन्ती
जिह्वाग्रान्निस्सरन्ती निखिलसुरमुनिव्रातवन्द्योल्लसन्ती।
तत्तत्मन्त्रान्पठन्तीं सपदि परपदप्राप्तसिद्धिं ब्रुवन्ती
सर्वार्थान् पूरयन्ती श्रुतिरिव विदिता माधवेशस्य कीर्त्ति ः।। 1/11।।

कवि ने अत्यधिक दानी के रूप में भी इनका यशोगान किया है। कवि कहता है माधव ! तुम्हारे दाता होने पर कहां तो कर्ण और कहां दूसरा राजा भोज। सूर्य के उदित होने पर तारों की आकृति वाले अन्य नक्षत्र क्या प्रताप किंवा प्रकाश फैला सकते हैं?

यथा—

त्वविसति माधव दातरि कः कर्णः परश्च भोजः कः।
उदिते सवितरि केऽन्ये ताराकाराः प्रतापकराः। ।1/12।।

इन्हीं महाराजाधिराज राजा माधव सिंह के पुत्र समस्त राजसमूह के शिरोमणि सवाई प्रताप सिंह हुए। ये राजा जयसिंह के पौत्र थे। इनके प्रतापातिशय एवं सौन्दर्य के विषय में कवि कहता है कि 'उनका (राजाजयसिंह का) पौत्र समस्त जगत् में परम देवस्वरूप, पृथ्वी पर शत्रुसमूह को जीतने वाला दूसरे इन्द्र के समान, समस्त लोकों को विकसित करने वाले सूर्य के समान, विष्णु के समान पृथ्वीपालक, चन्द्रमा के समान जगत् को आनन्द देने वाले, परम प्रतापी महाराजधिराज श्रीमान् प्रतापसिंह हुए हैं। यथा—

तत्पौत्रो समस्तजगतां परमदैवतरूपो विजितारिमण्डल आखण्डल इवापरो भूमेः सहस्त्रांशुरिव विकसिताखिलकलोकः लोकनाथ इवा वनिपालः कलानिधिरिवजगदानन्ददायकः श्रीमान् परमप्रतापी महाराजधिराजः श्री प्रतापसिंहोऽस्ति।

श्री प्रतासिंह को विविध व्यक्तियों ने विविधरूप में देखा। मित्रों के द्वारा साक्षात् सूर्य के

रूप में, कामिनियों के द्वारा सुन्दरता में साक्षात् काम के रूप में, सज्जनवृन्दों के द्वारा नयनों को आनन्द देने वाले चन्द्रमा के रूप में तथा राजाओं ने साक्षात् इन्द्र के रूप में देखा। यथा–

सूर्यः साक्षान्मित्रवर्गेण रूपे साक्षात्कामः कामिनीभिर्व्यलोकि।
चन्द्रः साक्षाल्लोचनैः सज्जनौघैः साक्षादिन्द्रोभूमिपैःश्रीप्रतापः ।।1/17।।

कवि ने इनकी तुलना युद्ध में अर्जुन के साथ, दान में कर्ण के साथ, धीरता में राम के साथ की है। यथा–

दृष्टो देवैः पार्थतुल्यो रणेऽसौ
दाने दृष्टः कर्णएवापरो वा।
रामः साक्षाद्धीरतायां नरौघै–
र्दृष्टः किं वा सप्रतापः प्रतापः ।।1/18।।

इस लोक में जिस प्रकार सूर्य उदित किरणों से संसार को तपाता है। सूर्य, शत्रु अथवा मित्र सभी पर समान किरणों को गिराता है। उसी प्रकार प्रतापसिंह की बुद्धि में भी भेद नहीं होता है, भेद तो तपाने में (अर्थात् दण्डित करने में) होता है। ऐसे प्रजा के नाथ श्रीमान् (प्रतापसिंह) सदा हमारे स्वामी हों।

राजा की सुन्दरता के विषय में कवि कहता है:– हे राजा! तुम्हारे मुख चन्द्र ने इस बेचारे दरिद्र चन्द्र को पराजित कर दिया है, क्योंकि सूर्य के अस्त होने पर वह मलिन मुख लिये उदित होता है तथा रात्रि में लज्जावृत मुख से पूर्ण प्रकाशित नहीं होता। सूर्योदय होने पर भी पूर्णकान्तिमान्, रात्रि में भी तुल्य आभा सम्पन्न सदा उदित तुम्हारा मुखचन्द्र इसे तिरस्कृत कर रहा है। यथा–

मृगाङ्कोऽयं रङ्क प्रभवति सपङ्कःसुमनसां
दिनेऽस्तं याते मलिनमुखएवोदयति च।
निशायां धृष्टोऽसौ न हि भवति लज्जावृतमुखो
जितो राजन् लोके तव विधुमुखस्य प्रतिभया।।1/22।।

इस प्रकार राजा प्रतापसिंह के आश्रित रहकर कवि भोलानाथ ने राजा की तीन पीढ़ियों के विषय में प्रकाश डाला है, इस काव्य के माध्यम से, कहें तो समीचीन ही माना जायेगा।

कवि ने द्वितीय कुतूहल के माध्यम से राजाओं की रात्रि केलि-का जिस रूप में वर्णन किया है, उससे तत्कालीन राजा एवं रानियों के विषय में पुष्कल प्रकाश पड़ता है। यथा–

राजा प्रतिहारी के माध्यम से सायंकालीन वेला में रानी को अपने कक्ष में बुलाता है। पर्यङ्क से उठकर रानी जब राजा के कक्ष में पहुंचती है तब राजा रानी का हाथ पकड़कर निवेदन करता है। हे प्रिये तुम मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गई हो, मेरा मन तुम्हारे अन्दर मग्न हो गया है, मग्न ही नहीं तुम्हारे अन्दर डूबा जा रहा है। जैसे कमल में आसक्त भ्रमर इधर उधर जाने की

स्थिति में नहीं होता है, वही स्थिति मेरी भी हो रही है। अतः मुझे दया का पात्र मानते हुए हे सुजघने मुझे अपने कटाक्षपातों से आहत कर मुझे जीवन दान करो। यह मेरी एक करबद्ध प्रार्थना है। यथा–

त्वं मे वै ह्रदयं गतासि चतुरे मग्नं मदीयं मनः
सत्यं नो चलतीव मज्जतितरां भृङ्गो यथा वारिजे।
तस्मान्मां सदयं निरीक्ष्य विलसद्वामोरुनेत्राञ्चलैः
हत्वा जीवय जीवय प्रियतमे बद्ध्वाञ्जलिं प्रार्थये ।।2/4।।

कवि ने रानी की सखी के मुख से अत्यधिक कामान्धता की निन्दा की है। यथा– पर्वत से गिरना सुखद हो सकता है। समुद्र में, अग्नि में, गिरना सुखद माना जा सकता है, यहां तक की कीचड़ में गिरना सुखावह माना जा सकता है, किन्तु अत्यधिक प्रेम में पतन किसी का भी न होवे। यथा–

गिरितः पतनं सुखावहं पतनं वारिनिधौ तथैव च।
अनलेह्यवटेति कर्दमे पतनं प्रेम्णि न कस्यचिद्भवेत्।।

अत्यधिक कामासक्त राजाओं के दुर्दिनों को दृष्टिगत कर उक्त कथन अन्यत्र के लिए भी समीचीन है, किन्तु कामान्धों के लिए कुछ भी असमीचीन नहीं होता।

मुदित राजा कमलनयनी रानी के साथ शराब पीने के लिए अत्यधिक आतुर है। राजा ने स्वयं यथेच्छ मद्य पान किया ही था, किन्तु रानी को भी शराब पिलाने का इच्छुक राजा अपने हाथ से शराब के प्याले को रानी के मुख में लगाता हुआ प्रार्थना करता है– हे कमलनयने तुम भी पीओ, मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो। इस प्रकार राजा रानी से पीने के लिए अनुनय विनय करता रहा, किन्तु रानी नहीं नहीं करती रही। यथा–

सीधुपानमुदितः सहकर्तुं वल्लभो वनितया जलजाक्ष्या।
तेन संयुतमयं मधुपात्रं प्राददे प्रियतमाकरतोऽलम् ।।2/9।।
पिब पिबेति लपन् बहुधा वचो निजकरेण मुखे समयोजयत्।
जलरुहाक्षि कुरुष्व मदीरितंम न न ननेति ननेति जगाद सा।।

राजा पुनः रानी से प्रार्थना करता है, हे प्रिये! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, याचना करता हूं कि सुख चाहने वाले पति पत्नी के सम्भोग– कालीन सुन्दर एवं सुखद मधु का पान कीजिए। यथा–

बद्ध्वाञ्जलिमहं याचे मधुपानं कुरु प्रिये।
सम्भोगचारुसुखदं दम्पत्योः सुखमिच्छतोः ।।2/13।।

राजा के इस प्रकार के वचनों को सुनकर हास्यपुरस्सर रानी राजा को कहती है आप ऐसा क्या कह रहे हैं ? मैं तो आपकी दासी हूँ, जो आपको करना है वह मेरे लिए भी करणीय है:– 'रानी सहासमाह– किं एवं ब्रूषे– अहं दासी भवामि, यत्त्वया कर्तव्यं तन्मयाऽपि करणीयम्'

हांस्ययुक्ता रानी के कथन को सुनकर राजा रानी से कहता है। हे मन के हरने वाली! तुम मेरी प्राण प्रिया हो। चलायमान सुन्दर नेत्रों के कटाक्षों के माध्यम से मेरे चित्त को भेदित कर भयानक (विषम) बाणों से वशीभूत क्यों किये जा रही हो, यह समीचीन नहीं है। हे कमलनयनी! मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि प्रसन्न हो जाओ। मैं तुम्हारे प्रेमजाल में बद्ध हूँ। मेरे वचनों को सुनकर मदिरापात्र ग्रहण करो।

अच्छा महाराज! ऐसा ही सही कहकर रानी मद्यपात्र को ग्रहण कर लेती है। मद्यपान के कारण विलास युक्त रानी के मुख को घूरता हुआ राजा विस्मित हो जाता है और उससे कहता है। हे कमलनयनी! तुम्हारा मुख जिस प्रकार अत्यन्त कान्तियुक्त है; वैसे ही तुम्हारा यह बिम्बाधर भी अत्यधिक रुचिकर है, इस प्रकार दोनों ही सुन्दर चेष्टओं से परस्पर स्पृहारहित विलास क्रिया करते रहे।

अतीवकान्तं मुखमम्बुजाक्षि ते तथैव विम्बाधर एव रोचते।
परस्परं द्वावपि चारुचेष्टितैः क्रियाविलासं कुरुते स्म सस्पृहम्।।

राजा पुनः कहता है— हे प्रिया! तुम्हारी मैं उसी प्रकार सम्भावना करता हूँ जिस प्रकार जलयुक्त तालाब में रात—दिन हंसी विचरण किया करती है (उसी प्रकार) मेरे शृङ्गार रस युक्त चित्त के अन्दर और बाहर भी तुमहो। यथा—

त्वं मे चेतसि विहरसि सरसं हंसी यथानिशं सरसि।
बहिरपि त्वं मे भवसि प्रेयसि त्वं मे तदपि जाने।।2/32।।

वृक्ष से जैसे लता लिपट जाती है, वैसे ही दोनों का मिलन हुआ यथा—

इति प्रियोक्तं सरसं निशम्य लतेव वृक्षं सहसाऽबला सा।
मृणालदोर्भ्यां ससुखं स्ववक्षसा निपीड्य तस्यान्तरयाम्बभूव।।2/32 ।।

इस प्रकार मृग के समान नयनवाले, कान्ति के कारण रमणीय कमल के समान देहवाले दोनों ने क्रीडागृह में समान कमनीय प्रीतिस्वरूपा लक्ष्मी को प्राप्त किया। यथा—

इति वदनसरोजौ कान्ताकान्तौ मृगाक्षौ विलसितमधिकं तौ प्राप्य केलीगृहान्तः।
परमसुखनितान्तप्राप्तिपूर्णाभिलाषौ, रतिपति कमनीयौ प्रापतुः प्रीतिलक्ष्मीम्।।2/36 ।।
मुखं मुखस्योपरि सन्निधाय निपीड्य वक्षः किल वक्षसा तु।
सुखं समाजग्मतुरेकचित्तौ यदद्वयानन्दमयं वदन्ति ।।2/34 ।।

इस प्रकार दोनों ही सुखपूर्वक अद्वयानन्द की स्थिति को प्राप्त हुए।

तृतीय कुतूहल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जब राजकुमार भ्रमणार्थ शहर के राजमार्गों से निकल पड़ता था, तब उसके दर्शन एवं स्वागत हेतु नर—नारीवृन्द घरों में कार्यरत होते हुए भी बाहर निकल पड़ते थे। कवि का काव्य तत्तत्युगीन समाज की मान्यताओं एवं रीति—रिवाजों से अवश्य ही प्रभावित होता है। कवि किसी न किसी ब्याज से अपने काव्य में उन रीति एवं परम्पराओं को गुम्फित करने का प्रयास करता है।

राजकुमार अपने अनुचरों के साथ भ्रमणार्थ शहर के राजमार्गों से जा रहा है। इस वर्णन में कवि ने अपनी कुशल लेखनी से जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसका दिग्दर्शन मात्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :–

विशाल नेत्रवाले अनुचरों से युक्त, चलायमान चंवरों द्वारा बार–बार हवा किया जाता हुआ, कुमार नाम का वह राजपुत्र आकाश से गिरती हुई गंगा की जलधारा से संपृक्त देवता के समान सुशोभित हुआ। यथा–

विशालनेत्रानुचरैः परावृतः स वीज्यमानश्चलचामरैर्मुहुः।
कुमारनामा शुशुभेनृपात्मजो वियत्पतद्‌गाङ्गझरैर्यथामरः।।3/8।।

इस प्रकार के सुन्दर उस राजकुमार के दर्शन हेतु समागत कोई नायिका मूर्च्छित हो जाती है। इस विषय में कवि का कथन है कि– इसके अनन्तर कोई विशालनयना, चलती हुई उस (कुमार) के लावण्य को देखने गई। (देखने से) तृप्त होने से पूर्व ही मूर्च्छित हो गई और गहरी–गहरी श्वास लेने लगी। यथा–

काचिच्चलन्ती चपलायताक्षी तदीयलावण्यमथो विलोक्य।
जगाम तृप्तिं न जगाम तावन्मुमोह विश्वासततीरुवाह।।3/16।।

पूर्वोक्त कुमार जब धर्मपुर के निकट रुके तो वहाँ घर–घर में की गई सजावट अतीव भव्य थी, जिसका वर्णन कवि ने निम्न शब्दों में किया है– द्वार प्रदेश, पत्र, पुष्प, फल तथा खीलों से मण्डित, स्वर्णघटों से युक्त तथा दिव्य सुन्दरियों से अलंकृत श्वेत गृहों को उन लोगों ने देखा। यथा–

द्वारदेशधृतहेकुम्भकान् पत्रपुष्पफलाजमण्डितान्।
दिव्यवामनयनाद्यलंकृतानृ पश्यति स्म सः गृहान् जनः सितान्।।3/18।।

राजकुमार के दर्शनार्थ ललनाएँ अपने कार्य को छोड़कर चल पड़ीं। इसका दृश्य कवि ने जो वर्णित किया स्वयं कवि साक्षात्कृत प्रतीत होता है।

कोई कान्ता आँखो में अञ्जन लगाती लगाती ही, कोई धोती हुई ही, कोई आभूषणों से सज्जित होती हुई, कोई केशों को सुखाती ही उसे देखने के लिए चली गई।

काचिद् द्रष्टुं चक्षुषी अञ्जयन्ती काचित् पादौ क्षालयन्ती जगाम।
काचित्कान्ता भूषणं भूषयन्ती काचित् केशान् शोषयन्ती चचाल।।2/24।।

राजकुमार का पुष्प एवं लाजाओं (खीलों) से कृत स्वागत कवि द्वारा दृष्टानुभूत प्रतीत होता है। यथा–

कोई कान्ता माल्यवृष्टि कर रही थी, तो कोई उसी के समान लाजावृष्टि (खीलों की वर्षा) कर रही थी इस प्रकार राजमार्ग को देखकर उल्लास को प्राप्त हुआ कुमार राजगृह में पहुँचा।

काश्चित्कान्ता माल्यवृष्टिं चक्रुः काश्चित्तद्वल्लाजवृष्टि वितेनुः।
एवं पश्यन् राजमार्गं कुमारः प्राप्तोल्लास : राजगेहं विवेश।।3/27।।

इस प्रकार कवि भोलानाथ ने अपने आश्रयदाता महाराजा प्रतापसिंह का एवं उनके पूर्वपुरुषों का यशोगान प्रथम कुतूहल के माध्यम से किया। इससे इन राजाओं के विषय में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

द्वितीय कुतूहल के माध्यम से कवि ने शृंगार से ओतप्रोत मद्यपान का एवं सम्भोगलीला का विस्तार से जो वर्णन किया, उससे राजा के एवं रानी के विषय में अतीतकालीन मान्यताओं एवं प्रथाओं का समुद्घाटन हो जाता है।

तृतीय कुतूहल के माध्यम से अतीतकाल में जब प्रजा की रक्षा का भार तथाकथित राजा लोग संभालते थे, उस समय राजकुमार के राजमहल से बाहर निकलने पर प्रजा उनके दर्शनार्थ एवं स्वागत हेतु अपने को किस रुप में प्रस्तुत करते थे। इस विषय में तत्कालीन मान्यताओं एवं प्रथाओं के भी दर्शन हमें हो जाते हैं। इनको ही समुद्घाटित करना इस लेख का मुख्य प्रयोजन है।

यह ज्ञातव्य है कि कवि भोलानाथ के आश्रयदाता महाराजा प्रतापसिंह स्वयं अच्छे कवि थे, कवि ही नहीं कवियों के आश्रयदाता भी थे। वे विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता तो थे ही, उन्होंने तत्तत् भाषाओं में काव्य–सर्जना भी की थी। यथा–खड़ी बोली, ब्रजभाषा, राजस्थानी, उर्दू से संयुक्त पञ्जाबी भाषा प्रमुखरूपेण परिगणनीय हैं। ब्रजनिधि ग्रन्थावली नाम से उनके द्वारा रचित 28 ग्रन्थों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। संगीत आदि विविध विषयों में इनकी अभिरुचि थी। यहां तक कि वास्तु और स्थापत्यकला जैसे विषयों में भी इनकी गति थी।

इनकी जीवनावधि यद्यपि अल्पकालीन रही तथापि इन्होंने उतने समय में ही बहुत कुछ स्मरणीय कार्य किये। इनका जन्म जयपुर में संवत् 1821 पौष कृष्ण द्वितीया को हुआ तथा इनकी मृत्यु संवत् 18060 में श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को हुई।

महाराजा प्रतापसिंह 15 वर्ष की अल्पायु में ही ये गद्दी पर बैठ गये थे। अपनी दूरदर्शिता के कारण शीघ्र ही इन्होंने राज्य की बाग्डोर सम्भाल कर राज्य के अन्तरंग शत्रुओं को नतमस्तक कर दिया। साहित्यिक क्षेत्र के समान ही प्रशासनिक क्षेत्र में भी इनकी कीर्त्ति युगयुगों तक समरणीय रहेगी।

कान्यकुब्जीय ब्राह्मण कवि भोलानाथ कुछ समय शाहजहाँ के राजदरबार में रहे कालान्तर में राजा सूर्यमल्ल के साथ भरतपुर आये, किन्तु कुछ समय के बाद जयपुर आकर स्थायी रूप से रहने लगे। भोलानाथ को राजदरबार में लाने का श्रेय जयपुर के महाराजा माधव सिंह प्रथम के गुरु एवं परामर्शदाता में कवि कहता है :–

पुष्यरुपी रत्नों का संचय करने के कारण दूसरे समुद्र के समान, देखने में चन्द्रमा के सदृश तथा कुबेर के समान जिसने महादानादि कार्य किए हैं, विश्वविदित दिव्य औदुम्बर वंश में स्वयं विश्वनाथ स्वरूप पृथ्वीपति श्री भट्टसदाशिव सहस्र संवत्सर तक जीवित रहे। यथा–

रत्नेशः कृतपुण्यरत्ननिचयो रत्नाकरश्चापरः
तज्जातः शशिसन्निभ : कृतमहादानः कुबेरो यथा।

दिव्यौदुम्बरवंश विश्वविदितः श्रीविश्वनाथः स्वयं
श्रीमान् भट्टसदाशिवक्षितिपतिर्जीयात् सहस्रं समाः ।।3/46।।

कवि स्वयं के लिए कहता है–

तातो यस्य समस्तशास्त्रनिपुणः श्रीनन्दरामाभिद्यो,
माता यस्य च पौष्कठीति विदिता पत्यर्चने तत्परा।
वासो देवकलीपुरे निगदितो यत्रास्ति कालेश्वरो,
भोलानाथ इति प्रसिद्धिमगमत् तत्काव्यमेतच्छुभम् ।।3/47।।

सेवानिवृत्त सहाचार्य, संस्कृत–विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर

राजस्थान के ऐतिह्य के आलोक में भट्ट मथुरानाथशास्त्री प्रणीत 'जयपुरवैभवम्'– एक ऐतिहासिक दृष्टि

डॉ. गंगाधर भट्ट

'जयपुरवैभवम्' भट्ट मथुरानाथ शास्त्री प्रणीत वैभवत्रयी की अन्यतम काव्यसृष्टि है। जैसा कि नाम से विदित होता है कि यह रचना जयपुर से सम्बद्ध है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सभी प्रख्यात कवीश्वरों का स्मरण किया गया है। उन कवियों की समस्त विशिष्टताओं एवं उनकी स्वभावगत सूक्ष्मताओं को उनकी जीवनसरणि के साथ निरूपित किया गया है। कविवर भट्टजी की अध्ययन बहुलता एवं मार्मिकता का यह परिचायक है कि उन्होंने साधारण जनता में अल्पप्रसिद्ध कवियों का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। वस्तुतः यह उनकी उदारातिशयता का द्योतक है।

जयपुर का भौगोलिक स्वरूप कवि ने जिस मार्मिकता से प्रस्तुत किया है वह इतिहासपरक उनकी दृष्टि को मुखरित करता है। जयपुर के इतिहास के निर्माण में राजाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रकृत ग्रन्थ की राजवीथी इसका निदर्शन है। ग्रन्थ–निर्माण के समकालीन जयपुर के महाराज माधवसिंह का सविस्तार वर्णन किया गया है। उनके राज्यकाल में सम्पन्न विशिष्ट उत्सवों का निरूपण सहृदयों के समक्ष एक चित्र–सा उपस्थित कर देता है। यहीं पर वर्तमान महाराज श्री मानसिंहदेव का विवाहोत्सव, उनका अधिकार प्राप्ति महोत्सव कविवर ने विस्तारपूर्वक तिथियों के निर्देशपूर्वक वर्णित किया है। साथ ही प्रसंगवश कुमार–जन्मोत्सव भी अधिक उल्लासप्रधान बन पड़ा है। तदनन्तर उत्सववीथी में जयपुर नगर में होने वाले मेले आदि का आँखों देखा वर्णन उपलब्ध होता है। भानु–सप्तमी आदि मेलों में हाथी, घोड़े ऊँट आदि का चित्रण मनोहारी है। आजकल उत्साह की न्यूनता के कारण शिथिल हुए इन महोत्सवों की पूर्वकाल में सम्पन्न कवि वर्णित महोत्सवों से तुलना करने पर इतिहास के आलोक में आगे आने वाले लोगों की रुचि में परिष्करण हो, उनका उत्साह बढ़े और ऐतिहासिकों को उनके परिज्ञान एवं तत्कालीन संस्कृति से परिचय प्राप्त हो– यही प्रकृत काव्य की उपयोगिता है।

जयपुरवैभवम् एक मुक्तक रचना है और यह तथ्य है कि मुक्तक काव्यों में क्षणानुभूतियों का चित्रण ही सम्भव है, फलतः जीवन का समग्र चित्र न तो किसी एक पद्य में समाहित हो पाता है और न कथा के अवष्टम्भक के अभाव में अन्तर की समस्त भावतरंगावलियों को एक साथ अंकित करने का अवसर ही उसे प्राप्त होता है तथापि

उनकी विशिष्टता इसमें निहित है कि इनमें तत्कालीन समाज एवं संस्कृति बड़े उन्मुख भाव से मुखरित होती है। एक ओर जहाँ इन रचनाओं में काव्य के विविध लालित्यपूर्ण रूपों का चित्रांकन होता है तो दूसरी ओर वे पूर्णतः लौकिक एवं सामाजिक परम्पराओं से ग्रथित हैं। प्रत्येक विषय में सुधार, विरोध–विद्रोह के स्तर भी स्पष्टता एवं प्रभविष्णुता के साथ मुखरित होते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से जयपुर वैभव का महत्व अक्षुण्ण एवं निर्विवाद है। इसमें चित्रित ऐतिहासिक सामग्री को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– प्रथमतः कविवर ने प्रकृत–ग्रन्थ में अपने समसामयिक जयपुर की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार की परिस्थितियों का चित्रण किया है। परिणामतः आज की परिस्थितियों एवं इस ग्रन्थ में वर्णित परिस्थितियों में समय के प्रवाह के कारण आने वाले परिवर्तन का आकलन कर कवि के समकालीन जयपुर से सम्बन्धित तथ्यों के ज्ञान की दृष्टि से यह इतिहासकारों के लिये अत्यन्त उपादेय है।

अन्यतः और अन्ततः कवि ने अपनी इस कृति में अनेक स्थानों पर ऐतिहासिक इतिवृत्त एवं नागरिक वीथी में चरित्र संग्रहों का भी निबन्धन किया है। यद्यपि ये इतिवृत्त एवं चरित्र संग्रह जयपुर के वैभव के ही प्रकाशक हैं तथापि इनके माध्यम से कवि ने कुछ ऐसे आंकड़ों, ऐतिहासिक तथ्यों को उदघाटित किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त उपादेय हैं तथा तत्कालीन जयपुर के गणमान्य व्यक्तियों के चरित्रों का संकलन कर जयपुर नगर का समसामयिक इतिहास भी उपनिबद्ध कर दिया है :–

जयपुर वैभव में जयपुर नगर के सर्वतोमुखी वैभव का सांगोपांग निरूपण किया गया है। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से समग्र रचना को आठ वीथियों में विभक्त किया गया है :–
1. आमुख वीथी (चतुष्पदी चत्वर एवं मंगलचत्वर) 2. नगरवीथी 3. राजवीथी 4. उत्सववीथी 5. नागरिक वीथी 6. उद्यानवीथी 7. अभिनन्दनवीथी और 8. ब्रजकवितावीथी।

प्रकृत–ग्रन्थ का प्रकाशन इसकी समर्पण मर्यादा को ध्यान में रखकर किया गया था। कवि की यह दृढ़ धारणा थी कि जयपुर वसुन्धरा के इन्द्र को छोड़कर अन्य कोई इसके समर्पण का अधिकारी नहीं हो सकता, अतः उन्होंने महाराज मानसिंह के शासन की रजत–जयन्ती के अवसर पर इस अनुपम निधि को अक्षय उपहार के रूप में उन्होंने सस्नेह समर्पित कर अपनी कामना को सफल बनाया। आमुख में उन्होंने स्वयं अंगीकार किया है–

कारणमत्रासीज्जयपुरवैभवस्य समर्पणमर्यादा नूनम्।
जयपुरवसुन्धरापुरन्दरं च विहाय नान्योऽधिकारी भवितुमर्हति।।

ग्रन्थ का प्रारम्भ वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, ज्ञानप्रदीप गुरु तथा विघ्नविनाशक विनायक की वन्दना से हुआ है।

नगरवीथी में जयपुर का जो सौन्दर्य एवं अतुलित वैभव कवि ने अक्षिगोचर किया उसे कविदृष्टि से विभिन्न छन्दों के माध्यम से चित्रित किया है।

गगनचुम्बी देवमन्दिरों से मण्डित जयपुरपुरी के समक्ष अलकापुरी भी इसकी छोटी बहिन प्रतीत होती है–

सुदृढ–सुदृश्य–सुविशाल–शाल–सम्वलिता
गोपुर–पिनद्धपुर–महिम–महीयसी।
रुचिरचतुष्पटीविभागभिन्नराजपथा,
राजतिसमन्तात्सौधराजिरतनीयसी।
मञ्जुनाथतुंगतमदेवालयदन्तुरिता,
शोभावैभवेऽस्याः पुनरलका कनीयसी।
मानमेदिनीन्द्रमणिशासनसमृद्धसुखा,
जयनगरीयं सर्वनगरीगरीयसी॥[1]

आगे चलकर वे इस नगरी की पेरिस से तुलना करते हैं। राजस्थान मरुप्रदेश होगा पर जयपुर पर उसका प्रभाव नहीं। वहाँ तो बाग–बगीचों की चतुर्दिक् व्यापिनी हरीतिमा से मण्डित यह नगरी नन्दनवनी की प्रतीति कराती है–

प्रावृषि प्रसारितजलवेणीमञ्जुलोपवनी,
नन्दनवनीव दिव्यनेत्रैः परिपेयासौ।
भारतीय 'पेरिस' पुरीव परिलोक्य भृशं
जयपुरपुरी मे भूरिभाग्यैरभिधेयाऽसौ।।

नव–नव उत्सवों से भव्य यह नगरी सौन्दर्य के कारण पेरिस की तरह दर्शनीय है और बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। [2]

अपार इस काव्य–जगत् में कवि ही स्रष्टा होता है, जैसा वह सर्ग निर्माण करना चाहता है वैसी ही वह सृष्टि कर लेता है; अतः, उसमें काव्यात्मकता का प्रामुख्य रहता है परन्तु उसकी कविताओं में से पद–पद पर उभरती हुई समसामयिक जीवन की बाँकी–झाँकी उसे ऐतिहासिकता का स्वरूप प्रदान करती है।

जयपुर वैभव के वर्ण्यविषय के आधार पर कतिपय विद्वानों ने इसे ऐतिहासिक काव्य स्वीकार किया है। जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन में डॉ० प्रभाकर शास्त्री ने इसे ऐतिहासिक काव्य मानते हुए लिखा है– कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री की प्रमुख एवं उल्लेखनीय रचना 'जयपुरवैभवम्' ऐतिहासिक काव्य के अन्तर्गत परिगणित की गयी है। [3] परन्तु उनका यह कथन चिन्तन का विषय है। कारण इतिहास में किसी घटना अथवा विषय का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इतिहास अतीत के समस्त उत्थान–पतन, सफलता– असफलता उपलब्धि एवं संघर्ष का विवरण होता है।

अतः इतिहास का प्रयोजन मनुष्य के गत अनुभवों तथा क्रियाकलापों का निरीक्षण–परीक्षण है।[4] दूसरी ओर मुक्तक में किसी भी विषय, घटना, दृश्य, चित्र आदि को कवि अपनी दृष्टि से देखता है और उसे अपने भाव वं भाषा में ढालकर काव्यात्मक रूप प्रदान करता है। इस आधार पर मुक्तक रचना एक ऐतिहासिक काव्य नहीं हो सकती। परन्तु वह रचना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय अवश्य हो सकती है। जयपुर वैभव में कवि ने अपने समकालीन समाज के राजाओं के तथा प्रशासन के सम्बन्ध में कुछ ऐसे तथ्य प्रकट किये हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से इतिहासकारों के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

जयपुर–वैभव के रचनाकार का यह उद्देश्य रहा है कि वह अपने समकालीन जयपुर के वैभव का चित्रण करे, यश एवं प्रशस्ति–गान के माध्यम से राजाओं के सुशासन की समृद्धि को उपस्थापित कर सके। वह वैभव चाहे जयपुर के प्रासादों, उद्यानों, दर्शनीय स्थलों के वर्णन से प्रकट हो, तत्कालीन राजाओं के यशोगान से समुल्लसित हो, जयपुर के तत्कालीन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों, विद्वानों आदि के वर्णन से प्रकट होता हो।

जयपुर वैभव को किसी विशेष विषय से सम्बद्ध न करते हुए उसे इतिहास, राजप्रशस्ति, जीवनचरित एवं जयपुर वीथियों का काव्यात्मक एवं चित्रात्मक समन्वय कहा जा सकता है। यह तथ्य जयपुर वैभव की भूमिका में राजगुरु गोपीनाथ द्राविड़ के कथन से स्पष्ट है। उन्होंने लिखा है– यह कृति इतिहास, काव्य, चित्रात्मक–वर्णन तथा जीवन–चरित्र का एक अनूठा समन्वय है।

"This work is a harmonious combination of history, poetry, topography and Diography" 5

जयपुर वैभव अपने युग के समाज का दर्पण है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन जयपुर की संस्कृति, रीति–रिवाज, समाज की समस्याएँ, आदर्शों के परस्पर संघर्ष अपने सहज रूप में प्रतिबिम्बित हुए हैं जिन्हें देखकर उस युग की प्रत्यक्षानुभूति सी होने लगती है। प्रकृत–ग्रन्थ की उत्सववीथी एवं उद्यानवीथी जयपुर नगर के जनमानस की उत्सव–प्रियता, प्रकृति के प्रति प्रेम प्रवणता तथा धर्मप्रियता की सहज अभिव्यक्ति करती है। वहीं जयपुर की उत्सवप्रिय एवं आमोद–प्रमोद प्रधान संस्कृति की भी परिचायिका है।

जयपुर वैभव में कवि ने अपने समय में होने वाले उत्सवों एवं मेलों का सुरम्य वर्णन किया है। वैसे ज़यपुर में प्रत्येक ऋतु के अनुकूल उत्सव आयोजित किये जाते रहे हैं। पर होलिकोत्सव जनसमूह में अनुराग विकीर्ण करता हुआ बसन्त ऋतु का लोकप्रिय समारोह है। रुचि के अनुसार इस पर्व पर प्रत्येक व्यक्ति उल्लास एवं उमंग से ओत–प्रोत दृष्टिगोचर होता है। होली के दिन स्त्री–पुरुष मदमत्त होकर एक दूसरे पर रंगनलिकाओं से रंग फेंकते, मधुर फाग गाते हुए होली का आनन्द लेते नयन–पथ में

अवतरित होते हैं। राधा और कृष्ण की रंग–होलिका का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने होलिका–महोत्सव की रम्य छटा प्रस्तुत की है–

रङ्गमयी प्रेयसी विराजते विहारस्थले
रङ्गमयीप्रेयसोऽपि मूर्तिरुपभासते,
रङ्गमयी गोपगोपिकानां मञ्जुमण्डलीयं,
सरससारङ्गमयी गीतिर्मनो गाहते।
रङ्गमयी भूमिर्ब्रजवीथिरपि रङ्गमयी,
रङ्गमयी मन्ये मनोवृत्तिः प्रतिभासते
होलामद्य रङ्गमयीमाप्य तस्याः सङ्गवशाद्
रङ्गमयी सेयं सर्वजगती विराजते।। [6]

विहार भवन में रङ्गीली प्रेयसी उपस्थित है, प्रियतम की मूर्त्ति भी रंग में सराबोर है। सब भूमि रंगमयी है, मनोवृत्ति भी रंगीली है, समस्त जगत् रङ्गमय बना हुआ है।

जयपुर में गणगौरी मेला एवं श्रावणी तीज का मेला सर्वाधिक प्रसिद्ध है। चैत्र शुक्ला तृतीया को स्त्रियाँ पति–प्रीत्यर्थ और कन्याएँ सम्प्रति प्राप्त्यर्थ गौरी का पूजन करती हैं। पुरवनिताएँ हृदयावर्जक परिधानों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर सायंकाल नगर के राजमार्गों पर गणगौर की सवारी देखने उमड़ पड़ती थीं–

सुन्दरसुरङ्गवेषभूषितसुचारुतनु,
नागरनितम्बिनीनिरुद्धभूरिभवना।
प्रान्तर–सुमित–सहकार–तरु गन्धवती,
दीपित–मनोज वह्नि बासन्तिक पवना।
प्रतिभावनाऽऽदृत–मनोज्ञधृतपूरभरा,
सुखितसंयोगिचित्त–चिन्तालवलवना
गौरीगणवन्द्यगणगौरी गुणगौरवतो,
जयनगरीह भाति सर्वसौख्यसवना।। [7]

हाथी और घोड़ों की दौड़ का आयोजन किया जाता था जिसे पुरवासी बड़े आनन्द और कुतूहल से देखा करते थे।

जयपुर के दर्शनीय स्थलों में स्वर्गशूली (सरगासूली) प्रसिद्ध स्थली है। जयपुर आने वाले यात्रियों को यह हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। कञ्चन–कलश युक्त सुन्दर शिखर वाली उच्चता में तारापथ का स्पर्श करने वाली है।

तुङ्गतया तारापथमेव परिरभ्य स्थिता,
काञ्चनकलशचारुचूडावत राजते।
मेरुशिखराणामपि धूलीकृत दर्पभरा,
सेयं स्वर्गशूली स्वर्गशूलीव प्रकाशते। [8]

स्वर्ग के हृदय में शूली के समान व्यथित करने वाली यह स्वर्गशूली जयपुर नगर की रम्यता में चार चाँद लगा देती है। कवि ने नगरवीथी में नगर के प्रसिद्ध सभी स्थानों को समाविष्ट कर इसे ऐतिहासिक नगरी की प्रतिष्ठा प्रदान की है। आज विकास के नाम पर पद–पद पर परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं पर नगर का निर्माण–कौशल नागरिक वीथी में विशिष्टजनचत्वर के अन्तर्गत जयपुर नगर के प्रसिद्ध एवं गुणगण–मण्डित व्यक्तियों का वर्णन किया गया है। राजगुरु गोपीनाथ सम्राट् के चरित्र–चित्रण में कवि ने तत्कालीन राजगुरु के गौरव को प्रकाशित किया है।

नव्यन्यायशास्त्र यो हि शास्त्रीति प्रकर्षवहो,
ज्ञाने काव्यशास्त्रीयेऽपि योऽसावभिभासते।
प्रौढे वयसीह राजगौरवप्रमोदं प्राप्य
वीणया विनोदं वहन् वेलां यो विगाहते।
मानभूमिशक्राश्रितमान्यमहद् वृन्दे वृह–
च्चक्राकारमुष्णीषं दधानोऽसौ सुखायते।
विवुधगणेषु यस्य वृत्तिरतिनम्रा भाति,
राजगुरु गोपीनाथसम्राडेष राजते।।[9]

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथशास्त्री ने जयपुर के समस्त सभ्य नागरिकों का उनके स्वभावचित्रण के साथ जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह वस्तुतः तथ्यपरक है। जन–साधारण में प्रचलित आचार–विचार किसी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के परिचायक होते हैं और सुसंस्कृत व्यक्ति के मानदण्ड भी। जयपुर वैभव से स्पष्ट है कि उस काल में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, शिष्टाचार के मापदण्ड परिवर्तित होने लगे थे। पति के मित्रों से स्त्रियाँ करमर्दन करने लगी थीं। गोविन्द वैभव में कवि ने कहा है–

पत्नी प्रियतममाप्य वन्दनं वचसा कुरुते।
पति सुहृत्सु संयत्सु करोन्मर्दनमातनुते।।[10]

रेल या जलयान यात्रा से पूर्व यात्रा शान्ति करवाने की प्रथा प्रचलित थी। राजा माधवसिंह ने रेल या जलयान से यात्रा के पूर्व शान्ति करवाते थे–

धूमजलयानादौ च शान्तिः पूर्वमीक्षिता।[11]

सौभाग्यशाली स्त्रियों के द्वारा वट के चारों ओर सूत्र के लपेटने से सौभाग्य वृद्धि मानी जाती थी। (ज. वै. 34,117)

जयपुर वैभव में राजनीतिक उतार–चढ़ावों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। स्थान–स्थान पर स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु आन्दोलनों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। स्वायत्त शासन के लिये प्रजामण्डलों का निर्माण किया गया था।

सम्प्रति विशिष्टराष्ट्रान्तरे प्रजातन्त्रपरिभासनात्।।[12]

शताब्दियों से परतन्त्रता–पाश में आबद्ध राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ, भारत–पाक विभाजन हुआ।

इस प्रकार प्रकृत–ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि शिरोमणि श्री भट्ट मथुरानाथ जी ने अपने समय के इतिवृत्त का काव्यशैली से यथावत् चित्रण किया है। जयपुर से सम्बद्ध कोई भी अंश ऐसा नहीं है जो उनकी लेखनी से अस्पृष्ट रह गया हो। तत्कालीन राजा महाराजाओं की उदारातिशयता कवि की लेखनी से पद–पद पर निरूपित की गयी है।

कविह्रदय से प्रसूत प्रकृत–ग्रन्थ रत्न में काव्य–सौन्दर्य तो अपरिमित है ही वह यहाँ चर्चा का विषय नहीं परन्तु कवि की ऐतिहासिक दृष्टि कितनी सूक्ष्म एवं व्यापक है, इसका दिग्दर्शन इस ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है। काव्यानन्द का उद्देश्य तो ब्रह्मानन्द की उपलब्धि है, जिसकी इस ग्रन्थ में कहीं न्यूनता नहीं परन्तु ऐतिहासिकता के समावेश ने इसकी उपयोगिता एवं उपादेयता को द्विगुणित एवं चतुर्गुणित कर दिया है। यह विद्वानों के शोध का विषय हैं।

निदेशक, राय बहादुर चम्पालाल प्राच्य शोध संस्थान
डी–1, पं॰ देवीशंकर तिवारी मार्ग, तिलक नगर, जयपुर

: संदर्भ :

1. जयपुर वैभव– नगर वीथी 2
2. जयपुर वैभव– नगर वीथी 2,3
3. जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन– पृष्ठ 82
4. अनुसन्धान और प्रक्रिया– डॉ. ताराचन्द, पृष्ठ 164
5. जयपुर वैभवम्– भूमिका, पृष्ठ 5
6. जयपुर वैभव–उत्सव वीथी– 17
7. जयपुर वैभव– उत्सव वीथी– 28
8. जयपुर वैभव–नगर वीथी–22
9. जयपुर वैभव– नागरिक वीथी–2
10. गोविन्द वैभव– नागरिक वीथी–90, 83
11. जयपुर वैभव–राजवीथी–17
12. जयपुर वैभव– नागरिक वीथी, पृ. 230 छ

खण्ड - चतुर्थ

हर्ष शिलालेख के ऐतिहासिक विवरण और संकेत

डॉ॰ रतनलाल मिश्र

पृथ्वीराजविजय काव्य चौहानों पर अधिकृत रूप से प्रकाश डालता है। इसमें दिये गये ऐतिहासिक तथ्य अन्य सूत्रों से प्राप्त तथ्यों से पूर्णतया समानता रखते हैं। प्रारंभ के अनेक चौहान शासकों के वृत्त को यह संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करता है। अतिशयोक्ति एवं पूर्वाग्रह से सर्वथा मुक्त यह एक प्रामाणिक वृत्त है जो संस्कृत भाषा में निबद्ध एक अनमोल ऐतिहासिक काव्य है।

पृथ्वीराजविजय की ही तरह हर्षशिलालेख भी चौहानवंश पर समुचित प्रकाश डालने वाला संस्कृत भाषा में निबद्ध एक छोटा सा मनोहर काव्य ही है। इस शिलालेख ने सर्वप्रथम चौहानों की अतीव प्रामाणिक वंशावली उपस्थित की है जो पृथ्वीराजविजय एवं बिजौलिया शिलालेख से समानता रखती है। हर्ष शिलालेख की प्राप्ति के पश्चात् ही अप्रामाणिक एवं काल्पनिक कथाओं द्वारा समुत्थित तिमिर पूरी तरह ध्वस्त हुआ। अतीव ललित संस्कृत भाषा में निबद्ध यह लघुकाव्य चौहानों पर ऐसी सूचनायें प्रदान करता है जो अन्यत्र अप्राप्य हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसे संकेत–सूत्र मिलते हैं जिनसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रारंभिक चौहान शासकों पर यद्यपि विस्तृत एवं सघन शोध हुई है पर आज भी उनके बारे में अनेक प्रामाणिक बातें लोगों के सामने नहीं हैं। कई बार जातीयता का संमोह, धर्म संप्रदाय का व्यामोह और कहीं–कहीं क्षेत्रीय भावनाओं ने ऐतिहासिक वृत्त की उज्ज्वलता को धूमिल करने का प्रयास किया है। कई बार प्रशस्तियों के द्वारा इस प्रकार का वाक्जाल फैलाया गया है कि सत्य पूरी तरह आवृत्त होकर रह गया है।

हर्ष शिलालेख हर्ष–पर्वत पर बने मंदिर के भग्नावशेषों के बीच खोजा गया था। यह कलापूर्ण मंदिर अज्ञात कारणों से भूमिसात् हो गया था। शिलालेख भी मलबे के ढेर में दब गया था। हर्ष–पर्वत शेखावटी के प्रसिद्ध नगर सीकर से 7 मील दक्षिण में स्थित है। हर्ष शिलालेख की खोज डा॰ जी॰ ई॰ रैंकिन और सरजेन्ट ई॰ डीन ने 1834 ई॰ में की थी। इस शिलालेख की छाप रायल एशियाटिक सोसायटी को भेजी गयी जहाँ डाक्टर मिल ने डा॰ किटोर्ट द्वारा तैयार किये गये लिथोग्राफ के आधार पर इसका संपादन किया। यह उस समय रायल एशियाटिक सोसायटी के जरनल में प्रकाशित हुआ था।

आगे चलकर जयपुर के लाला रामबक्स द्वारा ली गयी छाप के आधार पर इसका संपादन किया गया। यह संपादन डा॰ बर्डोस की सहायता से प्रो॰ कीलहोर्न ने किया। इस संपादन के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि अस्पष्ट लिथोग्राफ के कारण डा॰ मिल लेख को ठीक तरह से नहीं पढ़ पाये थे। उनके पाठ और अर्थ में स्थान–स्थान पर कमियाँ रह गयी

हैं। डा॰ कीलहोर्न का पाठ और अर्थ पहले से ठीक है पर यह भी कुछ विसंगतियाँ लिये हुये हैं।

यह शिलालेख काले पत्थर पर खुदा हुआ है जिसकी मोटाई 3–1/2 इंच है। यह तीन फीट वर्गाकार में है। लेख में कुल 40 पंक्तियाँ हैं। लिखित भाग 2 फीट 11 इंच की चौड़ाई में है तथा 2 फीट 10 इंच की लम्बाई में है। अक्षरों का मान 7/16 इंच से 3/4 इंच है। शीर्ष भाग पर सबसे बड़े अक्षर हैं पर आगे चलकर अक्षरों का स्वरूप छोटा होता चला गया है। प्रायः 12 अक्षर अवाच्य हो गये हैं।

यह लेख उत्तरी भारत में प्रचलित तत्कालीन देवनागरी लिपि में है। इसकी भाषा संस्कृत है। प्रशस्ति की रचना धीरनाग ने की है। कुछ शब्दों का प्रयोग परम्परा से हटकर किया गया है। प्रथम 12 छन्दों में शिव के माहात्म्य का वर्णन है तथा श्लोक 13 से 27 तक चौहान नरेशों की कुल परम्परा दी गयी है।

चौहान नरेशों के वंश के संबंध में बिजौलिया शिलालेख एशियाटिक सोसायटी के जरनल में प्रकाशित हुआ था। हर्ष मन्दिर सं॰ 1013 में बनकर तैयार हुआ था। इसके निर्माता अल्लट की मृत्यु 1027 विक्रमी में हुई थी जब सूर्य सिंह राशि में था। पद्य भाग के साथ–साथ उन गाँवों की सूचीं भी दी गयी है जो आषाढ़ सुदि 15, 1030 विक्रमी तक विभिन्न व्यक्तियों द्वारा मंदिर को चढ़ाये गये थे।

शिलालेख गणेशजी की स्तुति से प्रारंभ होता है–

सर्वविघ्नशमनं सुराच्चिर्तं पूर्वमेव शिवयोस्तनूद्भवम्।
भुक्तिमुक्तिपरमार्थसिद्धिदं तं नमामि वरदं गजाननम्।।

इस शिलालेख के रचयिता धीरनाग ने जिस ललित और मधुर भाषा का प्रयोग किया है वह किसी भी उत्कृष्ट काव्य की भाषा से टक्कर ले सकती है। यह एक विडम्बना ही है कि संस्कृत के लघु काव्यों के प्रणेताओं के नामों का उल्लेख बराबर इतिहास ग्रन्थों में मिलता है पर सुन्दर शिलालेखीय काव्यों, प्रशस्तियों के रचयिता प्रायः दृष्टि से ओझल ही रहे हैं। एक और श्लोक देखिये :–

पादन्यासावनुन्ना नमति वसुमती शेषभोगावलग्ना।
बाहौत्क्षेपैः...क्कं चन्द्रैः
भिन्नावस्थं समस्तं भवतीह भुवनं यस्य नृत्ते प्रवृत्ते।
स श्रीहर्षाभिधानो जयति पशुपतिर्दत्तविश्वानुकंपः

x x x

एतत् स्वर्णाऽ कांति प्रवरतममहामण्डपाभोगमद्रम्।
प्रांतप्रासादमाला विरचित विकटा पाण्डुपुत्राभिरामम्।
मेरोः शृंगोपमानं सुघटितवृषस्तोरणद्वाररम्यम्।
नाना सद्भोगयुक्तं जयति भगवतो हर्षदेवस्य हर्म्यम्।।

हर्ष शिलालेख गूवक से प्रारंभ होता है। वासुदेव और गूवक के बीच के नरेशों के नाम इसमें नहीं दिये गये हैं। इसका कारण तो स्पष्ट नहीं है पर शाकंभरी प्रदेश में संभवतः गूवक ही प्रथम शासक था। शिलालेख में नरेशों के वृत्त के साथ—साथ उनकी उपलब्धियों का भी विवेचन आता है जिनमें इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण सूत्र प्राप्त होते हैं। गूवक के संबंध में शिलालेख में 'श्रीमन्नागाद्यलोकप्रवर नृपसमालब्धवीरप्रतिष्ठः' पंक्ति आती है जिससे ज्ञात होता है कि वह प्रसिद्ध प्रतिहार सम्राट् नागभट्ट द्वितीय का वीर सरदार था। इस संबंध में श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का यह कथन कि वह स्वतंत्र नरेश था, स्वीकार्य नहीं है।

हर्ष—शिलालेख के इस परिचयात्मक संक्षिप्त उल्लेख के पश्चात् उन संकेतों का विवरण उपस्थित करना समीचीन रहेगा जो शिलालेख में यत्र—तत्र उपलब्ध होते हैं तथा जिनके बारे में कुछ विसंगतियाँ इतिहास जगत् में आज भी उपस्थित हैं। कई बार विद्वानों ने इन संकेतों का विशदीकरण करते हुये ऐसे उल्लेख किये हैं जिनसे भ्रांतियाँ पैदा हुई हैं तथा वास्तविक तथ्य ओझल रहे हैं।

चौहान शासकों की विशेषकर प्रारंभिक चौहान शासकों की उपलब्धियों का वर्णन पृथ्वीराज विजय संक्षिप्त रूप से करता है पर अनेक तथ्य तिरोहित ही रहे हैं। हर्ष शिलालेख इन खोयी हुई कड़ियों को जोड़ने का प्रयत्न करता है। हर्ष शिलालेख के संपादकों ने दूसरा संपादन करते हुए कई जगह ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं जो न्यायोचित एवं तथ्यपूर्ण नहीं है। खेद की बात है कि पूर्ववर्ती के इस प्रकार के कथनों को परवर्ती या समकालीन लेखकों ने देवसत्य मानकर स्वीकार कर लिया। इस बात का प्रयत्न नहीं किया गया कि क्या वस्तुतः शिलालेखीय श्लोकों से ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

हर्ष शिलालेख में अनेक चौहान नरेशों के वीरकृत्यों का बखान किया गया है। इस शिलालेख में यद्यपि सिंहराज को "श्रीसिंहराज" ही कहा गया है पर अन्यत्र उसे "श्रीमहाराजा धिराज" कहा गया है। जब श्री सिंहराज ने अनेक लोगों को कैद में डाल दिया तो इनको मुक्त कराने के लिये स्वयं प्रतिहार नरेश आये थे। इन दो बातों को लेकर कहा गया है कि सिंहराज स्वतंत्र शासक थे और उन्होंने प्रतिहारों की दासता का जूआ उतार फेंका था। सिंहराज द्वारा महाराजाधिराज की पदवी धारण करना किसी विशेष स्थिति का सूचक नहीं हैं। यह प्रशस्तिकार की प्रशस्ति मात्र है। अगर यह बात ठीक होती तो विग्रहराज को भी महाराजाधिराज कहा जाता पर हर्ष—शिलालेख उसे श्री विग्रहराज ही कहता है। प्रतिहार नरेश का सिंहराज के घर आना भी हीनता का सूचक नहीं है। जिन्हें कैद किया गया था वे भी चौहानों की तरह प्रतिहारों के सामन्त थे। ऐसी अवस्था में प्रतिहार नरेश (महीपाल या दूसरा) की उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। श्लोक है—

हत्वा तोमरनायकं सलवणं सैन्याधिपत्योद्धतम्।
युद्धे येन नरेश्वराः प्रतिदिशं निन्नाशिता जिष्णुना।।
कारावेश्मनि भूरयश्च विधृतास्तावद्धि यावद्गृहे।
तानमुक्त्येर्थ ? समागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयं।।

यहाँ प्रतिहार नरेश का आना तथा उसे भूचक्रवर्ती कहा जाना उसकी सबलता का ही द्योतक है, किसी कमजोरी का नहीं।

इस संबंध में एक और बात कही गयी है जिसका आधार भी हर्ष शिलालेख के श्लोकों को ही बनाया गया है। अनेक विद्वानों का मानना है कि सिंहराज का अन्त दुखभरा था। संभवतः अपने शत्रुओं के बलशाली संघ द्वारा जिसमें प्रतिहार नरेश स्वयं भी सम्मिलित थे, सिंहराज का अन्त हुआ। डा॰ भंडारकर का भी यह मत है कि चौहानों ने इस समय अपना कुछ भू–भाग खो दिया था। जिन श्लोकों के आधार पर यह बात कही गयी है उन्हें उद्धृत किया जा रहा है–

श्रीमान्विग्रहराजोभूत् तत्सुतो वासवोपमः।
वंशलक्ष्मीर्जयश्रीश्च येनेते विधुरोधृते।।
श्रीसिंहराजरहिता किल चिन्तयंति भीतेव संप्रति विभुर्नु को ममेति।
येनाश्चश्व बाहुयुगले चिरसन्निवास संधीरतेति ददतां निजराज्यलक्ष्मी:।।

इन श्लोकों के आधार पर सिंहराज के अन्त को दुःख भरा बताना उचित नहीं लगता है। पिता के मरने पर पुत्र गद्दी का अधिकारी होता है। इस सामान्य घटना का यह आलंकारिक उल्लेख मात्र है। इससे युद्ध क्षेत्र में सिंहराज की मृत्यु की बात सामने नहीं आती। मगर सिंहराज युद्ध में लड़ते हुए मर जाता तो यह बात तो एक गर्व की बात होती जिसका उल्लेख प्रशस्तिकार गर्वपूर्वक करता। इस संबंध में हर्ष का बँसखेड़ा दानपत्र देखा जा सकता है जहाँ राज्यवर्द्धन के वीर कृत्यों के साथ उसकी मृत्यु का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

राजानोयुधि, दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः।
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वेऽपि सुसंयताः।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधा कृत्वा प्रजानां प्रियः
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः।।

उक्त श्लोक सिंहराज के दुःखान्त निधन का संकेत करने की अपेक्षा एक ऐसी बात की ओर संकेत करता है जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान कम आकर्षित हुआ है। यह बात सुज्ञात है कि चौहानों में ज्येष्ठाधिकार सुनिश्चित नहीं था। अनेक बार शासक के पुत्र की अपेक्षा भाई ही गद्दी पर अधिक बैठते थे। जब सिंहराज की मृत्यु–प्राकृतिक मृत्यु हो गयी तो उसके छोटे भाई लक्ष्मण ने गद्दी पर अपना दावा पेश किया। कुछ समय तक संघर्ष चलता रहा। उक्त श्लोक उसी समय की स्थिति का द्योतन करते हैं। वंशलक्ष्मी भटकती हुई फिर रही थी कि मेरा प्रभु अब कौन है। इस बात का प्रमाण उपलब्ध है। चौहानों के उल्लेखों में लक्ष्मण का नाम नहीं है जबकि दूसरे कुल के लोगों के नाम बराबर मिलते हैं। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब कुछ लोगों के नाम वंशावली से उनके दृष्कृत्यों के कारण हटा दिये गये हैं। लक्ष्मण के साथ भी यही हुआ है। इस संघर्ष में दुर्लभराज, वत्सराज आदि ने विग्रहराज की सहायता की। विग्रहराज के भाई का नाम तो अतीव सम्मानपूर्वक मुख्य प्रशस्ति में भी आया है।

हमें सिंहराज की सही मृत्यु तिथि आज तक ज्ञात नहीं है। उसका थांवला अभिलेख में उल्लेख है। यह लेख विक्रमी 1013 का है। सिंहराज ने हर्षमंदिर पूर्ण होने पर उस पर स्वर्ण–कलश चढ़ाये एवं गांव दान में दिये। मंदिर 1013 विक्रमी में पूर्ण हुआ, अतः यह कार्य भी इसके कुछ समय बाद ही हुआ होगा। सिंहराज ने अल्लट को बड़ी धन राशि मंदिर–निर्माण के लिये दी थी। निर्माण में भी कुछ समय लगा। अल्लट की मृत्यु 1027 विक्रमी में हुई थी। इन सब बातों को देखकर सिंहराज की मृत्युं 1022–24 के मध्य रखी जा सकती है। 1030 में जब शिलालेख लगाया गया तो विग्रहराज राज कर रहा था।

इस युद्ध में परास्त होकर लक्ष्मण गोडवाड की ओर नाडोल में चला गया और उस क्षेत्र में उसने चौहान राज्य का संस्थापन किया। यह कार्य भी इसी समय हुआ। नाडोल में नीलकण्ठ महादेव के मंदिर में एक शिलालेख है जिस पर 1125 विक्रमी का उल्लेख है। उसका दूसरा तिथियुक्त उल्लेख विक्रमी 1039 का मिला है। यह उल्लेख केल्हण के सूरजपोल लेख में आता है। डा॰ दशरथ शर्मा का विचार है कि 1125 की जगह शुद्ध संवत् 1025 होना चाहिए। यही वह समय है जब उसके कुछ समय पूर्व लक्ष्मण मुख्य शाखा से अलग हो गया था।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में हम जब हर्ष–शिलालेख के उक्त दोनों श्लोकों को पढ़ते हैं तो स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। डा॰ एच॰ सी॰ राय की यह मान्यता ठीक प्रतीत नहीं होती कि लक्ष्मण सिंहराज के सिंहासनस्थ होने के समय उम्मीदवार बना था। यह बात कालक्रम से ठीक नहीं बैठती। जिस सुन्डा पहाड़ी अभिलेख के आधार पर उन्होंने यह संभावना प्रकट की है उसमें इसका जरा भी संकेत नहीं है।

हर्ष–शिलालेख में एक श्लोक आता है जिसके अर्थ पर विवाद है। इसके साथ–साथ इस श्लोक से जो आशय निकाला गया है, वह भी विवादास्पद है। यह वाक्पतिराज के समय की बात है। प्रतिहार नरेश (संभवतः महेन्दपाल या महीपाल) की ओर से क्ष्मापाल तन्त्रपाल अनंतप्रदेश में वाक्पतिराज से मिलने आता है। विद्वानों ने तंत्रपाल क्ष्मापाल के बारे में विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। कुछ का विचार है कि यह अनंत प्रदेश के निकटस्थ प्रदेश का अधिपति था। डा॰ भंडारकर उसे एक राजकुमार मानते हैं, साथ ही नाम को व्यक्तिवाचक संज्ञा बताते हैं। डा॰ दशरथ शर्मा उसे प्रांतीय गवर्नर बताते हैं। इन विभिन्न प्रकार के मतों के कारण वास्तविक अर्थ और आशय ओझल ही बने रहते हैं।

तन्त्रपाल के वास्तविक अर्थ को जानने के लिये उस समय की प्रशासनिक पद्धति को अधिक गहराई से समझना होगा। विभिन्न पदों पर नियुक्त व्यक्ति सन्धि विग्राहक, अक्षपटलाधिकृत, महादण्डनायक, विषयपति, भौगिक, भोगपति और उपरिक आदि होते थे। इन विभिन्न पदों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था बड़ी विकसित स्थिति में थी।

प्रतिहार साम्राज्य इस समय धीरे–धीरे कमजोर हो रहा था तथा अधीनस्थ सरदारों में परस्पर झगड़ने और पड़ौसी की भूमि हड़पने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। सबसे अधिक चिंतनीय स्थिति यह थी कि सरदार लोग पुण्य अर्जित करने के लिये बड़े स्तर पर ब्राह्मणों या मंदिरों को

भूमिदान कर रहे थे। दसवीं शती में यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर थी। नियमानुसार अपने स्वामी की अनुमति बिना वे इस प्रकार का दान नहीं कर सकते थे। इस प्रकार की अनुमति प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सत्ता एक अधिकारी नियुक्त करती थी जिसे तन्त्रपाल कहते थे। प्रसिद्ध विद्वान् यू.एन. घोषाल के अनुसार यह अधिकारी ब्रिटिशकाल के पोलिटिकिल एजेन्ट की तरह होता था। तन्त्रपाल समय–समय पर जाँच करने जाता था। श्लोक में वर्णित घटना भी इसी तरह की है। पद के अनुकूल उसके पास थोड़ी बहुत सेना भी होती थी। लड़ना उसका उद्देश्य नहीं था। इतने उल्लेख के बाद संबंधित श्लोक उद्धृत किया जा रहा है:–

येनादैन्यं स्वसैन्यं कथमपि दधता वाजिवल्गा मुमुक्षुः।
प्रागेवत्रासितेभः सरसिक (रि) रट डिंडिमोर्डि (जे)
वन्यक्ष्मा भर्तुराज्ञा समदमभि (ब) हन्नागतो नंत पार्श्वं।
क्ष्मापालस्तंत्रपालो दिशि दिशि गमितो ह्व विषण्णः प्रसण्णः।।

डा. कीलहोर्न एवं डा. भंडारकर ने इस श्लोक के परस्पर विरोधी अर्थ किये हैं। डा. भंडारकर के अर्थ का संक्षिप्त रूप निम्नप्रकार से है। वाक्पतिराज ने तंत्रपाल को पहले तंग किया क्योंकि वह अभिमानपूर्वक अनंत प्रदेश की ओर आ रहा था। उसके पास स्वामी का संदेश था। वाक्पति उससे मिले नहीं, उसके हाथियों को डराया, पर जब उसका गर्व विखण्डित हो गया तो बाद में उससे मिलकर अभ्यर्थना की। डा. दशरथ शर्मा का सारांश था कि तन्त्रपालः प्रसन्नः सन् आगतः ह्वी विषण्णः गमितः। श्लोक को ध्यान से देखने से ज्ञात होता है कि कवि ने प्रसण्णः और विषण्णः इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में विशेष रूप से दुखी होकर किया है। व्याकरण की दृष्टि से यद्यपि यह दोषपूर्ण है। दोनों में धातु षद् विषादे है। इस प्रकार का उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार देखकर तन्त्रपाल लज्जित होकर विभिन्न दिशाओं में दुःखपूर्वक घूमता रहा। यही इसका समुचित अर्थ प्रतीत होता है।

इस घटना को भी इस बात का आधार बनाया गया है कि वाक्पतिराज ने प्रतिहारों से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। सारी स्थितियों को ध्यान में रखकर देखने से यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। प्रतिहार अभी इतने कमजोर नहीं थे कि उसके सरदार टूट कर स्वतंत्र हो जावें। महीपाल और उसके पूर्व महेन्द्रपाल के समय में तो विजय का क्रम निरन्तर जारी रहा था।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक श्लोक दिया है जो कुलूत प्रदेश में प्रतिहार नरेश की विजय की बात कहता है।

दत्वा रुद्धगति खसाधिपतये देंवीं ध्रुवस्वामिनीं।
यस्मात् खंडितसाहसो निववृत्ते श्रीशर्मगुप्तोनृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गिरिगुहा कोणक्वणित किन्नरे।
गीयन्ते तव कार्तिकेय! नगरस्त्रीणां गणैः कीर्तयः।।

इस परिप्रेक्ष्य में चौहान राज वाक्पतिराज की स्वतंत्रता की बात कोरी कल्पना मात्र प्रतीत होती है।

हर्ष–शिलालेख वस्तुतः इस प्रकार का अभिलेख है जो चौहानों के साथ–साथ तंवरों और प्रतिहारों से उनके संबंध पर भी प्रकाश डालता है। अनेक शोधकार्यों का यह अभिलेख आधार रहा है। खेद की बात यह है कि अभी तक इसका सांगोपांग संपादन नहीं हुआ है। पाठ भी पूरी शुद्धता से नहीं पढ़ा गया है तथा अर्थ में भी स्पष्टता नहीं है। इससे निकाले गये कुछ निष्कर्षों के पुनर्निरीक्षण एवं पुनर्परीक्षण की महती आवश्यकता है।

44/62 किरणपथ, मानसरोवर, जयपुर, (राजस्थान)

पृथ्वीराज –महाकाव्यम् का संदेश

डॉ. (श्रीमती) मंजुला गहलोत

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् चौहान पृथ्वीराज तृतीय (वि.सं. 1223 से 1248 तक) के वैभव और पतन की परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि भारत के निर्माण के लिए इतिहास की भूलें शिक्षाप्रद होती हैं। इस संदर्भ में मंडोवर के प्रतिहार नरेश राजा बाउक के वि.सं. 894 (ई. सन् 837) के शिलालेख का यह श्लोक मननीय है :–

गुणाः पूर्वपुरुषाणां कीर्त्यन्ते तेन पण्डितैः ।
गुणाः कीर्तिर्न नश्यन्ति स्वर्गवासकरी यतः ।।

भूतकाल की उपलब्धियाँ और असफलताएँ हमें भविष्य के निर्माण के लिए मार्ग प्रदर्शन कर सकती हैं। इसी बिन्दु पर, मैं पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, महाकवि जयानक प्रणीत से कुछ ग्रहण करने के लिए प्रेरणा देना चाहती हूँ।

महाराजा पृथ्वीराज के समकालीन कश्मीर के पं. जयानक ने इस महाकाव्य की रचना की। इसकी एक मात्र प्रति ताड़पत्र पर लिखी स्वर्गीय जार्ज बूलर को कश्मीर प्रान्त से सन् 1876 में प्राप्त हुई जो अभी पूना के डेकन कॉलेज में संगृहीत है। इस काव्य पर जोनराज की टीका भी उपलब्ध है, जो इसी ताड़पत्र की प्रति में है। इस महाकाव्य का संपादन एवं प्रकाशन इतिहासज्ञ डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाा तथा पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने सन् 1941 में अजमेर से किया। इस महाकाव्य का रचनाकाल इसमें वर्णित घटनाओं के आधार पर वि.सं. 1248 के लगभग मानना समीचीन होगा। इस पर जोनराज की टीका लगभग वि.सं. 1507 में हुई। यह महाकाव्य अपने समय में बहुत प्रसिद्धि पा गया था क्योंकि इसके श्लोकों के उदाहरण 'अलंकारविमर्षिणी' टीका में उपलब्ध हैं जो राजानक जयरथ के द्वारा कृत राजानक रूय्यक द्वारा लिखित 'अलंकारसर्वस्व' टीका में है जिसमें स्पष्टतः पृथ्वीराजविजय का नामोल्लेख किया गया है।

पृथ्वीराजमहाकाव्य की खण्डित प्रति मिली है जिसमें केवल 12 सर्ग हैं जो अचानक पृथ्वीराज की विजय समारोह मनाने के अवसर पर समाप्त हो जाते हैं। इस महाकाव्य में पृथ्वीराज के पूर्वज व. उसके बाल्यकाल का विस्तृत वर्णन है। एकादश सर्ग में पृथ्वीराज के पूर्व जन्म की कथा भी दी है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि पृथ्वीराज को राम का अवतार उल्लेखित किया है।

इस महाकाव्य के उपलब्ध अंतिम द्वादश सर्ग में तिलोत्तमा का प्रसंग आता है। प्रसंग इस प्रकार से है कि– पृथ्वीराज चित्रशाला में भित्ति पर बने तिलोत्तमा के चित्र को देखकर इतना मोहित हो गया कि वह अपनी सुध भूलने लगा। पृथ्वीराज पर दया करके स्वयं तिलोत्तमा स्वर्ग से पृथ्वी पर उसकी चित्रसारी में आई, तो वह यथास्थिति को प्राप्त हुआ। जयानक कहता है–

क्व ललाम तिलोत्तमा दिवः प्रभुता च क्व मनुष्यमण्डले ।
पुरुषस्य नेदृशी घटनेयं पुरुषोत्तमं विना ।।

काव्य में तिलोत्तमा का यह प्रसंग दो बातों की ओर इंगित करता है; प्रथम तो यह कि पृथ्वीराज रासो के नाम से जो पोथा कई पाठ भेदों के साथ उपलब्ध है, में संयोगिता अपहरण की कथा है। परन्तु उस काल के अन्य हमीरमहाकाव्य, रंभामंजरी आदि ग्रंथों में संयोगिता न कथा नहीं है। स्वर्ग से उतरी तिलोत्तमा क्या पृथ्वीराज रासो में वर्णित स्वर्ग से उतरी पूर्व जन्म में रही रम्भा अप्सरा ही है? जो पृथ्वी पर संयोगिता बनकर आयी? सामग्री के अभाव में यह अवधारणा की जा सकती है कि पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की तिलोत्तमा का मिलन संयोगिता के अपहरण में समाया है।

तिलोत्तमा का यह प्रसंग एक अन्य बात भी कहता है कि जो राजा चित्र देखकर अपनी सुध–बुध खो जाए, उसका भविष्य सुदृढ़ नहीं है। संसार के सभी इतिहासकार मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि शारीरिक बल और पुरुषार्थ में भारतीय क्षत्रिय किसी से कम नहीं थे। इसकी पुष्टि में ग्रीक और यूरोपीय इतिहासकारों के कथन हैं। इतनी दृढ़ आधार भूमि होते हुए भी पृथ्वीराज की पराजय क्यों हुई ? यह एक उलझा हुआ प्रश्न है।

पृथ्वीराजविजय महाकाव्य, पृथ्वीराज के वैभव और विजय के तथ्यों से भरा है। यह एक समकालीन रचना है । यह प्रति अधूरी मिली है और आगे जो पृथ्वीराज का पतन हुआ उसके कारणों के खोजने का भार, आज के इतिहासकारों पर आ जाता है?

एक प्रबल कारण तो पृथ्वीराज का विलासीजीवन रहा तो दूसरा कारण राज्य प्रशासन को समयानुकूल नहीं चलाना है। जैन ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज ने कई बार पकड़कर छोड़ दिया। धर्मपरायण राजा मनु की पुरातन आज्ञा (स्मृति अध्याय 7/93) को अन्धभक्त की तरह वे शासक मानने लगे थे, कि –

नायुधं व्यसनं प्राप्तं नातीव परीक्षितम् (?)।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ।।

विषधर सर्प को डंक मारने के पश्चात् भी दया के नाम पर क्षमा दान करते रहे। इस राजनैतिक परिस्थिति में जो राज्य शासन के हेतु पृथ्वीराज का जो व्यवहार था, उससे तो यह सिद्ध होने लगा कि इस भारत भूमि में कौटिल्य विष्णुगुप्त चाणक्य का जन्म ही नहीं हुआ।

महाकवि भारवि ने अपनी कृति "किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही द्रौपदी के मुख से युधिष्ठिर को कहलवाया है – "कपटी मनुष्यों के साथ जो छल का व्यवहार नहीं करता, वह मूर्ख होता है और सदैव अपमान व तिरस्कार प्राप्त होता है। ऐसे मूर्ख मुनष्य को मायावी शत्रु तीखे तीर की तरह भेद देता है। सदैव अहित चाहने वाले तत्पर शत्रु से सतर्क एवं सावधान रहने हेतु समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्, असंवृतांगान् निशिता इवेषवाः ।।

क्या इतिहासकारों पर यह दायित्व नहीं है कि पृथ्वीराजविजय काव्य की खण्डित प्रति का शेष भाग जो वास्तव में पराजय की विषय वस्तु है , के कारणों पर विचारपूर्वक शोध करें। हम देश को बलशाली बनाने के सभी साधन जुटायेंगे पर कूटनीति के अभाव में तटस्थ रहने का झण्डा लेकर यदि खड़े रहे तो हमारा कोई साथी नहीं रहेगा। केवल औषधि देने से शरीर की व्याधियाँ नष्ट नहीं होवेंगी, यदि पथ्य पर ध्यान नहीं दिया जावेगा।

किमौषधं पथ्यातिगैः अपहतो महाव्याधिभिः ।

अन्त में, यह अन्तरंग बात कह दूँ जो एक प्रश्न के रूप में मेरे मस्तिष्क पर छायी है। यदि पृथ्वीराजविजय महाकाव्य का शेष पराजय महाकाव्य लिखा जाय तो हमें इतिहास से क्या शिक्षा मिलेगी? यह सुझाव तो वर्षों पूर्व पृथ्वीराज की मूर्त्ति के निर्माता ने उसके नीचे उत्कीर्ण कर दिया। नई दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मन्दिर के उद्यान में प्रवेश करते ही पृथ्वीराज की विशाल प्रस्तर मूर्त्ति खड़ी है, जिस पर उत्कीर्ण है –

जिसकी राजपूती शान व मान के उत्थान एवं पतन का लेखा जोखा एक ऐतिहासिक पाठ है।

मेड़ती गेट के अन्दर, जोधपुर

हम्मीर महाकाव्य : ऐतिहासिक दृष्टि से

डॉ॰ पुष्करदत्त शर्मा

काव्य पूर्णतः इतिहास नहीं होता और इतिहास में काव्यात्मकता होती ही नहीं। पर इतिहास की पूर्वपीठिका पर आधारित काव्य में कुछ ऐसे तथ्यों का सन्निधान हो सकता है, जो इतिहास के लुप्त हो जाने पर भी उसके पुनर्निर्माण के लिए सुपुष्ट प्रामाणिकता में सहायक हो सकते हैं। किन्तु काव्य–कल्पना सृष्टि में से तथ्यात्मकता का अन्वेषण भी वही इतिहासकार कर सकता है, जो काव्य–रसज्ञता एवं सहृदयता से सुसंपन्न हो, पूर्वाग्रहों से सर्वथा विमुक्त हो और जिसकी दृष्टि विदेशी इतिहासकारों द्वारा आरोपित प्रतिबद्धता से धूमिल न हो। वस्तुतः जो इतिहासज्ञ उदित सूर्य को देखकर भी अपनी विदेशी घड़ी से सूर्योदय के समय की पुष्टि करे और जो वर्षा में स्वयं आपादक्लिन्न होकर भी दूसरे दिन के अखबारों में छपी खबर से वर्षा होने की पुष्टि करना चाहे, उसके लिए तथ्यों का संभवतः उतना महत्त्व नहीं होता, जितना कि पुष्टि का। आधुनिक भारतीय इतिहासकारों में से अधिकांश इसी तरह की दृष्टि से समन्वित हैं। वे प्रत्येक संप्राप्त तथ्य की पुष्टि विदेशी इतिहास–ग्रन्थों के विवरण से करना चाहते हैं। यदि किसी विदेशी ने तथ्य को छिपाया हो, या उसे वह तथ्य उस समय अप्राप्त रहा हो तो भारतीय इतिहासकार भी उन तथ्यों को या तो कपोल कल्पना कहेगा या फिर उसे ऐसे संभावना मात्र कहेगा। भारतीय ऐतिहासिक महाकवियों का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि उनकी रचना में प्रयास–सुलभ तथ्यों के समायोजन का उचित श्रेय उन्हें नहीं मिलता।

हम्मीर महाकाव्य का प्रणेता नयचंद्र सूरि एक ऐसा ही काव्य–प्रणेता है, जिसे हम्मीर के संबंध में एक स्रोत होने पर भी समुचित श्रेय नहीं मिल पाया। भारतीय इतिहासकारों ने इस महाकाव्य में समाहित केवल उन्हीं तथ्यों को स्वीकृति दी है, जिनकी अल्पाधिक पुष्टि विदेशी विवरणों से हो सकी है। इस शोध–प्रबन्ध का उद्देश्य उपर्युक्त प्रतिबद्धता का निराकरण ही नहीं, अपितु उन ऐतिहासिक तथ्यों को संपुष्ट करना हैं, जिन्हें संभावना मात्र कहकर पूर्ण स्वीकृति से वंचित रक्खा गया है। हॉ, प्रस्तुत निबन्धकार का यह प्रयास रहेगा कि इस प्रशस्ति–काव्य में सन्निहित अतिरंजनाओं तथा कल्पनाओं को तथ्यपरकता से संयुक्त न करें।

सर्वप्रथम तो इस वंश–प्रशस्तिकाव्य में प्रदत्त ऐतिहासिक तथ्यों का श्रेणी–विभाजन करना उचित होगा, ताकि उनकी तथ्यात्मकता का क्रमशः विवेचन या विश्लेषण किया जा सके। ये श्रेणियां हैं :–

1. हम्मीर के पूर्व पुरुषों का नाम, समय एवं क्रिया–कलाप।
2. हम्मीर के पूर्वपुरुषों के क्रिया–कलापों से जुड़े समकालीन व्यक्तियों की ऐतिहासिकता और प्रामाणिक क्रिया–कलाप।
3. हम्मीर के जीवन से संबंधित घटनाओं की प्रमाण पुष्ट ऐतिहासिकता।

4. हम्मीर के जीवन से संबंधित घटनाओं की अपुष्ट या संभावित ऐतिहासिकता।
5. हम्मीर के जीवन से संबंधित घटनाओं की काल्पनिकता।

1. हम्मीर के पूर्वपुरुष

हम्मीर महाकाव्य के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में चाहमान या चौहान वंश के उद्भव तथा इस वंश के हम्मीर पूर्व राजाओं का वर्णन है। चौहान शब्द का उद्भव "चाहमान" से बताया गया है, क्योंकि नयचंद्र सूरि ने इसी शब्द का प्रयोग किया है जैसे–

"तदाख्ययाऽजायत चाहमानवंशस्त्रिलोकी विहितप्रशंसः" 1/25

इससे प्रतीत होता है कि महाकवि के समय चौहानों के लिए "चाहमान" का प्रयोग होता होगा, या फिर इन्होंने स्वयं इसका प्रवर्तन कर डाला। किंतु वस्तुतः भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से चौहान शब्द "चमूवान्" अथवा चतुर्हान का अपभ्रंश होना चाहिए, जिसमें से केवल 'म' तथा 'त्' का उच्चारण मुख–सुविधा के लिए लुप्त हो गया। यों भी चाहमान शब्द किसी प्रकार का तत्सम या तद्भव नहीं लगता। इस शब्द से 'चाहने' के आस–पास का अर्थ निकालना भी निरर्थक है, क्योंकि 'चाह' की व्युत्पत्ति भी "इच्छा" से हुई है। अतः चौहान का मूल रूप चतुर्हान (चार प्रकार का बल) चमूवान ही स्वीकरणीय है। इससे उस जाति या सैनिक–समुदाय का संकेत होता है, जिसे किसी भी शासक द्वारा आक्रमण या रक्षा हेतु आमंत्रित किया जाता था। हाँ! इस आमंत्रण के साथ एक वांछित राशि अवश्य ही प्रदेय होती थी।

2. महाकवि ने 'चाहमान' वंश की उत्पत्ति सूर्य से मानी है। दीक्षित वासुदेव को इस वंश का प्रमुख पुरुष बताकर नरदेव, चंद्रराज, चक्री जयपाल, जयराज, सामंतसिंह, गूयक, नंदन, वप्रराज, हरिराज और सिंहराज के शौर्य का वर्णन किया है। जयपाल द्वारा 'अजयमेरु' अजमेर नगर की स्थापना को डॉ. दशरथ ने हर्षनाथ के शिलालेख, (वि.सं. 1030) बिजोल्या के शिलालेख (सं.1226) और पृथ्वीराजविजय महाकाव्य के आधार पर गलत माना है और अजयराज को 'अजयमेरु' का संस्थापक माना है, पर वास्तव में महाकवि ने कहा है:–

"तस्मादशोभिष्ट महिष्ठधामा महीमहेन्द्रोऽजयपाल नामा।"

इससे लगता है कि महाकवि ने विसर्ग सन्धि के कारण 'जयपाल' ही लिखा है, किंतु अवग्रह की दृष्टि से यह अजयपाल हो सकता है और फिर अजयमेरु का संस्थापक यही जयराज था।

यह स्वीकरणीय है कि उपर्युक्त शिलालेखों तथा "पृथ्वीराजकाव्य" में वर्णित वंशावली अधिक विस्तृत और संगत प्रतीत होती है। इस दृष्टि से नयचंद्र सूरि द्वारा प्रदत्त वंशावली कुछ अपूर्ण कही जा सकती है, पर सूचना की अप्राप्ति ही इसका कारण रही होगी। विग्रहराज नामक चार–चार चौहान नृपतियों की अवस्थिति भी घटना–विशेष की अतिरंजना में सहायक रही है।

अर्णोराज के चतुर्थ पुत्र पृथ्वीराज चौहान इतिहास में प्रसिद्ध हैं। "पृथ्वीराज रासो" का लेखक चंदवरदायी दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था या नहीं, इस पर सभी इतिहासकार सहमत नहीं हैं। वस्तुतः रचना में रचनाकार की स्वकीय उपस्थिति एक ऐसा विषय है, जिसके बारे में 'वाल्मीकि–रामायण' से लेकर आज तक संदेह किया जाता रहा है। सूरसिंहवंशप्रशस्ति के रचयिता ने सूरसिंह को ऐसा संबोधन दिया है, जिससे वह नृपति के सम्मुख खड़ा प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि कोई भी महाकवि, चाहे वह वाल्मीकि हो या अन्य, अपने धीरोदात्त नायक के शौर्य–औदार्य आदि गुणों के कारण पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है और फिर उसे वह नायक सम्मुख खड़ा सा दिखाई देता है। अतः प्रत्यक्ष संबोधन मात्र से कवि की समकालीनता सिद्ध नहीं हो जाती। उदाहरणतया श्री नयचंद्रसूरि भी हम्मीर को प्रत्यक्षवत् संबोधन करते हुए लिखते हैं–

"श्री हम्मीरनरेश्वर ! त्वयि निराधारा ह हा भारती" (4/8)

या रतिपाल को धिक्कार करते हुए संबोधन करते हैं–

"धिग् धिक् त्वां रतिपाल! याहि विलयं रे सूरवंशाधम !" (4/15)

इससे स्पष्ट है कि सम्मुख संबोधन ही समकालीनता को प्रमाणित नहीं करता। इससे कहा जा सकता है कि नयचंद्र सूरि, जिसने इस महाकाव्य की रचना संवत् 1440 के बाद की होगी, हम्मीर के समकालीन नहीं हो सकते, क्योंकि हम्मीर का निधन समय अलाउद्दीन खिलजी की समकालीनता के कारण श्रावण कृष्णा 6, रविवार संवत् 1358 निश्चित है। अमीर खुसरो ने भी केवल दो दिनों के अंतर से इस समय को स्वीकार किया है। अतः नयचंद्र सूरि हम्मीर के पचास–साठ वर्ष बाद ही हुए हैं।

इस महाकाव्य में पृथ्वीराज तृतीय से पूर्व के राजाओं से संबंधित घटनाओं के बारे में कुछ त्रुटियों की ओर डॉ. दशरथ शर्मा ने प्रकाश डाला है। अतः उनकी आवृत्ति करना आवश्यक है। वस्तुतः पृथ्वीराज तृतीय ही ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व रहा है और उसी का वंशज हम्मीर स्वयं में एक इतिहास–पुरुष सिद्ध हुआ। इस दृष्टि से पहले तो पृथ्वीराज तृतीय से संबंधित घटनाओं की ऐतिहासिकता को जांचना उचित होगा।

नयचंद्र सूरि के अनुसार राजा (अ) जयपाल के पौत्र तथा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने शक–जातीय सहाबदीन के साथ युद्ध करके उसे पराजित किया था फिर उसे दिव्योपम वस्त्र देकर मुक्त कर दिया था–

"शकाधिराजं विनियम्य सम्यगपूपुरत् स्वां विधिवत् प्रतिज्ञाम्।।" (3/43)
वासांसि दत्त्वा सुरलोकलोभिमहांसि तस्मा इति राड् मुमोच।" (3/25)

पृथ्वीराज ने इस सहाबदीन को सात बार पराजित किया और फिर मुक्त कर दिया–

"पृथक् पृथक् संगररङ्गभङ्गयोत्थं सप्तकृत्वः क्षितिवासवेन।
विनिर्जिताऽसौ यवनावनीशो मम्लौ च जग्लौ च भृशं नृशंसः।। (3/46)

पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन शक (गोरी) को सात बार पराजित करने के बारे में डॉ. दशरथ शर्मा प्रभृति इतिहासकार सहमत नहीं हैं। "पृथ्वीराज रासो" में दोनों के मध्य इक्कीस बार युद्ध होने का जो वर्णन प्राप्त है, उस पर तो कोई विचार ही नहीं करना चाहता। चूँकि यवन इतिहासकारों ने केवल दो ही युद्ध होने का वर्णन किया है, जिसमें एक बार गोरी पराजित हुआ और दूसरी बार उसने पृथ्वीराज को पराजित करके पकड़ लिया।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि पृथ्वीराज रासो और हम्मीर महाकाव्य में वर्णित घटनाओं को अस्वीकार करने के पीछे कोई युक्ति न देकर यवन इतिहासकारों के कथन को प्रामाणिक कैसे माना गया है ? क्या भारतीय संस्कृति में दुष्टों के प्रति महापुरुषों की सतत क्षमाशीलता प्रमाणित नहीं हुई है ? यवन इतिहासकारों ने भी कम से कम एक बार तो पृथ्वीराज की क्षमाशीलता को स्वीकार किया है। तो जो व्यक्ति एक बार आक्रान्ता को क्षमा–दान दे सकता है, वह सात या इक्कीस बार क्यों क्षमा नहीं कर सकता ? वस्तुतः यह एक भारतीय नृपति ही कर सकता है। अन्यथा किसी यवन द्वारा शत्रु को एक बार भी क्षमा करने का उदाहरण पूरे इतिहास में अप्राप्त है। महाकवि ने संस्कृतिगत इस विचारणा–भेद को स्पष्ट करते हुए कहा है–

"म्लेच्छावनीयमिममेवमन्यदा कश्चिज्जगाद सविषादमानसः।
त्वामेषकोऽमुचदनेकशो रणे त्वं नैकेवलमपि हा। जहास्यमुम् ।" (3/69)

अतः भारतीयता के पक्षधर पृथ्वीराज चौहान द्वारा कई बार क्षमा–दान करना सर्वथा स्वीकरणीय है। यवन इतिहासकारों ने हीन–भावना को छिपाने की प्रक्रिया अपनाकर केवल एक बार की पराजय को स्वीकार किया है, जो कि तथ्यों तथा उपलब्ध वर्णनों के आधार पर असत्य है। इस घटना को भारतीय परम्परा के अनुसार सात बार नाक रगड़ना अर्थात् क्षमा याचना के साथ भी जोड़ा जा सकता है।

पृथ्वीराज ने शकराज के देश में प्रवेश करके उसके साथ युद्ध किया था या नहीं, इस बारे में भारतीय इतिहासकारों ने संदेह व्यक्त किया है पर महाकवि ने तो "तच्छक–राजदेशम्" अर्थात् संभवतः तक्षशिला का संकेत किया है, जैसे–

"वसुन्धरां भूरितरामतीत्याभ्यवेष्टयत् तच्छकराजदेशम्" (3/22)

तक्षशिला की संभावना इसलिए भी बनती है कि शहाबुद्दीन से प्रपीड़ित चन्द्रराज प्रभृति पश्चिमांचल–नृपतियों ने पृथ्वीराज चौहान के पास आकर रक्षार्थ याचना की थी। इतिहासकारों ने इसे संभव माना है और इसलिए कवि द्वारा वर्णित पृथ्वीराज का तक्षशिला की ओर अभियान तथ्यपरक लगता है।

शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज को जिस रणभूमि में पराजित किया था, उस स्थान के बारे में एक नया विवाद या नवीन धारणा प्रस्तुत की गई है। साधारणतया गोरी का दिल्ली की ओर आक्रमण पंजाब की तरफ से माना जाता है। इतिहास–ग्रन्थों में यह स्थान "तवड़ हिन्द" के

नाम से विख्यात है और मुल्तान के पास स्थित बताया जाता है , पर कोटा विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रो. डॉ. घनश्यामलाल देवड़ा ने जोधपुर तथा बीकानेर में भाषण करते हुए "तवड़ हिन्द" को भटनेर या हनुमानगढ़ के पास "तलवाड़ा" बताया है, क्योंकि उनके कथनानुसार शहाबुद्दीन के आक्रमण की दिशा अजमेर थी, न कि दिल्ली, भले ही पृथ्वीराज दिल्ली का भी शासक रहा हो, पर मुख्यतः वह अजमेर का शासक था। इस आधार पर डॉ. देवड़ा ने भटिण्डा को तबड़हिन्द मानने से भी इन्कार किया। वस्तुतः वे तबड़ को फरसा मानकर युद्धोपयुक्त स्थान तलवाड़ा ही मानते हैं और तबड़ व तलवाड़ा में ध्वन्यात्मक साम्य भी देखते हैं। किन्तु 'तबड़ हिन्द' शब्द तो "तीव्रसिन्धु" का अपभ्रंश है। "तबड़–तबड़" चाल राजस्थान में शीघ्रतया चलने के लिए प्रसिद्ध भी है। इस आधार पर भटनेर या हनुमानगढ़ के पास सरस्वती नदी के तीव्र प्रवाह को ही यवनों ने "तबड़ हिन्द" कहा होगा।

किन्तु प्रश्न यह है कि पृथ्वीराज रासो आदि सभी कृतियों में दिल्ली की ओर गोरी का अभियान वर्णित है। हम्मीर महाकाव्य में भी शहाबुद्दीन द्वारा नई सेना के साथ दिल्ली पर घेरा डालने का वर्णन है। जैसे–

सद्यस्ततोऽसौ प्रसरत् प्रसादाद् बलं समासाद्य सहाबदीन :।
न केनचिज्ज्ञातचरः समेत्य जग्राह दिल्लीपतिविग्रहेण।। (3/50)

अतः डॉ. देवड़ा के द्वारा पुरस्कृत मत के पक्ष में अन्य प्रमाण न मिलने तक "तलवाड़ा" में इस अंतिम युद्ध की संभावना को स्वीकार करना कठिन है।

नयचंद्र सूरि ने शहाबुद्दीन द्वारा बन्दी बनाये गए पृथ्वीराज को दीवार में चुनवा देने का उल्लेख किया है, जैसे–

"आनीयैष नृपं तमुग्रतारुट् दुर्गान्तरेऽचीचयत्।
कार्याकार्यविचारणान्ध बधित हा! हाऽधमाः सर्वत :।।" (3/71)

डॉ. दशरथ शर्मा जैसे इतिहासकार इस तथ्य का समर्थन या विरोध नहीं करते। किंतु पृथ्वीराज रासो में गोरी द्वारा पृथ्वीराज को अंधा बनाकर गजनी ले जाने और फिर चंदबरदायी के गजनी में पहुँचकर पृथ्वीराज से मिलना और गोरी को शब्दबेधी बाण से मार डालने के संबंध में यह पद्य प्रसिद्ध है–

"चार बाँस चौबीस गज अंगुल आठ प्रमाण।
ता पे वो सुलतान है, मत चूकै चौहान।।"

यह किंवदन्ती मात्र है या सत्य घटना ? सामान्यतः इतिहासकार इसे कवि कल्पना मात्र बताते हैं। इस पर संभावना से इन्कार नहीं कर सकते कि युद्ध विशेष में चंदबरदायी ने पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के उतनी दूर बैठे होने और उस पर बाण चलाने के लिए प्रेरणा दी हो। यह घटना प्रथम या द्वितीय युद्ध में हुई होगी और पृथ्वीराज ने बाण चलाकर गोरी को

घायल करके पकड़ लिया होगा। पद्य–बद्ध अन्य बातें कल्पित हो सकती हैं। किंतु इतना स्पष्ट है कि पृथ्वीराज को दिल्ली में ही मार डाला गया। भले ही ऐसा कुकृत्य दीवार में चुनवाकर किया हो या अन्य तरीके से पृथ्वीराज को अंधा बनाकर गजनी ले जाने में औचित्य प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार महाकवि द्वारा वर्णित दीवार में जीवित चुनवा देना ही ग्राह्य लगता है। यवन–शासकों द्वारा मृत्यु–दण्ड की यह पद्धति बादशाह अकबर के क्रोध की पात्र अनारकली को दण्डित करने में सक्रिय रही बताते हैं।

पृथ्वीराज के देहान्त के बाद छोटा भाई हरिराज उसका उत्तराधिकारी बना, यह उल्लेख महाकवि ने किया है, यथा–

"राज्यं निर्विशतेऽन्येद्युर्हरिराज महीभृते।
प्रीतिव्रततिवृद्ध्यर्थं श्रीगूर्जरनरेश्वरः।।
विस्फुरच्छुक्रसंबंधाः समुन्नतपयोधरा :।
वर्षा इवोल्लसद्धर्षाः प्रेषयामास नर्तकी :।।" (4–2/3)

कवि ने हरिराज को भोग–विलास में निमग्न रहने और यवनराज का आक्रमण होने पर स्त्रियों सहित आग में जलकर मर जाने का भी वर्णन किया है–

"सान्तः पुर पुरन्ध्रीकस्ततोऽसौ ज्वलनेऽविशत्।
भाविनी यादृशी कीर्त्तिर्मति : स्यात् तादृशी नृणाम्।।" (4/19)

द्वितीय तथ्य अर्थात् अग्निप्रवेश की घटना समसामयिक ग्रंथ ताजुलमासिर द्वारा पुष्ट है। रही बात भोग–विलास में तल्लीन रहने की। तो यह प्रवृत्ति केवल हरिराज में ही नहीं, अपितु अग्रज पृथ्वीराज में भी थी। जयचंद्र–पुत्री संयोगिता के अपहरण और फिर उससे विवाह करने के बाद पृथ्वीराज ने राज्य–कार्य से विमुख होकर प्रासाद–लीलाओं में ही स्वयं को निमग्न कर डाला था, ऐसा वर्णन कई काव्यों में मिलता है। अतः अग्रज के पदचिह्नों पर चलना अनुज के लिए सहज था। यों भी सामन्ती युग में राजा या राजकुमारों का विलासिता में निमग्न रहना अत्यंत साधारण बात थी। इस दृष्टि से नयचंद्र सूरि द्वारा हरिराज के लिए गुर्जरेश्वर–संप्रेषित नर्तकियों के आगमन और उनके साथ हरिराज की विलासिता का वर्णन अस्वाभाविक घटना नहीं। किंतु यवन शत्रु के आगमन से संत्रस्त होकर उसका अग्नि–प्रवेश अवश्यतः अस्वाभाविक घटना है। स्त्रियों का जौहर करना तो सतीत्व–रक्षा की दृष्टि से नैसर्गिक कहा जा सकता है, किंतु पुरुष को इस प्रकार की आत्महत्या करना अशोभनीय है। उसे मरना ही है तो युद्ध भूमि के एक–दो शत्रु सैनिकों को मारकर तो मरे। वस्तुतः हरिराज की अग्नि–प्रवेश के माध्यम से की गई आत्महत्या इतिहास में एकमात्र उदाहरण है। यदि कवि–वर्णित यह घटना सत्य हो तो इससे हरिराज की प्रतिष्ठा पर बड़ी आँच आती है। उसकी शकेश का मुख–दर्शन न करने की प्रतिज्ञा तो कायरता की ही प्रतीक है।

हरिराज की आत्महत्या के बाद अजयमेरु (अजमेर) पर शहाबुद्दीन गोरी का अधिकार हो गया। इससे हरिराज के मंत्रियों ने निराश होकर पृथ्वीराज के पौत्र को गोविन्दराज की शरण लेने हेतु रणथम्भौर जाने का निर्णय लिया–

"तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक् पित्राऽतो निरासितः।
पौत्रो गोविन्दराजाख्यः स्वसामर्थ्यात्तवैभव ः।।
....
मंत्रयित्वेति भूपीयं सर्व कोशबलादिकम्।
सहाऽऽदाय चलन्ति स्म रणस्तम्भपुरं प्रति।।" (4/24 व 26)

नयचंद्र सूरि ने यहाँ गोविंदराज को पृथ्वीराज का पौत्र बताकर भूल की है। सामान्यतः अपने पुत्र का निष्कासन तो पिता द्वारा कर दिया जाता है, किंतु पौत्र को निष्कासित करने से पूर्व पुत्र को भी निष्कासित करना आवश्यक होता है। हरिराज जैसे विलासप्रिय भाई को अजयमेरु भेजने के पीछे भी पृथ्वीराज की यही भावना सक्रिय रही होगी कि दिल्ली में वह विलासिता के कारण अपयश का भागी बन चुका होगा।

तो फिर गोविन्दराज को निष्कासित करना आवश्यक ही था, तो उसे हरिराज के पास अजमेर ही भेज देते । अतः अनुमान यही होता है कि गोविन्दराज उनका पौत्र न होकर पुत्र रहा होगा और उससे किसी गंभीर कारण से, न कि विलासिता जैसे राजकुमार सुलभ विलासिता के कारण, उसे दिल्ली और अजमेर से दूर रहने का आदेश दिया होगा। इस प्रकार पिता पृथ्वीराज द्वारा निष्कासित गोविन्दराज ने उसे रणस्तंभपुर जैसे सुदूर पर्वतीय अरण्यावली में अपना राज्य स्थापित किया। महाकवि ने यह तो लिखा ही है कि गोविन्दराज ने अपने पराक्रम से वैभव प्राप्त किया था।

किंतु यह स्पष्ट नहीं कि गोविन्दराज की उम्र क्या थी? यदि उसे पृथ्वीराज का पौत्र माना जाए तब तो वह किशोर अवस्था में रहा होगा और तब रणथंभौर जैसे विशाल दुर्ग का निर्माण करवाना उसके लिए असंभव ही रहा होगा। वस्तुतः पहले तो संपत्ति अर्जित करना और फिर विशाल दुर्ग के निर्माण हेतु बीस तीस बरस का अंतराल अवश्य चाहिए। इस दृष्टि से अनुमान होता है कि वह पृथ्वीराज का पुत्र था, न कि हरिराज का। हरिराज तो पृथ्वीराज का अनुज होने के कारण अजयमेरु में विलासमय जीवन व्यतीत करता रहा होगा। नीलकण्ठ जनार्दन कीर्ति ने सन् 1889 ई. में अपनी भूमिका में स्पष्टतः लिखा है, "Hariraj had no son."

अब गोविन्दराज के दुर्ग रणथंभौर की बात की जाए। महाकवि ने यह कहीं नहीं लिखा कि यह दुर्ग किसने बनवाया। डॉ. दशरथ शर्मा जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार ने भी अपनी विस्तृत भूमिका में दुर्ग निर्माण के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया। तो क्या यह अनुमान किया जाए कि गोविन्दराज या उसके किसी भी वंशज ने यह दुर्ग बनवाया नहीं, अपितु गोविन्दराज ने किसी शासक को पराजित करके दुर्ग पर अधिकार किया था। किले की दुर्भेद्यता को देखते

हुए यह संभावना अति क्षीण प्रतीत होती है। इतिहास में इस दुर्ग का न तो निर्माण–संबंधी उल्लेख है और न ही इस दुर्ग के निर्माण–कौशल का। महाकवि नयचंद्र सूरि ने तो एक क्षण के लिए भी दुर्ग के स्वरूपांकन पर प्रकाश नहीं डाला। इस आधार पर मैं यह कहने के लिए बाध्य हूँ कि महाकवि ने इस दुर्ग को कभी देखा ही नहीं। इस प्रकार कीर्तने महोदय अथवा डॉ. दशरथ शर्मा ने भी इस दुर्ग का अवलोकन शायद ही किया हो। इस शोधपत्र के लेखक को दुर्गावलोकन का सौभाग्य सन् 1944 ई. में मिला था। अतः उसकी निर्माण कला तथा दुर्भेद्यता से साक्षात् परिचय होने के कारण इस वर्तमान लेखक को महाकवि का दुर्ग–वृत्तान्त किसी सुदूर प्रदेश से किया हुआ लगता है। मीलों लंबी एक के भीतर एक दो अभेद्य प्राचीरों और तीसरे दरवाजे से लेकर सातवें दरवाजे तक ऊपर ही ऊपर चढ़ती सीढ़ियों की शृंखला को पार करके सातवीं मंजिल पर स्थित व्यक्ति चारों तरफ दस–बीस मील तक दृष्टि डाल सकता है। वहाँ रक्खी तोप से प्रथम द्वार से परे तक मारक क्षमता भी वहाँ देखी जा सकती है। महाकवि नयचंद्र ने इस संबंध में एक शब्द तक नहीं कहा। जिस कमल–सरोवर के बारे में वे कहते हैं–

"तदा पद्मसरः स्वप्नेऽभ्येत्य भूपमदोऽवदत्।
म्लेच्छा धनं मयि क्षिप्तं लप्स्यन्ते नाप्यसुव्यये।।" (13/192)

यहाँ पद्मसरोवर स्वयं स्वप्न में आकर हम्मीर को प्रेरणा देता है कि वह राजकोष में रक्षित संपूर्ण धन सरोवर में डाल दे, ताकि यवन प्राण–त्याग करके भी उसे प्राप्त न कर सकें।

यहाँ कवि ने तो स्पष्टतः नहीं लिखा कि हमीर ने सारा धन सरोवर में फिंकवाया या नहीं, किन्तु अनुमान यही है कि उसने यही किया होगा। यहां एक बात स्पष्ट कर दी जावे कि वह सरोवर, जिसमें कमल खिलते हैं (लेखक द्वारा स्वयं दृष्ट) दूसरे तथा तीसरे दरवाजे के मध्यवर्ती विस्तृत भूभाग में स्थित है और दुर्ग की सप्तम मंजिल पर धूलिसात् हो रहे प्रासाद खण्डहरों से बहुत दूर और बहुत नीचे है।

तो क्या यह अनुमान किया जाए कि यवन–सेना दूसरे और तीसरे दरवाजे के मध्य में स्थित नहीं थी ? यदि नहीं थी तो कवि का यह वर्णन सर्वथा कल्पित प्रतीत होता है कि धारादेवी नामक नर्तकी ने किले के ऊपर नृत्य करते हुए अलाउद्दीन खिलजी को अपना पिछला भाग दिखाया था, जैसे–

"ताण्डवं निर्मिमायेति सा तालत्रुटनक्षणे।"
अधः स्थाय शकेन्द्राय पश्चात्भागमदीदृशत्।।" (13/27)

वस्तुतः तीसरे दरवाजे के बाहर कुछ दूरी पर खड़े अलाउद्दीन खिलजी को यह दृश्य दिखाई दे सकता था, किंतु वहाँ यवनों के होने पर कमल–सरोवर में धन–प्रक्षेप की संभावना नहीं बनती। इससे अनुमान होता है कि धन–प्रक्षेप संबंधी स्वप्न सातवें दरवाजे पर स्थित सरोवर के बारे में है। पर उसमें कमल नहीं खिलते। हाँ! वह सरोवर इतना गहरा है कि उसमें 4–5 बांसों से भी तलहटी का पता नहीं चलता। उसका पानी इतना नीचे बहता हुआ पद्मसरोवर

में मिल जरूर जाता है। इससे यही निश्चय होता कि कवि ने दोनों सरोवरों में से एक को नहीं देखा। धारा देवी के नृत्य प्रदर्शन को भी असंभाव्यता के कारण कल्पित कहा जा सकता है।

इसके बाद आठवें सर्ग तक हम्मीर के राज्याभिषेक की कथा के बारे में इतिहासकारों ने सहमति प्रकट की है। अतः नवें सर्ग से चौदहवें सर्ग तक हम्मीर संबंधी वर्णन पर विचार करना है।

3. हम्मीर जैत्रसिंह के ज्येष्ठ पुत्र न होने पर भी संवत् 1339 माघ शुक्ला 15 को सिंहासन पर बैठे, ऐसा वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"ज्येष्ठे तनूजे सति राज्यलक्ष्मीर्देया कदाचिन्न किलेतरस्मै।
जानन्नपीत्थं नयवर्त्मसंस्थां माह्यं कथं दित्सति तामधीशः ।।
हम्मीरदेवाय वितीर्य राज्यं मदङ्घ्रिसेवानिरतो भवेति ।
स्वप्ने निशान्ते शयितं निशान्ते मामाह विष्णुः करवै किमार्य ।। (8/53, 54)

इस प्रकार स्पष्ट है कि हम्मीर अपने भाइयों में सर्वाधिक पराक्रमी थे। उन्होंने दिग्विजय करके अपने पराक्रम का पूर्ण प्रदर्शन भी किया। उन्होंने दिग्विजय के बाद दो कोटि–यज्ञ भी किए, यथा –

"कोटियज्ञफलं राजा पृष्टोऽन्येद्युः पुरोहितः ।
विश्वरूपाख्यया ख्यातो व्याचख्याविति तं पटुः ।।
....

इति स्मृतिसुधाम्बोधिच्छटाच्छोटपटुच्छविम् ।
निशम्य तद्गिरं भूपस्तं क्रतुं कर्तुमैहत ।। (9/76,78)

इस क्रतु के बाद हम्मीर ने एक मास का मुनिव्रत धारण किया, यथा–

"ततः पुरोहितेनाऽभियुक्तो युक्तं पुरोहितम्।
आददे नृपतिः प्रीतो मासमेकं मुनिव्रतम् ।। (9/99)

हम्मीर के पौराणिक मंत्री बैजादित्य द्वारा रचित सं. 1345 के शिलालेख में दो कोटि–यज्ञों के निष्पादन का उल्लेख है। किंतु क्या दिग्विजय का अभिप्राय मालवा के राजा अर्जुन पर विजय मात्र से है, जिसका वर्णन नयचंद्र ने किया है। क्या केवल एक बड़ी विजय से या छोटी–बड़ी अनेक विजयों को दिग्विजय कहा जा सकता है ? स्वयं कवि ने तो एक कोटि–यज्ञ का ही वर्णन किया है। इससे प्रतीत होता है कि कोटि यज्ञ सं. 1345 से पूर्व संपन्न हुआ होगा, पर कवि द्वारा वर्णित दिग्विजय का अर्थ मालव राज अर्जुन पर विजय ही मानना होगा।

भीमसिंह के वध से संबंधित वर्णन संदिग्ध है। पराजित यवनों ने गुप्त रूप से पीछा करके भीमसिंह को मार डाला तो आश्चर्य नहीं। यवन–वाद्य यंत्र बजाने से यवन–सेना का मौके पर आ पहुँचना सर्वथा असहज सी स्थिति है। संभवतः कवि ने इससे मिलती–जुलती घटना का वर्णन पढ़ा सुना होगा और इसे भीमसिंह के वध से जोड़ दिया होगा।

हम्मीर के मुनिव्रत के समय अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का उल्लेख कवि ने किया है। पर कोटि यज्ञ तो सं. 1345 के शिलालेख की दृष्टि से पांच दस वर्ष पहले हुआ होगा और उस समय दिल्ली में पहले तो कैकुबाद और फिर जलालुद्दीन खिलजी गद्दीनशीन हुआ था। इसका तात्पर्य है कि जलालुद्दीन खिलजी के समय से रणथंभौर पर आक्रमण शुरू हो गये थे। अतएव कवि ने उन यवन–आक्रमणों का उल्लेख किया है, जबकि अमीर खुसरो ने एक का और बर्नी ने दो आक्रमणों की पुष्टि की है। स्पष्टतया अमीर खुसरो ने तो अंतिम सफल आक्रमण का और बर्नी ने उस अंतिम के अतिरिक्त इस आक्रमण को स्वीकृति दी होगी, जिसमें भीमसिंह मारा गया। यह भी सर्वथा अनुमेय है कि यवन इतिहासकारों ने असफल आक्रमणों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। अमीर खुसरो के द्वारा वर्णित मिकूता एवं उलफुतूह का "साहणी" वही भीमसिंह था, जिसे "लोहे का पहाड़" बताया गया।

रणथंभौर पर खिलजी के आक्रमण के कई कारण हैं , जैसे–

1. मुहम्मदशाह और उसके भाइयों को शरण देना, जिसका वर्णन महाकवि ने नहीं किया।
2. हम्मीर को पराजित किए बिना भारत या उत्तर भारत का बादशाह कहलाना निरर्थक था।
3. जैत्रसिंह आदि द्वारा प्रदेय कर वसूल करना।
4. हम्मीर की पुत्री देवल के साथ खिलजी की विवाहेच्छा।

इनमें से प्रमुख तो प्रथम कारण ही था। यदि हम्मीर ने मुहम्मदशाह और उसके भाइयों को शरण न दी होती तो खिलजी का आक्रमण या तो होता नहीं। यदि होता भी तो शायद देर से। पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार किए बिना बादशाह कहलाना भी उपहासास्पद था। अतः देर–सबेर रणथम्भौर पर आक्रमण तो होता ही। देवल के साथ बादशाह की विवाहेच्छा तो हम्मीर के आत्मसम्मान को चुनौती देना मात्र था। यदि हम्मीर को यह स्वीकार होता तो झगड़ा ही मिट जाता, पर हम्मीर मिट्टी का नहीं अपितु कठोर धातु का बना था। अन्यथा वह मोहम्मदशाह आदि को शरण ही क्यों देता? सत्य तो यह है कि शरणागत–रक्षा हम्मीर का परम धर्म था। पर वस्तुस्थिति की विकटता से आक्रान्त हम्मीर भी विचलित हो गया और मोहम्मदशाह को कहीं अनापद जगह जाने के लिए कहने लगता है–

"यूयं वैदेशिकास्तद् वः स्थातुं युक्तं न सापदि।
यियासा यत्र कुत्रापि ब्रूत तत्र नयामि यत्॥"(13/151)

बाद में हम्मीर को इसका पश्चात्ताप भी होता है–

"मत्तो नैवाधमः कोऽपि त्वत्तो नैवोत्तमः परः।" (13/165)

हम्मीर ने नागरिकों को भी अन्यत्र चले जाने का आदेश दिया और नगर के द्वार खोल दिए, यथा–

"ततः प्रदाय पौराणां मुक्तिद्वारं स युक्तिवित्।
प्रवेष्टुं ज्वलने शिष्टमतिरादिष्टवान् प्रियाः॥" (13/171)

4. यहाँ रानियों को आत्मदाह करने का आदेश तो समझ में आता है, पर नागरिकों के लिए मुक्तिद्वार खोलने का अभिप्राय स्पष्ट नहीं। यदि दुर्ग से बाहर जाने का कोई मार्ग था तो स्वयं हम्मीर अपने राजपरिवार के साथ दुर्ग छोड़कर जा सकता था। वस्तुतः किले से बाहर निकलने का एक ही द्वार था और वहाँ यवन–सेना के होते किसी का मुक्त होना संभव नहीं था।

5. जब राजकुमारी देवल पिता हम्मीर के सम्मुख कहती है कि यवनों के साथ उसका विवाह करके अपने राज्य की रक्षा करें तो बड़ा आश्चर्य होता है। यवनों के साथ मैत्री का यह प्रकार तब तक इतना प्रचलित नहीं हुआ था और हिन्दू शासक इस प्रकार की मैत्री पर विचार ही नहीं करते थे। क्या कारण है कि देवल देवी बड़े–बड़े प्रलोभन देकर पिता से अपनी बात मनवाना चाहती है।

"तत् तात ! मयि दत्तायां किं किं भावि न ते हितम् ?
जामाता भूपतिस्तादृक् सुखं स्वक्षितिरक्षणम्।।" (13/111,112)

राजकुमारी को राजमहिषियों ने इस प्रकार का प्रस्ताव रखने की प्रेरणा दी थी, यह तो महाकवि भी मानता है, यथा–

"इतश्च राजपत्नीभिरनुशास्य प्रणोदिता।
पुत्री देवल्लदेवीति गत्वा भूपं व्यजिज्ञपत्।।" (13/106)

रानियों की उत्कट जिजीविषा तो इससे मुखर होती है, पर पिता के सम्मुख जाने में देवल्ल देवी की अत्यधिक त्वरा और बिना हिचकिचाये यवनेश की प्रशंसा को देखते हुए देवल्लदेवी की दमित अभिलाषाओं और जिजीविषा का भी अनुमान किया जा सकता है। संभवतः इतिहास में इस प्रकार का अन्य उदाहरण मिलना अशक्य है। हम्मीर ने पुत्री के इस कथन के पीछे रानियों के पाप–परामर्श का अनुमान लगाकर इसे अस्वीकार कर दिया, यथा–

"अयशः पटहो लोके परलोके च दुर्गतिः।
स्वकुलाचारविध्वंसो धिङ् नृणां जीवितं ततः।।"

क्या इस विचारणा को हठ कहा जा सकता है, जैसी कि प्रसिद्धि है–

"सिंहगमन सत्पुरुष वचन, कदली फले इक बार।
त्रिया तेल हम्मीरहठ चढ़े न दूजी बार।।"

वस्तुतः हमीर की पराजय इस हठ के कारण नहीं, अपितु अन्य कई कारणों से मानी जा सकती है। सबसे बड़ा कारण तो किले की सुदीर्घ घेराबंदी जिससे अन्न की कमी होना और भूखमरी का फैलना। भीतरी विश्वासघात भी एक कारण था, पर इसके लिए हम्मीर स्वयं भी उत्तरदायी था। धर्मसिंह को पद से हटाकर पुनः पदस्थापित करना हम्मीर की सबसे बड़ी भूल थी। काठ की हांडी एक बार ही आग पर चढ़ती है, यह कहावत हम्मीर को याद नहीं रही। रतिपाल तथा रणमल्ल को समझने में भी हम्मीर ने भूल की थी। पाँच महीनों के घेरे (अर्थात्

मार्च से जुलाई तक) जिसे अमीर खुसरो ने रजद् से लेकर जिल्काद तक बताया है, से दुर्गवासी ही नहीं; यवन–सैनिक भी परिश्रान्त हो चुके थे। उन्हें यदि अन्नाभाव की भीतरी स्थिति का पता न होता तो यवन–सेना घेरा उठाकर चली भी जाती। अतः भीतरी विश्वासघात को दबाने में हम्मीर का असफल होना पराजय का बड़ा कारण था।

सारांश :

संक्षेप में शोध–पत्र के मौलिक निष्कर्ष ये हैं :–

1. चौहान शब्द की व्युत्पत्ति "चाहमान" शब्द से नहीं, अपितु चमूवान् या चतुर्हानः (चार बल, भुजबल, अर्थबल, पद–बल तथा पदातिबल) से माननी चाहिए। चौपाटी, चौतरफ, चौराहा तथा चौदस जैसे शब्दों में "चतुः" सर्वत्र विद्यमान है। अतः चौहान भी चतुर्हान से बना है।

2. महाकवि नयचंद्र ने दुर्ग को देखे बिना वर्णन किया है। इतिहासकार भी इस अभेद्य किले को देखने शायद ही गए हों। सातवें दरवाजे को पार करने पर जो सरोवर तथा गणेश–मन्दिर (प्रसिद्ध मेला) के बारे में महाकवि ने कुछ लिखा है।

3. पृथ्वीराज चौहान ने शहाबुद्दीन गोरी के साथ प्रथम युद्ध तक्षशिला में किया, न कि उसके जन्मस्थल गजनी में।

4. पृथ्वीराज ने गोरी को कई बार क्षमा किया, न कि एक बार, जैसा कि यवन–इतिहासकार कहते हैं।

5. पृथ्वीराज–रासो के चंदबरदायी द्वारा "चार बाँस चौबीस गज." कहकर पृथ्वीराज को गोरी की अवस्थिति बताना मिथक नहीं, अपितु सत्य है।

6. गोविन्दराज पृथ्वीराज का पुत्र था, न कि पौत्र।

7. रणथंभौर दुर्ग का निर्माण गोविन्दराज ने करवाया या अन्य किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती शासक ने, यह विषय अनिर्णीत और अवर्णित है।

8. यवन–सैनिकों द्वारा किस स्थान पर और किस तरीके से भीमसिंह को मारा, यह बात अभी अपुष्ट है।

9. यवन–सैनिकों द्वारा खाई को पाटने का वर्णन कल्पित लगता है, क्योंकि किले के भीतर या बाहर ऐसी कोई खाई है ही नहीं।

10. महाकवि नयचंद सूरि ने जयचंद्र–पुत्री संयोगिता के स्वयंवर और पृथ्वीराज द्वारा उसके अपहरण या विवाह का नामोल्लेख भी नहीं किया है। सत्य तो यह है कि कवि ने जयचंद या कन्नौज का नाम ही नहीं लिया है। तो क्या यह माना जाए कि कवि ने उसका नाम भी नहीं सुना! क्या गोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए जयचंद ने आमंत्रित नहीं किया ?

11. देवल्ल देवी द्वारा पिता के सम्मुख समर्पणात्मक प्रस्ताव कवि–कल्पित है।

12. हम्मीर की "दिग्विजय" वस्तुतः मालव–नरेश पर विजय थी, जिसे कवि ने अतिरंजना के रूप में 'दिग्विजय' बताया है। कोटि–यज्ञ भी एक ही किया गया था, न कि दो, जैसा कि शिलालेख में उट्टंकित है। यों भी दिग्विजय का प्रतीक यज्ञ" अश्वमेध या फिर "राजसूय यज्ञ" होना चाहिए, न कि अज्ञात सा "कोटि–यज्ञ"।

13. दुर्ग तो आज भी अभेद्य है। हाँ! राजमहल सर्वथा ध्वस्त है। तो क्या कारण है कि हम्मीर के बाद इस दुर्ग पर किसी ने अधिकार नहीं किया? इतिहास ने इस दुर्ग को भुला कैसे दिया?

सुर्जनचरित महाकाव्य का ऐतिहासिक अनुशीलन

डॉ॰ ओंकार नारायण सिंह

सुर्जनचरित महाकाव्य की रचना बूंदी नरेश राव सुर्जन हाडा के आदेश[1] एवं अनुरोध [2] पर गौडीय कवि चंद्रशेखर द्वारा 1578 ई॰ के लगभग की गई थी।[3] इसके बीस सर्गों के अन्तर्गत चौहानवंशीय इतिहास के क्रम में बूंदी के हाडा राजकुल विशेषतः राव सुर्जन तथा उनके युवराज भोज का वर्णन हुआ है।

इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि यह रचना महाकाव्य है न कि इतिहास ग्रंथ। किंतु इसकी पृष्ठभूमि अवश्य ऐतिहासिक है। इसमें उल्लिखित राजवंश परम्परा एवं तत्संबंधी विवरणों के अतिरंजित होने अथवा मान्य इतिहास से परे होने के बावजूद समग्रतः उनमें ऐतिहासिक सत्य के अंश की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। आवश्यकता मात्र आलंकारिक काव्यात्मक उल्लेखों के अन्तर्गत ऐतिहासिक तथ्यों के यथार्थ अनुसंधान तथा समकालीन इतिहास से उसकी संगति स्थापित करने की है।

उपर्युक्त शोध–दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने पर चौहान राजवंश के इतिहास पर तथ्यात्मक सामग्री उपलब्ध हो जाती है। महाकाव्य के अन्तर्गत 'चतुर्बाहुमान' अथवा चौहान [4] वंश के सर्वप्रथम प्रतापी राजा वासुदेव निर्दिष्ट किए गए है।[5] इनका समय 551 ई॰ के लगभग अनुमानित किया जाता है।[6] ग्रंथ में वासुदेव से राव भोज तक की अविच्छिन्न वंश–परंपरा प्राप्त होती है। इस क्रम में वासुदेव के अनंतर प्रथम सर्ग के अन्तर्गत क्रमशः नरदेव, श्री चंद्र, अजयपाल, अजयराज, सामंतसिंह, गुर्वक, चंदन, वज्र, विश्वपति का [7], चतुर्थ सर्ग में हरिराज [8], पंचम सर्ग में सिंहराज भीमेदव [9] तथा षष्ठ सर्ग के अन्तर्गत क्रमशः विग्रहदेव, गुंददेव, वल्लभदेव, रामनाथ, चामुण्ड, दुर्लभराज, दुलसदेव, बीसलदेव, पृथ्वीराज, वह्लण का उल्लेख हुआ है।[10] अनलदेव का सप्तम सर्ग में [11], जगदेव, बीसलदेव, अजयपाल का अष्टम सर्ग में [12], गंगदेव का नवम सर्ग में [13], सोमेश्वर, पृथ्वीराज का दशम सर्ग में [14] एवं प्रह्लाद, गोविंदराज, वीर नारायण, वाग्भट्ट, जैत्रसिंह और हम्मीर का वर्णन एकादश सर्ग में प्राप्त होता है।[15] यद्यपि उपर्युक्त वंशावली ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतया संगत नहीं है [16] तथापि इससे चौहानों के इतिहास की पृष्ठभूमि पर प्रकाश पड़ता ही है।

प्रमुख राजाओं के वर्णन के परिप्रेक्ष्य में विश्वपति (वाक्पति) को शाकंभरी देवी की आराधना पर उनके वरदान से सांभर के लवणाकर (झील) निर्माण का श्रेय प्रदान किया गया है।[17] हरिराज की चीन के यवनों पर विजय और उसके स्मारक–स्वरूप मण्डपपुर के समीप योधपुर दुर्ग के निर्माण[18] एवं भीमदेव के दिग्विजय क्रमान्तर्गत मगध, अंग, बंग, कलिंग, कर्णाट, कुन्तल, लाट, खस, काम्बोज, शक कामरूप आदि को विजित कर वृन्दावती (बूंदी) प्रत्यागमन

के आलंकारिक वर्णनों में रघुवंशोक्त रघु की दिग्विजय यात्रा का प्रभाव प्रतीत होता है।[19] वल्लभदेव द्वारा चेदिराज भोज पर विजय,[20] चामुण्ड की शक–विजय,[21] वीसलदेव की अवंतिपति कर्ण पर विजय[22] की ऐतिहासिक कसौटी पर परख संभव है। अनलदेव (अरुणदेव, आना अथवा अर्णोराज) द्वारा पुष्कर में पक्के घाट और मंदिर निर्माण का तथ्य भी ऐतिहासिक सत्य प्रतीत होता है।[23] किन्तु पृथ्वीराज चौहान का उल्लेख चन्द बरदायी के 'रासो' के आधार पर किया जाना वर्णन को मान्य इतिहास से परे ले जाता है।[24] इसी क्रम में कन्नौज नरेश जयचंद की पुत्री संयोगिता का कांतिमती के रूप में उल्लेख[25] एवं जयचंद का पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता अपहरण के समय उससे परास्त होकर यमुना में डूब जाना भी[26] वास्तविक तथ्यों के विपरीत है। इसी प्रकार गोरी को पृथ्वीराज द्वारा इक्कीस बार हराए जाने[27] तथा अंधे पृथ्वी–राज के शब्दवेधी बाण से मुहम्मद गोरी के वध[28] की भी ऐतिहासिक रूप से पुष्टि नहीं होती। कतिपय विवरण न्यूनाधिक यथार्थ हैं यथा–तराइन के प्रथम और द्वितीय युद्ध।[29]

रणस्तंभपुर (रणथंभौर) के अधिपति हम्मीर का वर्णन, इसके अन्तर्गत पर्याप्त प्रामाणिक प्रतीत होता है।[30] उसके अलाउद्दीन खिलजी से संघर्ष के क्रम में जलालुद्दीन खिलजी,[31] उलूग खाँ[32], मीर मोहम्मद शाह[33], मीर खेब्रु[34] तथा रणमल के[35] वर्णन ऐतिहासिक तथ्यों के निकट प्रतीत होते हैं। 1299 ई॰ में अलाउद्दीन द्वारा उलूगखाँ को रणथंभौर विजय हेतु भेजने एवं उसके पराजित होकर पलायन करने,[36] अलाउद्दीन के दूत भेजने[37] तथा पुनः संग्राम छिड़ने पर[38] हम्मीर के प्रधान सेनापति रणमल के विश्वासघात किए जाने, दुर्ग में रानियों द्वारा जौहर करने[39] और हम्मीर द्वारा केसरिया बाना धारण कर प्राणोत्सर्ग के विवरण[40] यथार्थ प्रतीत होते हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तर्गत चौहान वंश की हाडा शाखा का सोमेश्वर के द्वितीय पुत्र माणिक्यराज से आरंभ होना निर्दिष्ट किया गया है।[41] किन्तु यह तथ्य ऐतिहासिक रूप से संगत प्रतीत नहीं होता। 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के अनुज का नाम हरिराज बताया गया है, माणिक्यराज नहीं। इतिहास–ग्रंथों के अनुसार वाक्पति के अनुज लक्ष्मण ने 943 ई॰ के लगभग नाडोल में पृथक् राज्य स्थापित किया। इसी वंश के माणिक्यराज ने बम्बावदा को राजधानी बनाया। गंगदेव माणिक्यराज के वंशज थे।[42] गंगदेव के पुत्र देवसिंह ने बून्दा मीणा के नाम से प्रसिद्ध बूंदी को जेता मीणा से 1241 ई॰ के लगभग जीतकर बन्दू घाटी में बूंदी राज्य की स्थापना की। राज्य–विस्तार के अनन्तर बम्बावदा को भी बूंदी राज्य में सम्मिलित कर उसने 1243 ई॰ में अपने पुत्र समर सिंह को अपने जीवनकाल में ही हाड़ौती का शासक नियुक्त किया। समर सिंह ने कोटिया शाखा के भीलों को परास्त कर अपने पुत्र जैत्रसिंह को 1274 ई॰ में कोटा का राज्य प्रदान किया।[44] वह अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था।[45] उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में माणिक्य राज से राव भोज तक का वंशानुक्रम, जिसके अंतर्गत क्रमशः चण्डराज, भीमराज, विजयराज, रयण, कोहलण, गंगदेव, देवसिंह, समर सिंह, नरपाल (नापा), हम्मीर (हामा अथवा हल्लू) वरसिंह, भारमल्ल, नर्मद, अर्जुन, सुर्जन, भोज इत्यादि राजाओं के

नाम निर्दिष्ट हुए हैं, [46] भी प्रायः वरसिंह से अर्जुन तक इतिहाससम्मत प्रतीत नहीं होता। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार वरसिंह (वीर सिंह) के वंश में क्रमशः वैरीसाल, भांडा (भारमल्ल), नारायण दास, सूर्यमल्ल और सुलतान सिंह के नाम प्राप्त होते हैं। नारायण दास ने राणा सांगा को मालवा सुल्तान के विरुद्ध सहायता देने के अतिरिक्त बाबर के विरुद्ध खानुवा के युद्ध (1527 ई॰) में भी सहयोग दिया। सुलतान सिंह के संतानहीन होने के कारण भाँडा के द्वितीय पुत्र नरबुध (नर्मद) का ज्येष्ठ पुत्र अर्जुन सिंहासनासीन हुआ। इस प्रकार वास्तविक वंशावली के वैरीसाल, नारायणदास, सूर्यमल्ल एवं सुल्तानसिंह के नाम काव्योक्त वंश परम्परा के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं होते। [47]

काव्यनायक राव सुर्जन के वर्णन क्रम में अर्जुन तथा जयन्ती के पुत्र रूप में सुर्जन के जन्म [48] प्रताप [49], राज्याभिषेक [50] कनकावती से परिणय [51] अकबर की रणथंभौर पर चढ़ाई [52], विफलता [53] पुनः चढ़ाई [54], सुर्जन का पराक्रम एवं संग्राम का लोमहर्षक वर्णन [55], राजा मानसिंह का संधि–प्रस्ताव के साथ आगमन, [56] सुर्जन द्वारा उसे स्वीकृत कर रणथंभौर दुर्ग का समर्पण [57] तत्पश्चात् काशीवास [58] और समयानुसार वहीं देह–त्याग [59] और रानियों के सती होने के आलंकारिक विवरण प्राप्त होते हैं।[60] इन सबमें पर्याप्त ऐतिहासिकता प्रतीत होती है। इतिहासकारों के अनुसार 1569 ई॰ में सुर्जन के अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेने एवं गौड़ों का दमन करने पर अकबर ने उसे रावराजा की उपाधि तथा 5000 का मनसब प्रदान किया। उसे बूंदी और बनारस के निकट 26–26 परगने भी प्राप्त हुए। बनारस तथा चुनार की हाकिमी मिलने पर वह बनारस में ही रहते हुए 1585 ई॰ में स्वर्गवासी हुआ। [61]

ग्रन्थ का समापन राव भोज के राज्याभिषेक के [62] उपरान्त युवराज रत्न (राव रतन) के साथ उसके सुशासन–वर्णन के साथ हुआ है। यथा–

इत्थं सोऽवहितो रणे वितरणे सम्यक् प्रजापालने
लक्ष्मीमुज्वलयन् कुलस्थितिकरीं कीर्तिञ्च जंघालयन्।
दिल्लीशेन पुरस्कृतः परिवृतो रत्नादिभिर्नन्दनै–
रध्यास्तेचरणाद्रिमादृत बुधो वृन्दावतीनायकः।। [63]

इससे विदित होता है कि कवि द्वारा राव सुर्जन के काल में आरंभ महाकाव्य की रचना राव भोज के काल में सम्पूर्ण हुई।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
शाखा–भरतपुर

: सन्दर्भ :

1. सुर्जनचरितमहाकाव्यम्– संपादक डॉ. चंद्रधर शर्मा, काशी, प्रथम संस्करण, 1952 ई.
आज्ञाबलात् तदपि शूरजनस्य राज्ञ। (प्रथम सर्ग, श्लोक 7)

2. निर्बन्धान् नृपसुर्जनस्य नितरां (सु. 20/64)

3. शर्मा, गोपीनाथ– राजस्थान का इतिहास, आगरा 1984 ई., पृ. 412

4. ध्रुवं चतुर्बाहुरिति प्रसिद्धः स चाहुवाणः किल लौकिकोत्या। (सु. 7/60)

5. सु., 1/9

6. शर्मा, दशरथ – अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. 23,24

7. सु. 1/20 से 1/30

8. वही. 4/43

9. वही. 5/2, 5/33

10. वही. 6/1 से 6/86

11. वही. 7/1

12. वही 8/26 से 8/29

13. वही. 9/62

14. वही. 10/1, 10/7

15. वही. 11/ से 11/7

16. इतिहाससम्मत वंशक्रम के अन्तर्गत वासुदेव के वंश में क्रमशः सामन्त, नृप, जयराज, विग्रहराज I, चन्द्रराज I, गोपेन्द्रराज, दुर्लभराज I, गूवक I, चंद्रराज I, गूवक I,, चन्दनराज, वाक्पतिराज I, विंध्यराज, सिंहराज, विग्रहराज II, दुर्लभराज II, गोविंद (वैरी घरट्ट), वाक्पतिराज II, वीर्यराम, चामुण्डराज, सिंहट, दुर्लभराज III, विग्रहराज III, पृथ्वीराज I, अजयराज, अर्णोराज, जग्गदेव, विग्रहराज IV, अपरगांगेय, पृथ्वीराज II, सोमेश्वर, पृथ्वीराज III, गोविंद, बह्लण, प्रह्लाद, वीरनारायण, वाग्भट्ट, जैत्रसिंह तथा हम्मीर के नाम उपलब्ध होते हैं।

द्रष्टव्य– शर्मा, दशरथ– अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. 23–112 ; बिजोलिया शिलालेख, हर्षनाथ का लेख (973 ई.), चाहमान प्रशस्ति, अजमेर, किराडू लेख।

इलियट एवं डाउसन– भारत का इतिहास, भाग 1 व 2

17. सु. 4/24–29

18. वही, 4/47–53

19. वही, 5/45–61

20. जीवग्राहं स जग्राह संग्रामे भोज भूपतिम्। –वही 6/22

21. सजित्वा जित्वरः संख्ये, यवनानीकनायकान्।
शकानामधिपं शक्त्या कारातिथिमकारयत्।।– वही, 6/42

22. निबध्याऽवन्ध्यनिर्बन्धः समरे कर्णभूपतिम् ।।– वही, 6/48
23. वही, 8/2–18
24. वही. 10/10 से 10/166
25. कन्या ततोऽजायत कान्यकुब्जक्षितीश्वरात् कान्तिमतीति नाम्ना ।।– वही, 10/13
26. वही, 10/110–125
27. सु. 10/119–132
28. तथेति तस्य प्रहरेति वक्तुं व्यात्ताननस्य क्षततालुमूलः ।
    प्राणैः सहान्धं करणस्य शत्रोर्जवान् नियन्तुर्निरियाय बाणः ।।– वही, 10/163
29. वही, 10/126–28 तथा 10/129–32
30. वही, 11/7 से 12/77
31. वही. 12/21, 29,34
32. वही. 11/65
33. वही. 12/10, 16,30,31
34. वही. 12/54
35. वही. 11/69, 12/41
36. वही, 11/64,–70, द्र० अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० 107–15 ; इलियट एवं डाउसन भारत का इतिहास, भाग 3
37. सु. 12/3–43
38. वही. 12/57–77
39. वही. 12/41 तथा 12/55; द्र० भारत का इतिहास, भाग 2 व 3
40. सु., 12/53–77, हम्मीर महाकाव्य, सर्ग 13 श्लोक 71–86, 139–166
41. सु. ,13/1–2
42. वही. – भूमिका, पृ० 12–13
43. मुंहणोत, नैणसी– रव्यात, भाग, पृ० 106
    मींसण, सूर्यमल्ल– वंश भास्कर, भाग–2, पृ० 1621–27
44. वंशभास्कर, भाग– 3, पृ० 1678–81
45. टॉड, जेम्स– एनॉल्स एंड़ एंटिक्विटीज ऑव राजस्थान, पृ० 1478–79
46. सु० 13/6–49 एवं 16/1
47. वही, भूमिका, पृ० 12–13
48. वही,13/45–49
49. वही,13/52–55

50. वही,13/67

51. वही,14/65–77

52. वही, 16/8–9

53. 'सोऽर्जित यशास्त्तरसा तुरुष्कान्' ।– वही, 16/10

54. वही, 16/11, 17/12

55. वही, 17/27–36, 17/12–56

56. सु, 18/1–21, द्रष्टव्य–बैवरिज– अकबरनामा, भाग–2, पृ. 454, 494

57. मनीषी सोऽन्ववर्तत मनः शकभर्तुः ।। सु. 18/22–23

58. वही,19/7–8, 30–31

59. वही, 19/43–47

60. तत्पत्न्यः कनकावतीप्रभृतयो मग्नाः समिद्धार्चिषि ।
प्राप्याशु प्रकटोज्वलं कनकवद् रूपं गरिम्णाधिकम् ।। सु. , 19/48

61. वंश भास्कर, भाग–3, पृ. 2284–90 ;
नैणसी री ख्यात, भाग–1, पृ. 111
एनॉल्स. भाग–3, पृ. 1484

62. सु. 20/8–35

63. वही, 20/63

परिशिष्ट

सँस्कृत–शिलालेखों एवं सँस्कृत साहित्य में विवक्षित अलवर क्षेत्र

'वीर विनोद' में प्रकाशित राजा मथनदेव का दान–पत्रः– (हिन्दी में अनुवाद)

डा॰ देवकुमार

"परम भट्टारक (शूरवीर–उपाधिधारी) महाराजाधिराज परमेश्वर श्री क्षितिपालदेव (महीपाल देव, कन्नौज) के चरणों की सेवा में रहने वाले (युवराज पद पर आसीन) महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विजयपालदेव (श्रीपथ बयाना वाले एवं उषा मंदिर का जीर्णोद्धार कराने वाली राजकुमारी चित्रलेखा के भाई) के उत्तरोत्तर बढ़ते हुये कल्याणकारी राज्य में विक्रम संवत् 1016 में–––– राज्यपुर (वर्तमान समय में अलवर नगर से 30 कि॰मीटर दूर 'टहला' वाले राजौरगढ़) में विराज रहे महाराजाधिराज–परमेश्वर श्री मथनदेव जो महाराजाधिराज श्री सावट (इनका, वि॰संवत्– 979/922 ई॰ सन् का शिलालेख 'राष्ट्रीय संग्रहालय, देहली में है) के पुत्र गुर्जर प्रतिहारवंशीय, अपने स्वयं के विशिष्ट वंशपोतक भोग से संबन्धित इस 'व्याघ्रवाटक' ग्राम में उपस्थित होने वाले राजसेवकों एवं सर्वसामान्य जनों को समझाकर एतत्संबन्धी आदेश देते हैं "आप सबको भली–भाँति ज्ञात होना चाहिये कि तिनके के अग्रभाग (नोंक) पर लगी हुई जल की बूँद का आश्रय स्थान जिस प्रकार स्थाई नहीं होता उसी प्रकाश शरीर का सहारा लेकर टिका हुआ 'जीवन' है।–––––– 'अपनी कुलदेवी [1] और माता श्री लच्छुकादेवी [2] के नाम के साथ जोड़कर श्री लच्छुकेश्वर महादेव (जिनकी प्राण–प्रतिष्ठा की है) और सीमा क्षेत्र के विभिन्न करों की आय मंदिर के खर्च के लिये नियत कर दी है। इस समय जल को हाथ में लेकर संकल्पपूर्वक राजाज्ञा–शासन पत्र लिखकर यह 'दान' किया है। 'इस प्रकार श्री..... आमर्दक 'शैव–पीठ से विधि–विधान–अनुशासन सीखे हुये श्री सौपुरी (शिवपुरी, सौपोर, दक्षिण प्रदेश) वाली क्रमिक–पद्धति में आये श्री छात्रशिव को, राज्यपुर में गोपालीदेवी तड़ागपाली मठ से संबद्ध जो श्री नित्य प्रमुदित देव वाला स्थान है, उसमें रहने वाले श्री कण्ठाचार्य के शिष्य श्री रूपशिवाचार्य, उनके शिष्य श्रीमद् ओंकार शिवाचार्य को, कभी खण्डित न होने वाले ब्रह्मचर्य के कारण, जिन्हें परमयशराशियुक्त 'महामहिम' पदवी प्राप्त हुई है। उन्हीं की शिष्य–प्रति–शिष्य–परम्परा के हाथ में देव–सम्बन्धी प्रयोजन से–––– हमारे वंश में उत्पन्न अथवा अन्य किसी भविष्यवर्त्ती भूपाल के द्वारा न तो स्वयं यह प्रदत्त अधिकार छीना जाये ––––।––––– महादेवजी की आज्ञा से पुत्ररूप में मैंने (मथनदेव ने) आज्ञापत्र दान सम्बन्धी लिख दिया है। इस शासन–दान–पत्र के अनुरूप, पार्श्वदेव के लिये चार कुलिका (पात्र) इस प्रकार राजधानी में विनायकजी (यह मूर्त्ति अलवर के राजकीय संग्रहालय में प्रदर्शित है) भी हैं, उनके लिये भी दो कुलिका प्रति घी के 'कुप्पे' (बड़े पात्र) से बाजार में प्रत्येक दुकानदार से और तै की दो लोटी (पल्ली) प्रतिमाह में और अन्य फल आदि खाद्य–पदार्थों की दो पत्तलें भर कर देव के निमित्त दी जानी चाहिये। यह शासन दान पत्र है। मथन देव।।

यह शिलालेख इस समय अलवर के राज्यंसरकार के संग्रहालय में रखा है। सँस्कृत भाषा में है। पुस्तक 'वीर विनोद' में करौली प्रशस्ति सं 10 {महाराणा जगत्सिंह 2, शेष संग्रह 10–1532}

इस शिलालेख में वर्णित व्याघ्रवाटक ग्राम–इतिहास, सनातन आस्था और जैन धर्म की मान्यताओं के संगम का स्थान है। वर्णित 'सावट' भूपति दोनों धर्म–पद्धतियों का उन्नायक था। प्रतापगढ़ का शिलालेख (बट यक्षिणी मंदिर का) इस समय अजमेर के राजकीय संग्रहालय में रखा है जो कि सं॰ 1003 का श्री महीपालदेव (क्षितिपाल देव) गुर्जर प्रतिहार वश के हैं। वे (कन्नौज) 'महोदय' के सर्वोपरि राजा थे। पश्चिम से लेकर (अजमेर से) कन्नौज तक बयाना, राजौरगढ़, चित्तौड़, ग्वालियर तक इन्हीं गुर्जर प्रतिहारों का शासन था। साथ ही सौपोर से ही इन राजाओं को मार्गदर्शन पीठ से मिलता था।

इंण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द 18 पृष्ठ 267–268 पर सोलंकी राजा जगदेकमल्ल (जयसिंह द्वितीय) के समय के ई॰ 1033–34 (शक सं 955) बीजापुर जिले के बम्बई हाता के भैरनभट्टी स्थान के ताम्रपत्र में इसके महासामंत सिन्दवंशी नागतिय रस के सम्बन्ध में लिखा है कि नागवंश का भूषण पुलीकाल हुआ जिसके ध्वज पर नाग का चिह्न एवं लाच्छन व्याघ्र है, "समान सँस्कृति का प्रमाण है।

राजा मथनदेव के पिता भूपति सावट गुर्जर प्रतिहार का शिलालेख इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय में है। शिलालेख का समय (ई सन् 922–923) विक्रम संवत् 980 है। इसमें लेख है कि राज्यपुर (राजौरगढ़) के राजा सावट दान–शीलता में कर्ण, पराक्रम में भीम तथा सुभग व सुलक्षण शरीर में श्री राम के सदृश हैं। यह (सावट) राजा महीपाल देव (कन्नौज) के राज्य में भूपति हैं।

इस शिलालेख में एक महत्त्वपूर्ण सूचना है कि 'यहाँ जो गगनचुम्बी जैन मंदिर था वह भूचाल आ जाने से ध्वस्त हो गया। अब यहाँ, इस व्याघ्रवाटक ग्राम में यह जैन मंदिर बनाया गया है इसमें 'गोष्ठी' करने हेतु बैठने आदि के लिये पर्याप्त व्यवस्था की गई है। शासन–पत्र द्वारा दान–पत्र के अनुरूप पर्याप्त आय के अधिकार मंदिर को मिले हैं।

आज के समय में – इस 'व्याघ्रपुर' ग्राम में एक तालाब के किनारे अनेक बड़ी–बड़ी तीर्थकरों की मूत्तियाँ और विष्णु की मूर्त्ति, मिली हैं।

–संस्कृत साहित्य में –पुस्तक ' सनत्कुमारचक्रिचरितम्' के पृष्ठ संख्या 15 पर वर्णित 'चर्चरी विवरणम्' में लिखा है कि युग–प्रधान जिनदत्त सूरि ने बाग्जड़ देश (बड़गूजर देश) स्थित व्याघ्रपुर ग्राम में इस पुस्तक की रचना की "विरचिता च श्री वाग्जड़–देश तिलकायमान श्री धर्मनाथ जिनायतन विभूषिते श्री व्याघ्रपुरे।'

विशेष नोट :–

विराट्पर्व (महाभारत में) विराट स्थान के राजा की सभा में अज्ञातवास की कामना लेकर आये और छुपे रूपधारी राजा युधिष्ठिर ने अपना नाम कङ्कशर्मा तथा गोत्र 'व्याघ्रपद्य' बताया।विराट्राज ने इन्हें, तब ब्राह्मणों आदि को यथाशक्ति दानपुण्य करने के अधिकार दिये। चाकरी पर रखा। अतः व्याघ्रपद के नाम से धार्मिक स्थल वाले ग्राम का बसना, बहुत पुराने समय में भी, सम्भव सिद्ध हो रहा है। महाभारत के विराटपर्व में – मत्स्यदेश के राजा की पताका पर लाञ्छन व्याघ्र था। तिजारा के राजा सुशर्मा व (अर्जुन) वृहन्नला के युद्ध के समय 'रथकी पताका पर।

तसई स्थान का शिलालेख :– पंक्ति संख्या 10 में समय (प्रशस्ता बत्सरशते द्व अशीते)– हर्ष संवत् 182+620 सन् 802 ईसवीय सन् में मीया और उसकी पत्नी सिमाया ने नागस्वामी नाम के शिशु को उसी प्रकार से जन्म दिया जैसे कश्यप की पत्नी दक्ष कन्या 'कद्रू' ने नागों के स्वामी को जन्म दिया। इस प्रकार से जन्मे इस पुत्र नाग स्वामी का विवाह गोवा से हुआ। इनसे पुत्र हलवान् हुआ। हलवान् की शादी गोला से हुई। गोला से रणादित्य हुआ। उसने भगवान विष्णु का मंदिर बनवाया; साथ ही मंदिर में चढ़ावे आदि पूजा–सेवा के निमित्त खर्च के लिये भी व्यवस्था दी है। उक्त शिलालेख के नामों का साँस्कृतिक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि नाग जाति को महत्त्व दिया गया है।

महाभारत के विराट्पर्व में अलवर क्षेत्र 'वैराठ' का प्राचीन वर्णन है। उसमें भी यहाँ नागजाति का श्रेष्ठत्व वर्णित है। बृहन्नला (अर्जुन) जब विराट्पुत्र उत्तर के सामने कवच आदि पहनता है। तब उत्तर कहता है कि आप साक्षात् नागराज के समान लग रहे हैं।

सवाई माधोपुर जिले में स्थान 'टोडाभीम' के सन् 1661 के बावड़ी के शिलालेख में, जो कि राजा जगन्नाथ के समय का है ; लिखा है कि यह बावड़ी पुण्यार्थ 'तक्षकपुर' के समीप बनवाई है। इस शिलालेख से यहाँ 'तक्षक' का प्राचीन नागराज का रहना प्रमाणित होता है।

एक बात यह भी पता चल रही है कि पृथ्वीराज मोहम्मदगौरी से लड़ते–लड़ते तक्षकपुर तक आ गया था। वह जो 'तक्षकपुर' जो डॉ॰ पुष्करदत्त जी के लेख में खोज का विषय था– वह स्थान तक्षकपुर इस टोडाभीम की बावड़ी के शिलालेख से खोज में आ गया है।

श्रीप्रस्थ या श्रीपथ (बयाना, जिला–भरतपुर) का उषा मंदिर (प्राचीन समय में सूर्यमंदिर) का शिलालेख सन् 905 ई॰ का है। यही समय कन्नौज के महाराजाधिराज मंहीपाल देव के राज का है। इनकी पुत्री और बिजयपाल की बहिन, राजकुमारी चित्रलेखा का विवाह ग्वालियर के कच्छपघाट के मंगलराज के साथ हुआ था। उस विवाह के अवसर पर राजकुमारी द्वारा प्राचीन सूर्यमंदिर का जीर्ण–उद्धार कराया गया

और यहाँ राजकुमारी चित्रलेखा ने विष्णुमंदिर बनवाया। इसकी 'व्यवस्था' के लिये मण्डपिका कर (भुसावर) बुसावट व अन्य स्थानों से विभिन्न 'टैक्सों' से आय के स्रोत वाले अधिकार शासन दान–पत्र में घोषित किये गये। विवाह में गोगरापुर आदि दो ग्राम 'दहेज भेंट–स्वरूप दिये गये। एक ग्राम 'अलुवद्रकपुर' शिलालेख के उत्कीर्णकर्त्ता श्री पाल को दान में दिया गया। इस शिलालेख में निकुम्भ क्षत्रियों का उल्लेख है। 12 वीं पंक्ति में – "रौद्रं संग्रामं भावयन्ति प्रतिनियत–बधं प्रति– ये निकुंभा :।। "रौद्रं संग्रामं भावयन्ति प्रतिनियत बधं प्रति–– ये निकुंभाः।" ये निकुंभ भी इसमें 'प्रतिहार' (सेन्द्रकवंशी सामन्त के वंशज हो सकते हैं क्योकि 'इण्डियन ऐंटीक्वेरी' जिल्द 18 पृष्ठ 267 व 268 पर ई सन् 655 के गायकवाड़ क्षेत्र के बडगुमरा के नवसारी जिला के शिलालेख दान–पत्र में

"तस्य पुत्रः श्रीमान् पृथ्वीवल्लभ निकुंभल्ल शक्ति"

प्रतिहार (गुर्जर) और निकुम्भ सोलंकी राजा (सौपोर के) के बड़े सामन्त सरदार थे।

निकुंभल्ल शक्ति की पूजा– साधना दक्षिण से अलवर में आई। वाल्मीकि रामायण के 'युद्धकाण्ड' में रावणात्मज इंद्रजित् भी 'निकुंभिला' की साधना में विश्वास करता था। अलवर में निकुंभों का भी शासन रहा था।

उषा मंदिर (बयाना) के इस शिलालेख में राजाओं की वंशावली भी है।

इसी प्रकार 'कामा' के दो शिलालेखों में भी वंशवालियाँ वर्णित हैं जो शूरसेन वंश और गुर्जर प्रतिहार वंशों में सम्बन्ध स्थापित करती हैं।

यह शिलालेख प्रतिहारवंशी राजा पृथ्वीपाल देव के राज्य में सं॰ 1208 का राजगढ़ के चतुर्भुज मंदिर में है।

अलवर के करौली कुण्ड के पास चतुर्भुज मंदिर का शिलालेख सं॰ 1229 का है। दौसा स्थान का शिलालेख सन् 1194 ई॰ का श्री दूल्हेराय का है जिन्होंने यहाँ के प्रतिहार वंशीय राजा की बेटी से विवाह करने के उपरान्त धोखे से अपने श्वसुरजी के राज्य को हस्तगत कर लिया। बाद में अपने पिता सोढ़देवजी को बरेली से यहाँ बुला लिया था।

माचाड़ी स्थान (मत्स्यपुरी) का शिलालेख शक सं॰ 1380 का है। बहलोल लोदी (दिल्ली में बादशाह) के समय माचाड़ी में 'बड़गूजरवंशीय महाराजा रामसिंह के पुत्र भी राजपाल देव का राज्य था।

माचाड़ी राज्य के राजगढ़ में गुरू की बावड़ी का शिलालेख सं॰ 1421 सन् 1364 ई का है। दिल्ली में 'उस समय फिरोजशाह का शासन बताया है।

यहाँ–आसलदेव के पुत्र गोगादेवजी राज्य करते थे।

अन्य शिलालेख सं॰ 1439 का है। इसमें वर्णित है कि फिरोजशाह के समय में माचाड़ी (मत्स्यपुरी) में बड़गूजर वंश के आसलदेव के पुत्र गोगादेवजी थे। वे अलवर पर भी शासन करते थे। (पंक्ति 17 में लिखा है) कन्नौज के राजा जयचंद्र के पुत्र हरिश्चंद्र

का शिलालेख दान पत्र सं॰ 1253 का माचाड़ी में मिला (ओझा निबन्ध संग्रह भाग 2 पेज 230 पर डॉ॰ हीरालाल ओझा)

'खरतगच्छ गुर्वावली' में जिनपाल उपाध्याय ने राजा पृथ्वीराज चौहान द्वितीय के समय के, सभा के जैन व सनातनी पण्डितों के शास्त्रार्थों के विषय में वर्णन मिलते हैं। इसमें वर्णित है कि संवत् 1236 से पहले के समय तक राजा पृथ्वीराज ने 'भट्टानक' प्रदेश (भदानक) के श्रीपथ (बयाना) तक के प्रदेश तक विजय प्राप्त कर ली थी।

अलवर से 13 मील दूर बहादुर कस्बे में जैन मंदिर में सॅस्कृत भाषा में खानजादों के प्राथमिक पूर्वज बहादुर नाहरखाँ का विवरण है।

एक शिलालेख सँस्कृत भाषा में नौगावाँ में मिला है। इस शिलालेख का समय संवत् 1538 (सन् 1481 ई॰) है। इसमें (खानजादा बहादुर नाहर खाँ के पोते) अहमदखान से लेकर जकरियाखाँ, (जक्रोबू) उसके बाद अलावलखाँ, उसके भाई जलालदीन – चौधरी मल्हा आदि का वर्णन है। ये अलावलखाँ, सिकन्दर लोदी के साढू एवं राजहसनखाँ मेवाती के पिता थे। जलालदीन के बेटे की दो लड़कियां थी। उनमें एक से बादशाह हुमायूँ ने शादी की। दूसरी पुत्री सलीमा से बैरमखाँ ने शादी की। इनसे महान् कवि अब्दुलरहीमखानखाना पैदा हुये। ये मेवाती संस्कृति से प्रभावित कृष्ण भक्त थे।

टोड़ा भीम स्थान का सवंत् 1603 का अभिलेख बादशाह शेरशाह सूरि के पुत्र सलेमशाह युवराज का है। इसमें लिखा है कि संग्रामदेव के पुत्र उदयसिंहदेव कुंभलमेर में राज्य कर रहे हैं (पंक्ति–13) ।।

वैराठ नगर के जैन मंदिर में एक बड़ा 32 पंक्तियों का अति महत्वपूर्ण शिलालेख शक सं॰ 1509 का है। इसमें वर्णित हैं कि बादशाह अकबर ने फरमान लिखकर इस मंदिर को आय के अधिकार दिये थे। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित पुस्तक 'ईश्वरविलासमहाकाव्य' में ऐतिहासिक तथ्य वर्णित है – "मिर्जा राजा जयसिंह ने राजौरगढ़) (टहला) पर कब्जा कर लिया था। बाद में गुर्जर प्रतिहारों का यहाँ फिर से अधिकार हो गया। बाद में औरंगजेब के समय में राजा किशनसिंह जयपुर ने हमला करके राजौरगढ़ को जीता। तब बड़गूजर यहाँ से हट गये। उन सबने अनूपशहर (जिला–बुलन्दशहर) में गंगा के किनारे अपनी राजधानी बना ली।

कठूमर स्थान पर वि॰ स॰ 1718 का मिर्जा राजा जयसिंह के समय का सँस्कृत में शिलालेख है।

'ताल वृक्ष' में राजा रामसिंह (जयपुर) का शिलालेख – इन्होंने सन् 1682 में इस तीर्थ का जीर्ण–उद्धार कराया।'

भानुगढ़ का शिलालेख :– भगवन्तदास जयपुर के पुत्र राजा मानसिंह के सगे भाई माधवसिंह ने भानुगढ़ बसाया। वि॰सं॰ 1655 में इन्हें अकबर बादशाह से 1500 सिपाहियों

की मनसबदारी मिली थी। एक और शिलालेख भानुगढ़ में राजा शत्रुसालसिंह का पिचन की बावड़ी में है। इनके पुत्र हरीसिंह का शिलालेख सं॰ 1722 का गोपीनाथ मंदिर भानुगढ़ में है। एक शिलालेख महादेवजी के मंदिर में सं॰ 1716 का है।

राजकीय संग्रहालय अलवर में एक शिलालेख है रावण देहरा मठा का, जो किला अलवर के पहाड़ की तलहटी में दक्षिण की ओर किसी एक खण्डहर से ले आया गया है। यह अकबर के समय में संवत् 1642 का है। इसमें उल्लेख है। कि राजा कीरतसिंह के समय में रावण नाम का ओसवाल जातीय मंत्री है। उसने इस मंदिर (पार्श्वनाथजी) का जीर्ण–उद्धार करवाया है– अलवर के लोगों में यह भ्राँति पनप गई है कि यहाँ पर कभी लंका का राजा रावण राज करता था।

राज॰ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान अलवर के संग्रह में ह॰ लि॰ ग्रन्थों 'लक्ष्मणोत्सव' आदि की 'पुष्पिकाओं में विशद ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हो रहे हैं।

राज॰ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अलवर

१॰ 'ज्योतिषार्णव– ग्रन्थ में 'ब्राह्मण–उत्पत्ति मार्त्तण्ड' में गुर्जरों की कुलदेवी लच्छुकेश्वरी है।

२॰ एक बार इस राज्य में दो वर्ष तक वर्षा न होने से गायों को चारे के अभाव में मरता हुआ देखकर राजा मथनदेव की माता लच्छुकादेवी ने अन्न–जल त्याग दिया। वेदवाक्य के अनुरूप 'गो ब्राह्मण की रक्षा हेतु प्राण–त्याग की चाह रखने वाले मथनदेवजी ने भी अन्न जल त्याग दिया। एक दिन बाद सुबह होने से पूर्व इनकी माता ने सपने में सर्पों की माला डाले साधु को देखा, जिसकी जटाओं से जल टपक रहा था। कुछ समय के भीतर ही, वास्तव में जल–वर्षा होने लगी। शीघ्र ही चारा–धान्य उत्पन्न हो गया। इसी कारण–प्रसन्नता में राजा मथनदेव ने अपनी माता के नाम के साथ महादेव जी का यह भव्य मंदिर 'लच्छुकेश्वर महादेव' बनवाया और ग्राम 'व्याघ्रवाटक का वंशपोतक भाग–मंदिर हेतु व्यय में लिख दिया।